आप्तमीमांसा प्रवचन

[भाग ९, १०]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द जी' महाराज

●

प्रबन्ध-सम्पादक :
जिनाथ जैन, सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बडतला, सहारनपुर

●

प्रकाशक
मंत्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :
पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस, सहारनपुर

[१९७१]

[न्योछावर ५ रु

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक महानुभाव—

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमालादेवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभाव—

१	श्रीमान् लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ		सहारनपुर
२	,,	सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी रईस	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्डया	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जैन	गिरीडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	मेरठ
८	,,	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन	जगाधरी
१३	,,	गेंदामल दगडू शाह जी जैन	सनावद
१४	,,	मुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	,,	मंत्री दिगम्बर जैन समाज	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	,,	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेम देवीशाह सु० बा० फतहलाल जी जैन संघी	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	खण्डवा
२३	,,	सागरमल जी जैन पाण्डया	गिरीडीह
२४	,,	गिरधारीलाल चिरञ्जीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	,,	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	,,	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बडौत
२८	,,	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
२९	,,	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेन्डेण्ट इन्जीनियर	कानपुर
३०	,,	मंत्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी	आगरा

३१	श्रीमान् लाला	संचालिका दि० जैन महिला मण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	"	नेमिचन्द जी जैन रुड़की प्रेस	रुड़की
३३	"	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	"	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	"	मोल्हडमल श्रीपाल जी जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	"	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	"	बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला
३८	"	❀ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा	झूमरीतिलैया
३९	"	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूप नगर	कानपुर
४०	"	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४१	"	❀ दयाराम जी जैन भार. ए. डी. ओ.	सदर मेरठ
४२	"	❀ मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
४३	"	+ जिनेश्वर प्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सदर मेरठ
४४	"	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला

नोट—जिन नामोके पहिले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया सभी बाकी है।

●

आमुख

तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) की गन्धहस्तिमहाभाष्य नामक टीका करनेके प्रारम्भमे मोक्षमार्गके नेता आप्तको वंदन करनेके प्रसगकी व्याख्याये सर्वप्रथम श्री तार्किकशिरोमणि समन्तभद्राचार्यने ने आप्त सर्वज्ञ ही क्यो वंदन करनेके योग्य है इसपर मीमासा (संयुक्तिक विचारणा) की। किसीके पास देव आते हैं, कोई आकाशमे चलते हैं, किसीपर चमर ढुलते हैं, इन कारणोंसे वे आप्त नही हैं पूज्य नही है। ये बातें तो मायावी पुरुषोमे भी संभव हो सकती हैं। संसारी देवोमे संभव होनेसे दिव्य शरीर भी पूज्यत्वका हेतु नही है। तीर्थप्रवृत्ति भी अनेकोने की है उनमे परस्पर विरोध भी है अतः तीर्थप्रवचन सबकी आप्तताका हेतु नही बन सकता, किन्तु जिसके परस्पर विरुद्ध वचन नही हो, युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध वचन हो, प्रमाणसे प्रसिद्ध व अबाधित वचन हो वही निर्दोष हो सकता है। इस चर्चापर वस्तुस्वरूपके अभिमतोंपर पाण्डित्यपूर्ण सयुक्तिक विचार किया गया है। जैसे किन्ही दार्शनिकोका सिद्धान्त है कि तत्त्व एकान्तत. भावस्वरूप है किसी भी प्रकार अभावस्वरूप नही है। इस सम्बन्धमे सक्षिप्त रूपमे यह जानकारी दी है कि यदि कोई पदार्थ सर्वथा भावरूप है तो कोई भी पदार्थ सब पदार्थोंके सद्भावरूप हो जायगा तब द्रव्य क्षेत्र कालभावकी कुछ भी व्यवस्था नही हो सकती। भावैकान्तको अनेक विधियोंसे अनेक दोष दूषित दर्शाया है। किन्ही दार्शनिकोका अभिमत है, किन्ही दार्शनिकोका मन्तव्य है कि तत्त्व अभावस्वरूप ही है इस विषयमे बताया गया है कि पदार्थ यदि अभावैकान्तमय है तो ज्ञान, वाक्य, प्रमाण

आदि कुछ भी न रहा फिर सिद्ध ही क्या किया जा सकेगा ? यों पदार्थ न केवल भावस्वरूप ही है और न केवल अभावस्वरूप ही है किन्तु प्रत्येक पदार्थ स्व द्रव्य क्षेत्रकाल भाव भावस्वरूप है और पर द्रव्य क्षेत्रकाल भावसे अभावस्वरूप है। तथा दोनों स्वरूपोंको एक साथ कहा जाना अशक्य होनेसे अवक्तव्यरूप है। यों तीन स्वतन्त्र धर्म सिद्ध होनेपर इनके द्विसयोगी तीन भङ्ग और त्रिसंयोगी एक भङ्ग और सिद्ध होता है। यो सप्त भङ्गोमे भावस्वरूप व अभावस्वरूपका वर्णन करके सम्यक् प्रकाश दिया है।

पूर्वोक्त स्याद्वाद विधिसे निम्नाङ्कित इन सब विषयोंके सम्बन्धमे भी यथार्थ प्रकाश दिया गया है (१) पदार्थ एक है या अनेक है, (२) वस्तु अद्वैतरूप है या द्वैतरूप अर्थात् एकान्त. सभी शेष सर्वथा पृथक पृथक हैं, (३) वस्तु नित्य है या अनित्य, (४) वस्तु वक्तव्य है या अवक्तव्य, (५) कार्यकारणमे, गुण गुणीमे सामान्य सामान्यवान्में भिन्नता है, या अभिन्नता है, (६) धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिक है या अनापेक्षिक है, (७) क्या हेतुसे ही सब कुछ सिद्ध होता है या आगमसे ही सब कुछ सिद्ध होता है (८) क्या प्रतिभासमात्र अन्तरङ्ग अर्थ ही है या बहिरङ्ग प्रमेय पदार्थ ही है, (९) क्या भाग्यसे ही अर्थसिद्धि है या पुरुषार्थसे ही अर्थसिद्धि है (१०) क्या अन्य प्राणियोंमें दुःखके उत्पादसे पाप बंधता है, (११) क्या अन्य प्राणियोमे सुखका उत्पाद होनेसे पुण्य बंधता है, (१२) क्या स्वयंके क्लेशसे पुण्य बंधता है, (१३) क्या स्वयंके सुखसे पाप बंधता है, (१४) क्या अज्ञानसे यानि ज्ञानकी कमीसे बन्ध ही होता है, (१५) क्या अल्प ज्ञानसे मोक्ष होता है। उक्त सभी विषयोकी सयुक्तिक मीमांसा करके स्याद्वाद विधिसे सभी विषयोका यथार्थ परिचय कराया गया है, जिसका अति सक्षेपमे वर्णन किया जाय तो वह भी बहुत अधिक विवरण हो जाता है। इस सबको पाठकगण स्वय इन प्रवचनोका अध्ययन करके परिज्ञात करें। अन्तमें वस्तुस्वरूपको सिद्ध करने वाले तत्त्वज्ञानकी प्रमाणरूपता व एकाद्वाद नय सस्कृतता व तत्त्वज्ञानका फल, स्याद्वादका विवरण, केवल प्रत्यक्ष परोक्षके अन्तमें स्याद्वादकी केवल ज्ञानवत् सर्वसत्त्वप्रकाशकताका वर्णन करके वीतराग सर्वज्ञ, हितोपदेष्टाको ही आप्त होना सिद्ध किया है तथा आत्मकल्याणार्थी पुरुषोको सम्यक् उपदेश और मिथ्योपदेशकी विशेष जानकारी हो एतदर्थ इस आप्तमीमांसाकी रचनेका आशय तार्किक चूडामणि श्री समन्तभद्राचार्यने बताया है।

इस महान ग्रन्थके गूढतम महत्वको सरलतासे सर्वसाधारणोपयोगी प्रवचन द्वारा प्रकट करना अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर श्री वर्णी जी महाराजके प्रकाण्ड पाण्डित्यका सुमधुर फल है जिसे जैन मीमांसकोंकी उच्चतम कोटिमे विराजमान करनेका महाराजश्री ने प्रयास किया है। आशा है जैन समाज ही नहीं, विश्व समाज इस प्रयाससे लाभान्वित होगा।

तत्त्वज्ञान-प्रभावित

व्याकरणरत्न, काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

सहारनपुर

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[नवम भाग]

प्रवक्ता :
(अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी महाराज)

आप्तकी मीमासा में अनेक एकान्तवादोंके निराकरणके पश्चात् भेदैकान्तकी मीमासा—इस ग्रन्थके निर्माणका मूल आधार यह है कि मोक्ष मार्गका नेता कौन है? जिसके शासनका आलम्बन करके हम प्राणी ससारके सङ्कटोसे मुक्ति पा सके। उस मोक्ष मार्गके नेताके सम्बन्धमे पहिले बाह्य कारणोकी मीमासा की गई है कि कोई आकाशमे चलते हो इस कारण वे आप्त भगवान अथवा मोक्षमार्गके नेता नही है या उनके पास देव आते हैं इस कारण वे आप्त नही है अथवा उनका शरीर दिव्य है इस कारण भी आप्त नही हैं उन्होने तीर्थ चलाया तो यो तीर्थ तो अनेक लोगोने चलाया है पर वहाँ यह सोचना होगा कि तीर्थ चलाने वाले सभी तो आप्त नही हैं। उनमे कोई ही आप्त हो सकता है। तो कौन आप्त हो सकता है? यह सिद्ध करनेके लिए कहा गया कि जिसमें रागादिक दोष तो रच भी न रहे हो और ज्ञानके आवरण करने वाले कर्म भी न रहे हो ऐसा कोई निर्दोष पुरुष ही आप्त हो सकता है। निर्दोष कौन है? यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है। तो इस विषयमे समाधान दिया कि वही निर्दोष पुरुष माना जा सकता है जिसके वचन युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध न पडते हो। अब यह कहा गया कि हे प्रभो, हे रागद्वेषके जीतने वाले जिनेन्द्र देव अथवा अपने ज्ञानादिक गुणोकी परिपूर्णताके कारण पूज्य अरहंत देव आप ही निर्दोष हैं क्योकि आपका शासन न युक्तिसे विरुद्ध है न शास्त्रसे विरुद्ध है। इस ही सिलसिलेको लेकर अनेक दार्शनिकोने अपने अपने दर्शनकी बात रखी। जैसे अद्वैतवादियोने अद्वैत सिद्धान्तमें रखा, पृथक्त्ववादियोने पृथक्त्व सिद्धान्त रखा, एकत्ववादियोने एकत्व सिद्धान्त रखा, अनेकत्ववादियोने अनेकत्व सिद्धान्त रखा। केवल सन्मात्र तत्त्व मानने वालोंने अस्तित्ववाद रखा और शून्य तत्त्व मानने वालोने नास्तित्वका सिद्धान्त रखा, नित्यत्ववादियोने वस्तुके नित्यत्वका सिद्धान्त रखा, क्षणिकवादियोने क्षणिकत्वका सिद्धान्त रखा। इस तरह अनेक दार्शनिकोने अपना सिद्धान्त रखा किन्तु वह सर्वथा वादी होनेके कारण अर्थात् एकान्त आग्रह

[illegible] अब इस परिच्छेदमें वैशेषिकवादका [illegible] चर्चा चलेगी । जिसमें सर्वप्रथम विशेषवादी अपना सिद्धान्त [illegible] वैशेषिकोंकी ओरसे भेदका [illegible] है ? इस बातको प्रकट करनेके लिये कारिका [illegible] है ।

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च ।
सामान्यतद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥६१॥

विशेषवादमें भेदैकान्तका सिद्धान्त—यदि एकान्तसे यह माना जाता है [illegible] और कारणमें नानापन है अर्थात् भेद है, गुण गुणीमें नानापन है अर्थात् [illegible] है और सामान्य एवं सामान्यवानमें अन्यपन है अर्थात् भेदैकान्त है, यदि ऐसा [illegible] है तो इस सिद्धान्तका समाधान अगली कारिकामें किया जायगा । इस कारिकामें एक वैशेषिकोंका सिद्धान्त क्या है ? इसकी सूचना दी गई है । विशेषवादियो ने कार्य कारणमें नानापन माना है । जैसे कार्य तो हुआ घट, कारण हुआ मृत्पिण्ड तो इन कार्य कारणोंमें सर्वथा भेद है । गुण गुणीमें भेद माना है । जैसे गुणी हुआ आकाश और गुण हुआ महत्त्व इन दोनोंमें भेद है । सामान्य सामान्यवानमें भेद माना है । सामान्य तो हुए पर सामान्य अथवा अपरसामान्य और सामान्यवान हुए पदार्थ, द्रव्य, गुण, और कर्म । इसी प्रकार भाव और अभावके विशेष्यमें भेद माना है । अभाव हुआ अभाव ही और जिसमें अभाव पाया जाता वे हुए पदार्थ अभावके विशेष्य, जैसे घटका अभाव, तो यहाँ दो बातें कहीं गईं—अभाव और घट । इनमे भेद माना जाता है । इसी प्रकार विशेष्य और विशेषवानमें भी भेद, अवयव अवयवीमें भी भेद इस तरह एक भेद एकान्तका सिद्धान्त है । इस दार्शनिकका नाम ही वैशेषिक है । जहाँ विशेष अर्थात् भेद भेद ही माना जाता है । थोड़ा भी कुछ परिचय विशिष्ट प्राप्त हो रहा हो वहाँ भेदका एकान्त कर दिया जाता है । ऐसी वैशेषिकवाद सिद्धान्त की बात इस कारिकामें सूचित की गई है ।

कार्य कारण, गुण गुणी, सामान्य सामान्यवान, क्रिया क्रियावान, विशेष, विशेषवान, अभाव अभावविशेष्यमें भिन्नताका निर्देश—अब पूर्वपक्षके रूपसे विशेषवादियोंके सिद्धान्तकी विशेष चर्चा की जा रही है। विशेषवादी कहते हैं कि कार्य तो कहलाता है तंतु आदिक अवयवके कारणभूत चलन आदिक क्रिया । जैसे कपड़ा बनता है तो उसमें कारण होता है अवयव अवयवीका संयोग और उसका कारण है तंतुवोंमें होने वाले चलन आदिक कर्म । तो कार्यका अर्थ हुआ क्रिया, अवयवमें होने वाली क्रिया तथा अनित्य संयोग आदिक गुणमें होने वाली क्रिया तथा प्रध्वंसाभाव भी कार्य कहलाता है प्रध्वंसाभाव मुद्गर आदिकके कारणसे

बनता है, तो वहाँ मुद्गर आदिकका व्यापार हुआ वह भी कार्य है। तो कार्यके अर्थमे क्रिया, संयोग, प्रध्वस इन सबका ग्रहण किया जाता है, कारणके मायने है समवायी कारण और कर्मवान अनित्य गुणवान और पट आदिक अवयव तथा जो प्रध्वंसभाव निमित्त हुआ सो भी कारण कहलाता है ये सभी कारण है मुद्गर आदिक ये सभी कारण कहलाते है। तो इन कार्य और कारणोमे परस्पर भेद है, ये एक नही हो जाते हैं। कार्य अन्य है और कारण अन्य जिस प्रकार कार्य व कारणमें अन्यता है उसी प्रकार गुण अन्य है और गुणी अन्य है। यहाँ गुण शब्दका अर्थ है नित्य गुण, क्योकि अनित्य गुणका तो कार्य कारणमे वर्णन किया गया है। जैसे महत्त्व नित्य गुण है और गुणी है आकाश, उस महत्त्व गुणका आश्रयभूत पदार्थ। सो यो गुण और गुणीमे भी भेद एकान्त है। सामान्यका अर्थ है पर सामान्य और अपरसामान्य। जो सर्व पदार्थोमें व्यापकर रहने वाला है वह तो पर सामान्य है वह एक ही है, और जो भिन्न-भिन्न जातियोमे साधारण रूपसे रहने वाला सामान्य है वह अपर सामान्य है, जैसे सत्त्व, यह तो पर सामान्य है क्योंकि सब पदार्थोमे पाया जा रहा है, और जीवत्व आदिक मृत्तिकात्व आदिक ये अपर सामान्य है ये कुछ पदार्थोमें पाये जाते है, उनके अतिरिक्त अन्यमे नही। यह सब सामान्य है और सामान्यवान है द्रव्य गुण कर्म जिसमें सामान्यका सम्बन्ध है वह सामान्यवान कहलाता है। इनमें भी परस्पर भेद है। इसमे जो भी बात परिचयमे आती है वह जुदी जुदी ही है, इस तरह यह सिद्धान्त बनता है कि क्रियावानमे अवयव अवयवीमे गुण गुणीमे विशेष विशेषवानमे, सामान्य सामान्यवानमे अभाव और अभावके विशेष्यसे भिन्नता ही है, क्योकि भिन्न प्रतिभास होनेसे। जब इनका परिज्ञान जुदे-जुदे रूपसे हो रहा है तो ये सब पदार्थ जुदे-जुदे ही हैं। जैसे हिमालय और विन्ध्याचल, ये दो पर्वत भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिभासमे आ रहे हैं अतएव भिन्न ही है।

विशेषवादमे अनुमान प्रयोग द्वारा भेदैकान्तकी सिद्धि—भेदैकान्तकी सिद्धिमें यह अनुमान प्रयोग है कि ये सर्व तत्त्व परस्पर भिन्न ही है, क्योकि इनका प्रतिभास भिन्न भिन्न रूपसे हो रहा है। इस अनुमान प्रयोगमे दिया गया हेतु असिद्ध नही है। अर्थात् ये सभी तत्त्व भिन्न प्रतिभास वाले बन रहे हैं। यहाँ साध्य बनाया गया है ... शिष्ट जो धर्मी है अर्थात् ये सभी तत्त्व है, इनमें भिन्न ... कारण हेतु असिद्ध नही है और भिन्न प्रतिभास ... भी नही है। अर्थात् हेतुके विषयमे रंच ... अर्थात् यह बिल्कुल भी न जाना जा ... रहा, ... प्रतिवादीसे किसी एकको ही ... समझे जा रहे हैं। यह बात

भेदैकान्तसाधक हेतुका व्यभिचार दूर करनेके प्रयत्नमें "एक पुरुषापेक्षया" विशेषण लगानेकी वैशेषिकोंकी योजना—अब यहां कोई वैशेषिकोंके प्रति शंका कर रहा है कि वैशेषिकोका दिया गया हेतु (भिन्न प्रतिभासत्वात्)- भिन्न पुरुषके प्रतिभासके विषयभूत अभिन्न अर्थके साथ व्यभिचारी हैं अर्थात् जुदे-जुदे दो पुरुषोंने देवदत्त और यज्ञदत्तने किसी एक ही पदार्थका प्रतिभास किया। जैसे मानो सामने रखी हुई चौकीको उन दो पुरुषोंने जाना तो उनका प्रतिभास तो भिन्न भिन्न हो गया। क्योंकि देवदत्तके द्वारा जाना गया प्रतिभास अन्य है और यज्ञदत्तके द्वारा किया गया प्रतिभास अन्य है। तो प्रतिभास भेद तो हो गया किन्तु अर्थ भेद नही है। वस्तु वह एक ही है। तब यह व्याप्ति न रही कि जहाँ भिन्न प्रतिभास हो वहांपर अन्यपना ही सिद्ध किया जाय। इस शंकाके उत्तरमें विशेषवादी कहते हैं कि हम भिन्न प्रतिभासत्व हेतुमे "एक पुरुषकी अपेक्षासे" इतना विशेषण जोड़ देना चाहेंगे। तो जो एक पुरुषकी अपेक्षासे भिन्न प्रतिभास हो तो वहां भेद एकान्त होता है। यहां एक चौकीको देवदत्त और यज्ञदत्त ऐसे भिन्न भिन्न पुरुषोंने जाना है। एक ही पुरुष जाने और उसके प्रतिभासमे आये तो समझना चाहिए कि उस प्रतिभासके विषयभूत पदार्थ भी भिन्न-भिन्न हैं। तो एक पुरुषकी अपेक्षासे भिन्न-भिन्न हैं। तो एक पुरुष की अपेक्षासे भिन्न प्रतिभासपना होनेसे इतना हेतु कहनेपर हेतुमे यह व्यभिचार नही आता है।

भेदैकान्तसाधक सविशेषण हेतुमें भी व्यभिचार निवारणार्थ भिन्नलक्षणत्वकी विशेषता लगानेकी वैशेषिकोकी योजना—अब विशेषवादियोंके प्रति शंकाकार कहता है कि इतना भी विशेषण लगा दिया जाय कि एक पुरुषकी अपेक्षासे भिन्न प्रतिभास होनेसे, हेतुमें एक पुरुषापेक्ष विशेषण लगा देनेपर भी देखिये ! किस पुरुषने क्रमसे एक ही पदार्थके सम्बन्धमे भिन्न-भिन्न प्रतिभास किया? तो देखो ! वहाँ जानने वाला भी एक पुरुष है और पदार्थ भी एक ही जाना गया है, लेकिन उसमे भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिभास हुआ है। तो भिन्न प्रतिभास होनेपर भी भेद सिद्ध न हो सका अतएव भेद प्रतिभास होनेसे यह हेतु व्यभिचरित है। इस शङ्काके उत्तरमे विशेषवादी कहते है कि जिसमे भिन्न लक्षण पाया जा रहा हो उससे संबंधित जो भिन्न प्रतिभासपना है, वह यहाँ हेतु बताया गया है, किन्तु यहाँ तो जैसे एक ही वृक्षके सम्बन्धमे एक ही पुरुषने दूरसे देखा तो अस्पष्ट प्रतिभास हुआ। निकट जाकर देखा तो स्पष्ट प्रतिभास हुआ। यो एक ही पुरुषके द्वारा एक ही पदार्थमें भिन्न प्रतिभास हुआ अतएव भेदकी आपत्ति नही दी जा सकती, क्योकि उन दोनो पुरुषोंमें जो विषय हुआ है वह वृक्ष एक है, वहाँ भिन्न लक्षण नहीं पाया जा रहा है। जहाँ लक्षण भिन्न पाया जा रहा हो उसका जो भिन्न प्रतिभास है वह भेद एकान्तको सिद्ध करता है। कार्य-कारणमे, गुण-गुणीमे, सामान्य-सामान्यवानमें भिन्न लक्षण पाया जा रहा

है, इस कारण वहाँ भेद एकान्त सिद्ध होता है। एक वस्तुमे भिन्न लक्षण रूपसे प्रतिभास नही हो सकता, भले ही निकट और दूर रहनेके कारण अस्पष्ट और स्पष्ट प्रतिभास हो, मगर प्रतिभासोका विषयभूत पदार्थ तो एक वृक्ष है, उसमे भिन्न लक्षण नही पाये जा रहे हैं। तो एक वस्तुमे भिन्न लक्षण रूपसे प्रतिभास नहीं होता, अतः हेतु व्यभिचारी नही है।

भेदैकान्तसाधक हेतुके विरुद्धादिदोषों रहित होनेका शंकाकारका कथन—यह हेतु विरुद्ध भी नही है, क्योंकि समस्तरूपसे अथवा एक देशरूपसे विपक्षमे याने अभेदमे भिन्न प्रतिभासत्व हेतु नही पाया जाता। विरुद्ध दोप तो तब आया करता है जब हेतु साध्यके विरुद्धके साथ व्याप्ति रखे। यहाँ हेतु कहा गया है भिन्न प्रतिभासत्वात् और साध्य यहा गया है भेद एकान्त। तो भिन्न प्रतिभासपना अभेदमे नही हुआ करता है इस कारण यह हेतु विरुद्ध भी नही है। भेद एकान्तका साधक यह हेतु कालात्ययापदिष्ट भी नही है, क्योंकि इस अनुमान प्रयोगमे बताये गये वृक्षमे न प्रत्यक्षसे बाध है न आगमसे बाधा है। कालात्ययापदिष्ट दोष उसे कहते है कि जहाँ पक्ष ही सिद्ध न हो और उसमे अनुमान प्रयोग किया जाय। जैसे पर्वत है ही नहीं और कह रहे कि इस पर्वतमे अग्नि है। है कुछ भी नही तो ऐसी घटनायें जहाँ जैसे कि पक्ष सिद्ध ही न हो अथवा बाधित हो और वहाँ अनुमान प्रयोग करे तो यह दोष होता है लेकिन प्रकृत अनुमानमे पक्ष अबाधित है अतएव यह दोष नही आता। अब यहाँ विशेषवादियोके प्रति स्याद्वादी शङ्का करते हैं कि देखिये ! कार्य कारणमे तादात्म्य है, गुण गुणीमे सामान्य सामान्यवानमे तादात्म्य पाया जा रहा है क्योकि ये अभिन्न देशी हैं। जिनमे तादात्म्य नही होता। जैसे कि विन्ध्याचल और हिमालय इनमे तादात्म्य नही है अतएव अभिन्न देशपना भी नही है किन्तु प्रकृत कार्य कारण, गुण गुणी सामान्य-सामान्यवानमे अभिन्न देशपना है, इस कारण अनुमानसे पक्षमे बाधा आती है। विशेषवादी उक्त शङ्काका उत्तर देते हैं कि शङ्कामे जो यह कहा गया था कि कार्य कारण आदिकमे तादात्म्य है, अभिन्न देश होनेसे सो यहाँ अभिन्न देश सिद्ध नही हो रहा है, क्योंकि ऐसे अभेद देश दो प्रकारसे परखे जाते हैं—एक शास्त्रीय देशाभेद और दूसरा लौकिक देशाभेद। सो शास्त्रीय देशाभेद तो यहाँ असिद्ध है क्योंकि कार्यका जो अपना कारण देश है वह जुदा है और कारणका अपने अन्य कारण का देश जुदा है। जैसे पट कार्य हुआ तो पटका स्वकीय कारण है तंतु और तंतुओं का कारण है कपास, तो देखो सभीका देश भिन्न-भिन्न रहा। इसी कारण गुण गुणी का सामान्य सामान्यवानका देश समझ लेना चाहिए। अब लौकिक देशभेदकी बात सुनो ! लौकिक देशाभेद बताकर तादात्म्य बनानेकी जो शंका की गई है सो देखिये ! लौकिक देशाभेद आकाश आत्मा आदिकमे पाया जा रहा है। तो जिस ही क्षेत्रमें आत्मा है उस ही क्षेत्रमें आकाश है। तो लौकिक देशाभेद तो रह गया पर तादात्म्य

नही है, तो लौकिक देशाभेदको हेतु मानोगे तो यह हेतु व्यभिचरित हो जाता है तब यह अनुमान युक्त नहीं रहता। तो जब तादात्म्यको सिद्ध करने वाला अनुमान असंगत हो गया तो अब हमारे प्रकृत पक्षमे किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती है, अर्थात् गुण गुणी कार्य कारण सामान्य सामान्यवान ये सभी भिन्न भिन्न हैं।

कथंचित् तादात्म्यका भी निराकरण करते हुए वैशेषिको द्वारा भेदैकान्तके समर्थनका उपसंहार—अब यहाँ कोई शका करता है कि इन सब बातो मे कथञ्चित् तादात्म्य तो प्रत्यक्षसे ही प्रतीत हो रहा है। जैसे गाय है तो गाय व्यक्ति और गो सामान्य ये न्यारी न्यारी जगहमें कहाँ पडे हैं? इनका कथञ्चित् तादात्म्य देखा ही जा रहा है। इस कारणसे सर्वथा भेद पक्षकी बात कहना बाधित है। अब इस शकाके उत्तरमे वैशेषिक कहते हैं कि सर्वथा भेद पक्षमे बाधा नहीं दी जा सकती। क्योकि कथञ्चित् तादात्म्यके साथ भेदका विरोध है। या तो भेद ही हो अथवा अभेद ही हो कथञ्चित् तादात्म्यका क्या मतलब? तब यहाँ कोई कहता है कि तब तो इस कारण भेद ही मत रहो, पूरा अभेद मान लिया जाय। उत्तरमे वैशेषिक कहते हैं यह कहना भी युक्त नहीं है क्योकि पदार्थमे भेद पूर्वसिद्ध है कार्य कारणत्व आदिकका भेद सभी लोगोने माना है ऐसा वह पूर्व प्रसिद्ध है किन्तु तादात्म्य पूर्वसिद्ध नहीं है, भिन्न-भिन्न जचने वाले गुण गुणीका ही तो अब तादात्म्य अथवा समवाय जैसा सम्बन्ध बताकर समझाया जाता है। यदि तादात्म्य पहिलेसे सिद्ध हो जाय तो बस एक ही चीज रही। अब कार्य कारण आदिक बन ही नहीं सकते और उनमें धर्मका कोई अधिकरण हो और धर्मीका कोई आधेय हो अथवा धर्म धर्मी हो अधिकरण आधेय हो, ये सब बातें कुछ भी नहीं बन सकतीं। जहाँ सर्वथा तादात्म्य पूर्वसिद्ध मान लिया जाय और इतना ही नहीं, क्रियाका व्यपदेश आदिकका भेद नही बताया जा सकता कि यह इसकी क्रिया है, यह घटकी शीतनिवारण क्रिया है किन्तु उसका कारणभूत तंतुवोंकी क्रिया नही है और उनमें रहने वाले शुक्लत्वादिक गुणों की क्रिया है, इस प्रकार फिर भेद भी न बन सकेगा, अत. गुण गुणी कार्य कारण आदिकका परस्पर तादात्म्य मानना युक्त नहीं है। अत मानना ही होगा कि जिसका भी भिन्न प्रतिभास हो रहा है वे सब पृथक पृथक ही हैं, भेद और तादात्म्यका वैयधिकरण्य है; भेदका तो सर्वथा भिन्न वस्तु आधार है और अभेदको आधार सर्वथा अभिन्न वस्तु है। यो भेद और तादात्म्यमे जुदे-जुदे अधिकरण पाये जानेसे वैयधिकरण आता है और फिर तादात्म्यको और भेदका परस्पर विरोध है। जैसे कि शीत स्पर्श उष्ण स्पर्शका परस्पर विरोध है। भेद और तादात्म्यको एक आधारमें मान लिया जाय तो संकर और व्यतिकर नामके दोष भी हो जाते हैं। और यदि संकर व्यतिकर दोषकी आपत्ति दूर करनेका यत्न करोगे तो यह तो है ही कि दोनो पक्षोंमें कहा गया दोष आता है। भेदरूप और अभेदरूप ये दो रूपसे अभेद भी भेदरूप बने

गया और अभेदरूप बन गया। तो यों यदि उनमे द्रूपता मान ली जाती है तो फिर कही भी विराम न मिल सकेगा। न ज्ञान हो सकेगा और सभीका अभाव हो जायगा, इस कारण गुण गुणी, अवयव अवयवी, सामान्य सामान्यवान, क्रिया क्रियावान आदि मे भेद-एकान्त ही है। वहाँ कथञ्चित् तादात्म्य कहना अथवा अभेद कहना ये सब मतव्य असमीचीन हैं। इस प्रकार वैशेषिकवादियोने अपने वैशेषिकवादका सिद्धान्त रखा। अब समन्तभद्राचार्य इस भेद एकान्तका निराकरण करते हैं।

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा ।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥ ६२ ॥

भेदैकान्तमें एकका अनेकोमे रहनेकी असंभवता आदि दोषोकी आपत्ति बताते हुए भेदेकान्तका निराकरण—गुण गुणी, अवयव अवयवी आदिकमे सर्वथा भेद मान लेनेपर यह आपत्ति आती है कि फिर वहाँ एककी अनेकमें वृत्ति नही बन सकती, क्योकि वहां अंश ही नही है। अवयवी आदिकके बीचमे किसी भी एकका सर्वथा भेद स्वीकार कर लेनेपर अपने कार्यके आरम्भक अवयव आदिक जो अनेक हैं उनमे वृत्ति नही हो सकती। अर्थात् अवयवीका नाना अवयवोमे रहना नही बन सकता, क्योकि वे सब निरंश हैं और यदि अवयवीमें विभाग बना लोगे तब वे बहुत अवयवी बन जायेंगे। और यो अवयवीका अवयवोमे रहना मान लिया जायगा तो बहुत अवयवी हो जायगे, जैसे एक घटके आरम्भक बहुतसे अवयव हैं तो जितने अवयव है उतने ही वहाँ अवयवी कार्य कहलायेंगे। तब एक ही अवयवीका अब एकत्व नही रह सकता। ऐसा जो स्याद्वादमतसे बहिर्भूत हैं उनके सिद्धान्तमे भेद एकान्त माननेपर यह आपत्ति आती है कि फिर वह एक अनेकमे किस प्रकार रह सकेगा? कार्य कारणका, गुण गुणीका, सामान्य सामान्यवानका यदि एकान्तसे भिन्नपना ही मान लिया जाता है तो एक कार्य द्रव्यकी अनेक कार्योमें फिर वृत्ति खोजना चाहिए कि वह किस तरहसे रह सके? यदि एक कार्यका अनेक कारणोमे भेद नही मानते, तो कार्य कारण भाव ही नही बन सकता। जैसे कि जो कार्य नही और कारण नही उनमे वृत्ति न होनेसे कार्य कारण भाव नही बन सकता। तंतु और घटमे क्या कार्य कारण भाव बन सकता है? क्यो नहीं बनता? यो नही बनता कि तंतुकी घटमे वृत्ति नही है। सो वृत्ति मानती हो, तो फिर और जब वृत्ति माननेके लिए चलेंगे कि कार्य कारणोमे रहता है ऐसी वृत्ति माननेको जब चलेंगे ये सब प्रकार तो वे पूछे जा सकते हैं कि प्रत्येक आधारमें वह कार्य एक देशरूपसे रहा या सर्वदेशरूपसे रहा? जैसे तंतुओं में पट बना तो पट क्या तंतुओके सर्वदेशसे बना या एक देशसे बना? इन दोनों विकल्पोमेसे यदि यह माना जाता है कि कोई एक कार्य द्रव्य अनेक अधिकरणोमें रह रहा, तो प्रत्येक आधारमें वह एक देशसे नही रह सकता, क्योंकि अवयवीको निरंश

[illegible] और वह अवयवी समस्त अवयवोंमें सर्वरूपसे [illegible] बहुत मानने पड़ेंगे। जितने अवयव हैं [illegible] अवयवोंका अवयवोंके साथ सर्वरूपसे [illegible] आदिक गुणी हैं उतने ही संयोग [illegible] और जितने सामान्यवान पदार्थ हैं उतने ही [illegible] मान रहे हो अवयव अथवा [illegible] हैं। [illegible] सामान्यवानका कोई व्यपदेश ही [illegible]

[illegible] आदिकी विक्षेपवादमें युक्त होनेकी [illegible] पदार्थोंको कथञ्चित् प्रदेशवान मान [illegible] सिद्धान्तमें वहां वह अवयवी [illegible] अनवस्था दोष आता है। तंतुओंसे पटका भेद मान [illegible] है तो कैसे वहां अपने अवयवोंमें एक देश [illegible] वृत्ति बनेगी और यों फिर उत्तरमें भी वही प्रश्न [illegible] तो अनवस्थिति आ जायगी। तो वहां फिर अवयवी आदिक अवयवोंमें सर्व वह एक ही नहीं रह सकता है। यह दोष स्याद्वादसे बहिर्भूत मतमें दुर्निवार दोष होता है। यों अवयवी अवयवोंमें एक देशसे न रहा और सर्वदेशसे भी न रहा। यहां वैशेषिकवादी कहता है कि एक देशसे भी न रहे और सर्व देशसे भी अवयव अवयवीमें न रहें, किन्तु रहता ही है, यह कथन शंकाकारका बिल्कुल असंगत है क्योंकि एक देश और सर्व देश इन दोको छोड़कर अन्य और कोई प्रकार भी नहीं है। शंकाकार कहता है कि समवाय नामका एक अन्य प्रकार तो है क्योंकि ऐसा बोध होता है कि ये सब "समवैति" अर्थात् सम्बन्धित करते हैं अवयवादिकोंमें अवयवी समाता है ऐसा सम्बन्ध है। सो देखिये अब समवायको छोड़कर जब अन्य कोई वृत्यर्थ न रहा रहनेका अर्थ न रहा, सो समवाय नामका प्रकारान्तर मानना ही चाहिए। इस शंकाके उत्तर में कहते हैं कि इस ही समवायके सम्बन्धमें तो विवाद चल रहा है। किन्हीं भी शब्दोंसे कहो, इस ही भावके सम्बन्धमें विवाद है। यही तो विचार किया जा रहा है कि अवयव आदिकोंमें अवयवी आदिक प्रत्येक आधारके प्रति क्या एक देशसे समवाय को प्राप्त होते हैं या सर्व देशसे? अवयव अवयवीमें क्या समस्त प्रदेशोंसे रह रहा है या किसी एक देशमें रह रहा है? और किसी प्रकार रहनेकी विधि ही नहीं है सो इन दोनो ही पक्षोंके दोषको बताया गया है। इस प्रकार कार्य गुण और सामान्यका अपने आश्रयभूत विवादापन्न अब द्रव्य गुण कर्मके साथ एकान्तसे भेदरूप नहीं है, क्योंकि इनमें कार्य, गुण, सामान्यकी वृत्ति पायी जा रही है। जिसका जिससे एकान्तता भेद होता [illegible] रहना सम्भव नहीं है। जैसे कि हिमाचल पर्वतमें

मे विन्ध्याचल नही रहता। क्योकि हिमाचलसे विन्ध्याचल अत्यन्त भिन्न है और अवयवी आदिकका अपने आश्रयभूत अवयवोमे रहना पाया ही जा रहा है इस कारण एकान्तसे भिन्नता इसमे नही कही जा सकती है। इस अनुमानके द्वारा गुण गुणी आदिककी भिन्नताका पक्ष बाधित हो जाता है। इस कारण भिन्न प्रतिभासत्वात् यह हेतु कालत्यायपदिष्ट है अर्थात् प्रत्यक्षसे बाधित है। अत यह मानना चाहिए कि लक्षण भेद ही इसमे है किन्तु आधारभूत वस्तु एक ही है और ये सब उसके अश हैं।

अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमे सयोग सम्बन्धसे भी इहेद' व्यपदेशकी अशक्यता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि यह अनुमान समीचीन नही है जो अनुमान किया गया है कि जिसका जिससे भिन्नताका एकान्त है उसकी वहाँ वृत्ति नही पाई जाती है। यह अनुमान असम्यक है, इसका प्रमाण यह है कि जब थालीमे दही रखा है तो वहाँ देखो थाली भिन्न चीज है दही भिन्न चीज है फिर भी थालीमे दहीकी वृत्ति पायी जा रही है। तब यह बात कहाँ रही कि जो जिससे भिन्न है उसका वहाँ रहना नही पाया जाता। मटकेमे दही रखा है मटका भिन्न है दही भिन्न है फिर भी मटकेमे दही मौजूद है इससे सिद्ध है कि आपका यह अनुमान मिथ्या है तब हमारे दिए गए उस अनुमानमे कि ये सभी परस्पर भिन्न हैं क्योकि भिन्न प्रतिभास हो रहा है यह बात सत्य साबित होती है, सयोग ही तो एक वृत्ति कहलाती है और वह भिन्न पदार्थोंमे ही हो सकती है। जो अभिन्न पदार्थ हो उनमे सयोग क्या कहलायगा? अतः भिन्नताका एकान्त सही तत्त्व है। इस शकाके उत्तरमे कहते है कि यह शंका युक्ति रहित है। देखिये—जो दो संयोगी पदार्थ हैं जैसे मटका और दही, इन संयोगी पदार्थोंका जो कि सयोग परिणामात्मक बन गए है उनमें सर्वथा भेद सिद्ध नही किया जा सकता। अन्यथा यदि सर्वथा भेद ही मान लिया जाय तो वहा सयोगका अभाव हो जाना चाहिए। सयोगी पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न सयोगकी उत्पत्ति यदि मानी जाय तो किसी एकका अन्यमें सयोग है यह कैसे व्यपदेश होगा याने दहीका और मटकेका एकदम अन्यत्व मान लिया जाय तो दहीका मटकेमे सयोग है यह बात कैसे बन सकेगी? जिससे कि सयोगरूप वृत्ति वहाँ सिद्ध हो सके?

भेदैकान्तमे सयोगियोमे-सयोगकी सिद्धिकी भी अशक्यता—यदि कोई शकाकार यह कहे कि उन सयोगी दोनो पदार्थोंका है ऐसा व्यपदेश बन जाता है। तो इस शकाकी विडम्बना देखिये यो तो वह सयोग किसी क्रियासे भी हुआ है और काल आदिकसे भी उत्पन्न हुआ है तब फिर क्रियाका है यह सयोग या कालका है यह सयोग ऐसा भी व्यपदेश हो जाना चाहिए। लोग कुछ ऐसा मानते है कि इस मटकेमें कर्म और काल आदिकका संयोग है। यदि कोई यह कहे कि वे दोनो समवायी कारण हैं दही और मटका, जिसमें सयोग हुआ है वे सयोगके समवायके कारणभूत हैं, यदि ऐसा कहा जाय और इसी बुनियादपर यह व्यपदेश बनायें कि इन दोनो

शंकाकार यह बताये कि इन दोनों में वह समवायी कारणपना क्यों आया ? कर्म आदिकमे वह समवायी कारणता क्यो नही आयी ? यदि कोई यह कहे कि इन सयोगियोमे सयोग है ऐसा ज्ञान होता है उससे सिद्ध है कि उन ही पदार्थोंमें सयोगका समवाय सिद्ध है तब फिर एक यह बडा प्रश्न हो बैठता है कि वह समवाय नामका पदार्थान्तर यहा ही क्यों हुआ ? और इसमें ही यह सयोग है ऐसे ज्ञानको क्या कराया ? कर्मादिकमे यह समवाय क्यों नही हो गया ? अथवा वहा इस इस थाली में कर्म है आदिक व्यपदेश क्यो न हो बैठे ? क्योकि अब तो संयोग समवाय पदार्थ सभी अत्यन्त भिन्न भिन्न चीज है। यदि शंकाकार यह कहे कि उन ही सयोगी पदार्थोंके द्वारा जो कि समवायी कारणोके द्वारा ही विशेषण विशेष्य भाव सिद्ध हो रहा है, किस प्रकार कि ये दोनो संयोग समवाय वाले हैं। अर्थात् मटका और दहीमें सयोगका समवाय हुआ है। इस तरह विशेषण विशेष्यभाव माना है तो वहाँ भी यह यहाँ है ऐसा ज्ञान क्यो बना ? कर्मादिकमे क्यो न बना ? यदि कहो कि कर्मादिकमे विशेषण विशेष्यभाव नही है इस कारण वहाँ यह ज्ञान नहीं बनता कि इस मटके और दहीमे कर्मका समवाय अथवा संयोग है। तो यहाँ भी यह प्रश्न खडा रहता है कि वह विशेषण विशेष्य भाव यहाँ ही क्यो हुआ ? कर्मादिकने क्यो न हो गया ? सभी जगह होना चाहिए। क्योकि अत्यन्त भेदवाली बात सब जगह समान है।

अदृष्ट विशेषके कारण "इहेद" व्यपदेश माननेपर विज्ञानवादके प्रवेशका प्रसङ्ग—शंकाकार कहता है कि यहाँ उस ही प्रकारके अदृष्ट विशेषका नियम है इस कारणसे मटकेमे दही है इस प्रकारका सम्बन्ध होता है व्यपदेश होता है और कर्मादिकमे नही होता। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते है कि फिर तो विशेषण विशेष्य भावसे क्या प्रयोजन रहा ? समवायसे क्या मतलब? सयोग माननेकी भी क्या जरूरत ? हाँ जगत ऐसा ही कह बैठे जहाँ कोई उत्तर न मिले कि भाई ऐसा ही अदृष्ट विशेषका नियम है उसीसे ही समवाय विशिष्ट यह समवायी है यह ज्ञान बन जायगा। इस पदार्थमे यह ही है यह विज्ञान बन जायगा और यहाँ ही यह पदार्थ सयुक्त है ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो बैठेगी। केवल एक अदृष्ट विशेष ही मानें और विशेषण विशेष समवाय सयोग आदिक माननेका श्रम क्यो किया जा रहा है ? अथवा जितने भी ज्ञान विशेष हैं वे सब अदृष्ट विशेषके वशमे रहते हैं। फिर पदार्थोंके भेद और प्रभेदकी कल्पना करनेका भी प्रयोजन क्या रहा ? और फिर ऐसी स्थितिमे तो विज्ञानवादका प्रवेश हो जायगा। क्योकि इस ढंगमे विज्ञानाद्वैतकी ही अदृष्ट विशेषपनेकी सिद्धि है। वहाँ माना गया है कि विज्ञान ही अदृष्ट है, विज्ञान ही कर्म है, ऐसा तो विज्ञानवादियोंने कहा है। विज्ञानवादियोके यहाँ एक वासना विशेष ही अदृष्ट कहलाती है। और, वह वासना विशेष पूर्व विज्ञानका विशेष है, क्योंकि उसके अनन्तर होने वाला जो पूर्वज्ञान है वह पूर्वज्ञान अनन्तर ज्ञानका प्रबोधक है ऐसा

विज्ञानवादके सिद्धान्तमे कहा है तो सब कुछ उत्तर एक वासना विशेषका बन जायगा। फिर विशेषण, विशेष्य, समवाय, सम्बन्ध, संयोग, पदार्थोंके भेद प्रभेद इन सबकी कल्पना करना व्यर्थ है।

शङ्कासमाधानपूर्वक विज्ञानाद्वैतवादी द्वारा विज्ञानमात्र तत्त्वका समर्थन

अब यहाँ शङ्काकार नैयायिक विज्ञानवादीके प्रति कह रहे हैं कि देखिये! अप्रबुद्ध वासना किसी ज्ञान विशेषको उत्पन्न नही कर सकती। यह नील है, यह पीत है-आदि क्षणोके रूपमे अप्रबुद्ध वासना किसी क्षयविशेषको उत्पन्न नही कर सकती, क्योकि यदि अप्रबुद्ध वासना ही ज्ञान विशेषको उत्पन्न करने लगे तो एक साथ ही सब ज्ञान विशेष हो जाना चाहिए, क्योकि वासना तो अप्रबुद्ध रही और अप्रबुद्ध वासनासे ज्ञान माना तो उसमे यह नियम कैसे बनेगा कि इस वासनासे यह ज्ञान बनेगा? अप्रबुद्धताकी सर्वत्र समानता है, ऐसी अप्रबुद्ध वासना तो किसी ज्ञानविशेषको उत्पन्न करती नही। अब रही प्रबुद्ध वासनाकी बात तो प्रबुद्ध वासना जब ज्ञान विशेषको उत्पन्न करने लगेगी तो भी वासना प्रबोधक हेतुओंकी अपेक्षा करेगी और वह हेतु है बहिर्भूत पदार्थ। तो यो विज्ञानमात्र ही कैसे रहा? बहिर्भूत पदार्थका भी अनित्यत्व सत्य है, ऐसा कहने वाले नैयायिकोके प्रति क्षणिकवादी योगाचार (विज्ञानाद्वैतानुयायी) बौद्ध कहते हैं कि देखिये! यह शङ्का यो सङ्गत नही है कि वासना प्रबोध भी तो विज्ञान विशेष ही सिद्ध होती है। विज्ञान विशेषके अभावमे बाह्य पदार्थोंकी सत्ता मात्रसे ये बाह्य पदार्थ प्रबोधके प्रति हेतु नही हो सकते। अन्यथा अर्थात् विज्ञान विशेषके अभावमे भी केवल बाह्य अर्थकी सत्ता मात्रमे वासना प्रबोध होने लगेगा। तो इसमे अति विडम्बना बन जायगी। पिशाच अथवा परमाणु आदिक भी वासना प्रबोधके कारण बन बैठेंगे, क्योकि अब विज्ञानविशेषके अभावमे भी मात्र बाह्य पदार्थोंसे वासना प्रबोधका अर्थात् वासना जगा देनेका कारण मान लिया गया है। ऐसा भी नही इष्ट है कि नील आदिक विज्ञानसे ही पीलादिक पदार्थोंकी वासनाका प्रबोध हो जाय और फिर उस वासना प्रबोधसे ही नील आदिक पदार्थोंका ज्ञान हो जाय, ऐसा माननेसे तो इतरेतराश्रय दोष हो जाता है। तब क्या है? सो सुनो! नीलादिक ज्ञानका अधिपति है चक्षु आदिक जन्य निर्विकल्प ज्ञान, सो उस निर्विकल्प ज्ञानके अनन्तर होने वाले जो विज्ञान हैं, जो नील आदिक पदार्थके ज्ञानको उत्पन्न करते हैं वे हैं वहाँ उन पदार्थोंकी वासनाके जगाने वाले और उन वासनाओंका भी जगाना पूर्वभावी विज्ञानसे माना गया है। इस तरह अनादिकालकी यह वासना नदीमे गिरा हुआ जीव अथवा यह विज्ञान प्रवाह इस समस्त ज्ञानसमूहका अन्विबोध करता चला आया है। तब इन बाह्य पदार्थोंसे क्या रहा प्रयोजन? एक विज्ञानमात्र ही तत्त्व है। इन बाह्य पदार्थोंको मान करके भी [illegible] ही पडेगा, क्योकि विज्ञानके बिना नील आदिक पदार्थों

उसे भी विज्ञान मानना ही पड़ेगा और फिर देखिये ! वह विज्ञान यदि है और बाह्य पदार्थ कुछ भी नहीं है तो स्वप्न आदिककी दशाओंमें उन पदार्थोंके विज्ञानका व्यवहार बन जाता है। तब बाह्य पदार्थोंका ख्याल, लगावका हठ करना व्यर्थ है। विज्ञानके बिना काम न चलेगा और बाह्य अर्थ बिना काम होता रहेगा।

तत्र वृत्त्युपलब्धि हेतुकी भेदैकान्तपक्षबाधकता व हेतुकी निर्दोषता— जब विज्ञानवादका प्रवेश हो गया, तब बाह्य अर्थकी व्यवस्था करनेकी जिसकी इच्छा हुई ऐसे आप नैयायिक आदिकको भी केवल अदृष्ट मात्रके निमित्तसे विशेषणविशेष्य-त्वका ज्ञान न मानना चाहिए क्योंकि विशेषणविशेषत्वज्ञानमें द्रव्य आदिकके ज्ञानकी तरह बाह्य अर्थ विशेषका विषयपना है इतना अवश्य समझना पड़ेगा। और फिर तब विशेषणविशेष्यभाव ज्ञानमें बाह्य अर्थविशेषकी आश्रयणीयता हो जानेपर अनवस्थिति हो जायगी, संयोग व संयोगियोंका अपना जो समवाय है, वह विशेषण विशेष्य भावरूप नहीं बनता। वह तो अपने सम्बन्धियोंसे भिन्न है तब अपने सम्बन्धियोंकी सिद्धिके लिए अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा रखेगा और वह अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा रखेगा। इस तरह अनवस्था दोष होगा, इस कारण विशेषण विशेष्यभाव जो कि संयोगी संयोग समवायके साथ माना जा रहा है वह अपने सम्बन्धियोंसे असम्बद्ध है सो सम्बन्धरूप नहीं हो सकता और जब यहाँ ही सम्बन्ध सम्भव नहीं होता तो समवायीकी फिर चर्चा ही क्या की जाय ? तो यों अनवस्था होनेसे संयोगीका संयोग जो कि संयोगियों से भिन्न है समवाय वृत्तिसे यह वहाँ ही है, यह व्यपदेश किस तरह बन सकता है ? वह ही संयोग तो मटकेमें दहीकी वृत्ति है अर्थात् दहीका रहना है, यही तो वृत्तिरूपसे संयोगको माना जा रहा है। लेकिन इसका निराकरण होगया, अतएव वृत्ति पाई जानेसे संयोगी व संयोग परस्पर अत्यन्त भिन्न नहीं है। सो हेतुमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं आता और न यह हेतु विरुद्ध है, क्योंकि सर्वथा भिन्न पदार्थोंमें कहीं भी एक का दूसरेमें रहना नहीं देखा गया है। इससे यह जो अनुमान है जो कि निर्दोष हेतुवों से सज्जित है वह भेद पक्षका बाधक है अर्थात् गुण गुणी, कार्यकारण आदिक परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं, इस प्रकारका भेदपक्ष यहाँ प्रमाणसे बाधित हो जाता है।

भेदैकान्तपक्षकी बाधकता व सदोषता—जब यह अनुमान भेदपक्षमें बाधा दे रहा है तब शङ्काकारके द्वारा कहा गया यह हेतु कि भिन्न प्रतिभास होनेके कारण गुण गुणी आदिकमें भेद है सो यह भिन्न प्रतिभासत्वात् हेतु कालात्ययापदिष्ट ही है, क्योंकि यह अनुमान बाधित हो गया और अनुमान बाधित ही नहीं किन्तु यह तो प्रत्यक्षसे भी विरुद्ध है। अवयव अवयवी आदिकमें जो भेद एकान्तकी बात कही जा रही है सो प्रत्यक्षसे ही वहाँ भेद नहीं मालूम होता, किन्तु उन अवयव अवयवी आदिकमें कथञ्चित् तादात्म्य ही साक्षात्कारमें आ रहा है, इस कारण भिन्न प्रतिभा-सत्वात् यह हेतु प्रत्यक्ष बाधित है अनुमान बाधित भी है।

कथंचित् तादात्म्य माननेपर वृत्तिविकल्पदोषोंकी अनापत्ति—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि इस प्रकारकी वृत्तिका दोष जैसा कि वर्णन किया गया है स्याद्वादियोके यहा भी उपस्थित होता है। जो अभी कहा गया कि उस अवयवीकी वृत्ति एक देशसे है या सर्वदेशसे है ऐसा ही विकल्प उठाकर स्याद्वादियोके यहाँ भी दोष दिया जा सकता है कि इनके यहाँ अवयवी अवयवोमे सर्वदेशसे है या एक देश से ? इस शकाके उत्तरमे कहते है कि यह प्रसग अनेकान्तमे नही बताया जा सकता। क्योकि वहाँ अवयव अवयवी गुण गुणी आदिकका कथञ्चित् तादात्म्य है तब वहाँ यह दोष नही उपस्थित करने हैं क्षणिकवादी जन जैसा कि क्षणिकवादी स्वयं यह मान रहे हैं कि ज्ञानका वेद्याकार और वेदकाकारसे तादात्म्य है क्योकि वह अशक्य विवेचन है। वेद्याकार और वेदकाकार इन दोनोमे अलग नही किया जा सकता इस कारण वहाँ यह विकल्प नही उठता कि वेद्याकार वेदकाकारोका ज्ञानमे रहना क्या एक देशसे है या सर्वदेशसे है। और न वहाँ विज्ञानकी सावयवता और बहुपना भी आता अथवा अनवस्था दोष भी नही आता। तो जैसे इस क्षणिकवादी शकाकारके यहाँ विज्ञानमे वेद्याकार वेदकाकारकी वृत्ति माननेपर भी दूषण नही उपस्थित करते उसी प्रकार अवयव अवयवीसे तादात्म्य रख रहे हैं अतएव अशक्य विवेचन है। यह अवयव है, यह अवयवी है ऐसा पृथक्करण नही किया जा सकता। एक घट बना है, घट तो अवयवी हुआ और उसमे भिन्न-भिन्न अणु अवयव हुए तो वहाँ यह भेदीकरण नही किया जा सकता कि यह तो अवयव है और यह अवयवी है। अवयवोको थोडी देरको उठाकर कही अलग रख दे, अवयवी अलग पडा रहे, तो वहाँ कुछ भी भेद नही है। तो अवयव अवयवीका अशक्य विवेचनत्व होनेसे तादात्म्य है इस कारण वहा भी क्या एक देशसे अवयवी अवयवोमे रहता है या प्रत्येक अवयवोमे सर्वात्मक रूपसे रहता है अथवा अवयव अवयवीमे एक देशसे रहता है यह बिल्कुल उठाये जानेका कोई भी दूषण नही दिया जा सकता। तो क्षणिकवादी सर्वथा भेदने जैसा दूषण दिया गया है उस प्रकार अवयव और अवयवी आदिकके कथञ्चित् तादात्म्यमे भी दूषण नही दे सकेंगे। यह दोष तो वहा ही आता है जहाँ सर्वथा भेदैकान्त मान लिया है। जैसे आत्मा गुणी है चैतन्य गुण है। तो अब गुण गुणीका तादात्म्य न मानकर वहाँ भी भेद मान लिया जाय तो यह दोष उपस्थित होता है कि वह चैतन्य आत्मामे एक देशसे रहता है या सर्व देशमे ? लेकिन जहाँ तादात्म्य माना गया है वहाँ रहनेके ये विकल्प उठाये ही नही जा सकते।

सामान्य, विशेषकी एकान्तता न होने स्याद्वादसिद्धान्तमें वृत्तिविकल्प का अनवकाश—अब और भी देखिये– जैसा कि कथञ्चित् तादात्म्यमे ये क्षणिकवादी बौद्ध जन वृत्ति विकल्पका दूषण न बता सके उसी प्रकार वैशेषिक भी कथञ्चित् तादात्म्यमें वृत्ति विकल्पके दूषण अथवा विरोध आदिक दोष नहीं लगा सकते

हैं, क्योंकि सामान्य विशेषो की तरह कथञ्चित् तादात्म्यमे वृत्तियोके विकल्पका दूषण और विरोध आदिक दोषोके उपालम्भका अवकाश नही है। देखिये जो अपर सामान्य माना गया है वह पृथक्करण बुद्धिका भी कारण है इसलिए भी वह विशेष इस नामको भी प्राप्त होता है। जैसे सत्त्व यह हुआ पर सामान्य क्योंकि सभी पदार्थ सत् है। अब उसके ही अन्दर द्रव्यत्व गुणत्व आदिक अपर सामान्य अथवा मूर्तत्व अमूर्तत्व आदिक अपर सामान्य या घटत्व पटत्व आदिक अपर सामान्य ये सब कुछ विशेषताको भी बतला रहे हैं क्योंकि सर्व पदार्थोंमे ये नही पाये जा रहे। इन कारण इनका नाम विशेष भी हो जाता है। यह बात निराकृत नही की जा सकती। यदि अपर सामान्यको केवल एक सामान्य रूप ही दिया जाय, वह तो मात्र सामान्य ही है किसी भी प्रकार वह विशेषरूप नहीं बनता, यो माना जाय तब अपर विशेषका अभाव हो जायगा। लेकिन अपर विशेषको शंकाकार वैशेषिकोने स्वय माना है। जैसे सत्त्व यह सामान्यरूप है और द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्व आदिक ये विशेषरूप है, क्योंकि विशेषरूप है, क्योंकि ये अल्प विषय वाले होते हैं। सामान्य महा विषय है और विशेष अल्प विषय वाले है विशेष कहते ही उसे हैं जो कुछमें पाया जाय शेषमें न पाया जाय। तो यो द्रव्यत्व आदिक जो अपर सामान्य हैं वे अल्प विषय वाले हैं। सो वे अन्यकी व्यावृत्तिके कारण है अतएव विशेष नामको प्राप्त होते हैं। ऐसा स्वय विशेषवादमे कहा गया है। जैसे घटमे घटत्व है तो उससे व्यावृत्त पटत्व भी है तो देखिये अपर विशेष बन गया ना। नही तो अपर विशेषका अभाव हो जायगा। इसलिए अपर सामान्यको मात्र सामान्यरूप ही नही कहेंगे। इसी प्रकार यदि अपर सामान्यको अपर विशेषरूप मान लिया जायगा तो अपर सामान्यका अभाव हो बैठेगा। यदि अपर सामान्यको सामान्य और विशेष दोनो रूप मान लिया जायगा तो अब देखिये—सामान्य और विशेषरूप इन दोनोंमे कथञ्चित् तादात्म्य मानना ही पडेगा क्योंकि वह अपर सामान्य सामान्य और विशेष दोनों रूप हो गया। तब उन दोनो रूपोमे कथञ्चित् तादात्म्य सिद्ध हो ही गया है।

अर्थ सामान्य और विशेषका पृथक सत्त्व न होनेसे कथचित् तादात्म्य के अभिमत द्वारा वस्तु स्वरूपकी व्यवस्था—शङ्काकार कहता है कि सामान्य और विशेषमे हम तादात्म्य कैसे मान लें और यह कहना कि उनके तादात्म्य मानना ही पडेगा यह बात कैसे बनेगी, क्योंकि सामान्य और विशेषरूपमें जो यह बात विदित होती है सो वह तो समवाय सम्बन्धके द्वारा हो जायगा। तादात्म्य माननेकी क्या आवश्यकता ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि उन सामान्य विशेषोका जो एक पदार्थ में समवाय माना है तो वह समवाय और है क्या चीज ? कथंचित् एक द्रव्यमे तादात्म्य है सामान्य और विशेषका, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ समवाय नहीं हैं, क्योंकि वहाँ

यह द्रव्यत्व आत्मा आदिक समस्त ६ पदार्थोंमे है यह तो हो गया अनुवृत्तका ज्ञान और द्रव्यत्व गुण कर्मादिक पदार्थोंमे नही है यह हो गया व्यावृत्तका ज्ञान। तो यो अनुवृत्त और व्यावृत्तके ज्ञानका कारण होनेमे इस अपर सामान्यमे सामान्याकार और विशेपाकार-इन दोनो ही आकारोका मानना इष्ट ही है। उन दोनो ही आकारोका किसी तृतीय पदार्थमे समवाय हो अथवा उन दोनो आकारोका परस्परमे समवाय हो गया यह नही कहा जा सकता। जैसे कोई ऐसा सोच ले कि पदार्थ वहाँ तीन हैं सामान्य, विशेप और एक वह पदार्थ जिसमे सामान्य विशेप खुद किया जा रहा है और फिर सामान्य विशेप इन दोनोका उन तीसरे पदार्थमे समवाय माना सो ऐसा नही है पदार्थ वह एक ही है। वह जाति दृष्टिसे सामान्यरूप है व्यक्ति दृष्टिसे विशेपरूप है। सो उन दो का किसी तीसरेमे समवाय माननेकी बात मिथ्या है इसी तरह कोई यह सोच ले कि दो ही पदार्थ हैं सामान्य और विशेप और उन दोनोका परस्परमे समवाय है सो नही कहा जा सकता, जिससे कि उन ही की तरह अवयव अवयवी आदिकमे कथचित् तादात्म्यरूप वृत्तिमे किसी प्रकारका दूषण बताया जा सके भेदएकान्तका पक्ष लेनेपर अब दूसरा भी दूषण सुनो! देखिये! अवयव आदिकसे अवयवी आदिकका अत्यन्त भेद यदि मान लिया जाता है तो उनमे देशका भी भेद होना पडेगा और कालका भी भेद हो जायगा। अर्थात् अवयवका देश भिन्न अवयवीका भिन्न अवयवका सम्बन्ध अन्य और अवयवीका सम्बन्ध अन्य इसी प्रकार गुण गुणीमे कार्य कारणमे विशेप और अभावमे सभीमे देशका भी भेद हो जायगा और कालका भी भेद हो जायगा, क्योकि वहाँ तो अत्यन्ताभेद मान लिया गया है। इसी बातको अब समन्त भद्राचार्य अगली कारिकामे कहते हैं।

> देशकालविशेषेपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धवत्।
> समानदेशता न स्यान्मूर्तकारणकार्ययोः॥ ६३ ॥

भेदैकान्तपक्षमे गुण गुणी आदिमें देशभेद व काल भेद हो जानेकी आपत्ति—जैसे कि पृथक् आश्रय वाले घट पट पदार्थोंका देश भेद और काल भेदसे रहना बन रहा है इसी प्रकार गुण गुणी अवयव अवयवी आदिकका भी भेद एकान्त माननेपर देशभेदमे और काल भेदमे उनका रहना बनेगा, किन्तु ऐसा तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। भेद एकान्तपक्ष माननेपर समानदेशता नही बन सकती है। कोई यह सोचे कि अवयव अवयवीका हम एक ही देशमे प्रधान मान लेते हैं तो कहने मात्रसे बात न बन जायगी। जो मूर्त हैं अवयव अवयवी, कारण कार्य उन्हें सर्वथा भिन्न-भिन्न भी मानें और समान देशमे उनका रहना माने यह बात नही बन सकती। अत यह स्वीकार करना होगा कि गुण गुणी अवयव अवयवी कारण कार्य आदिक लक्षण भेदसे तो

भिन्न हैं लेकिन आश्रय आधार सत्व ये न्यारेन्यारे नही है।

अत्यन्त भेद होनेपर भी देशभेद कालभेद न होनेकी शका और उसका समाधान—अब यहाँ नैयायिक शङ्का कर रहे हैं कि देखिये आत्मा और आकाश ये अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं ना सो अत्यन्त भिन्न पदार्थ होनेपर भी आत्मा और आकाशमे न तो देशभेद है न काल भेद है, अर्थात् जिस ही स्थानपर आत्मा है उस ही स्थानपर आकाश है। और जिस कालमे आत्मा है उस ही कालमें आकाश है, तो इनका देश और कालसे भेद नही रहता है इस कारण कार्य आदिकका यहाँ भेद सिद्ध नही होता जिससे कि पृथक उनका रहना कहा जाय। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकार की उक्त शङ्का संगत नही हैं कि आत्मा और आकाशका भी सत्त्व और द्रव्यत्व आदिक की अपेक्षा भेद नही है। जैसा सत्त्व आत्मामे है वैसा ही सत्त्व आकाशमे है। द्रव्य भी दोनों हैं। तो इस अपेक्षासे भेद न होनेके कारण आत्मा और आकाशमे अत्यन्ताभेद सिद्ध नही किया का सकता। और इस ही प्रकार अब आत्मा और आकाशमे अभिन्न-देशता और अभिन्नकालताका भी विरोध नही कहा जा सकता। देखिये वैशेषिकोके यहाँ भी समस्त मूर्तिमान पदार्थोंमें एकसाथ सयोग वृत्ति मानी गई है तब उन दोनोका अत्यत भेद न माननेसे देश और कालसे अभेदका विरोध न रहा और ऐसा अंगीकार करनेपर उस ही प्रकार जैसे कि आत्मा और आकाशके सम्बन्धमे अभेद अब मान लिया गया, अवयव अवयवी आदिकमे भी देश और काल दोनोसे अभेद सिद्ध हो जाता है और ऐसा मान लेना यह कथञ्चित् अभेदको सिद्ध करने वाला बन जाता है। किन्तु ऐसा अभेद शङ्काकारको इष्ट नही है। क्योकि उनके ही आगममे जो कहा है उसके विरुद्ध जाता है। यह बात उनके लिए अपसिद्धान्तकी बन जाती है। तब जिस कारण कि अवयव अवयवीमे, गुण गुणीमे, कार्य कारणमे भेद नही माना है शङ्काकारने तब अवयव अवयवी आदिकका अत्यताभेद होनेसे भिन्न देश भिन्न काल रूपसे भी उनकी वृत्ति हो जानी चाहिए। जैसे घट और वृक्ष इनमे अत्यंताभेद है, तो देखिये भिन्न भिन्न देशोमे पडे हुए हैं। तो जहा अत्यताभेद होता है वहाँ वे भेद भी है, काल भेद भी है। घट बना किसी कालमे, वृक्ष बना किसी कालमे। उनमे वृक्ष कभी भी नष्ट हो जायगा, ऐसा तो नही है कि घटका उत्पाद विनाश वृक्षके उत्पाद विनाशके समयमें ही होता है। तो जैसे घट और वृक्षमें अत्यताभेद होनेके कारण देश भेद और काल भेद है इसी प्रकार गुण गुणी आदिकमे भी भेद एकान्त मानने पर देशभेद और कालभेद बन बैठेगा। इस कारण भेद एकान्तका पक्ष युक्तिसंगत नहीं रहता।

वर्णादिकोंमे अत्यन्त भेद न होनेसे हेतुमे व्यभिचारका अनवकाश—शङ्काकार कहता है कि आपके दिये गये हेतुका वर्णादिकके साथ व्यभिचार आता

है। जैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श ये अत्यंत भिन्न हैं फिर भी न इनमे देशभेद है न काल भेद है। ऊपर यह हेतु बनाया गया है कि जहा अत्यत भेद माना जाय वहाँ देश भेद और कालभेद दोनो मानने पडेंगे लेकिन यहाँ वर्णादिकमे भेद है फिर भी देशभेद और कालभेद नहीं हैं। तब यह हेतु सदोष हो गया। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि रूप, रस, गध स्पर्श आदिकमे भी भेद एकान्त माना नहीं गया है क्योंकि सभी लोग देख रहे हैं कि वर्ण, रस, गध, स्पर्श ये अपने आश्रयभूत पदार्थसे भिन्न जगह नही रह रहे हैं। उनका भेद नही देखा गया, न आगममे माना गया है। तो जैसे वर्णादिकका अपने आधारसे भेद नही देखा गया, न माना गया, इस कारण अत्यत भेदत्वात् इस हेतुका देशभेद कालभेद सिद्ध करनेमे किसी प्रकारका दूषण नही आता हैं। तो गुण गुणी जब अत्यंत भिन्न मान लिये जायेंगे तो इनका देश भेद और काल भेद हो जायगा जो कि अनिष्ट है। अत. भेद एकान्तका आग्रह करना उचित नही है। यहाँ शकाकारका अनुमान प्रयोग था कि सर्व ही तत्त्व परस्पर अत्यन भिन्न है, क्योंकि भेद प्रतिभास होनेसे। इस सम्बन्धमे यह कहा जा रहा है कि देश कालकी अपेक्षासे उनमें भेद हो जाना चाहिए। इसपर शकाकारने आपत्ति दी कि अत्यताभेद होनेपर भी देशकालकी अपेक्षा भेद-नही होता और दृष्टान्त दिया है वर्णादिक। उसका निराकरण किया गया कि वर्णादिकमे एकान्तन भेद नही माना गया है। वर्णादिक अपने आश्रयभूत द्रव्यसे अभेद रूपसे है और वर्णादिक भी परस्पर अभेदरूपसे है इस ही प्रकार इन वर्णादिकके साथ इस तरह पक्षकृत गुण, गुणी आदिकके साथ एक देशरूप से भी व्यभिचार नही आता, क्योंकि यदि यो व्यभिचार किया जाने लगे तो जब अनुमान प्रयोग किया शकाकार नैयायिकने कि पृथ्वी आदिक किसी बुद्धिमान कारण के द्वारा बनता रहता है कार्य होनेसे तो इसका जो कार्यत्व हेतु है वह पक्षके एक देश तृण पर्वत आदिकमें कार्यपना होकर भी किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है यह सिद्ध नही होता सत्त्व होनेसे तृण पर्वत आदिकके साथ वह व्यभिचार आ जाता है। तो इस तरहका स्वय शकाकारका अनिष्ट प्रसग हो जायगा।

कार्यकारण आदिके समान देशकालत्व स्वीकार करनेपर अवयव अवयवीकी समानदेशकालताके अभावका प्रसग—यदि यह कहा जाय कि कार्य कारण आदिकको हम समान देश और समान कालमें स्वीकार करते हैं। क्योंकि सिद्धान्त इस ही प्रकार बना है सब सुनो कि इस नैयायिकके यहाँ फिर अवयव अवयवी का समान देशमें रहना न हो सकेगा मूर्तिमान होनेमे गधा और ऊंटकी तरह। जैसे ये दोनो स्वतत्र पदार्थ हैं तो एक ही जगह दोनो तो नही समा सकते। दो मूर्त पदार्थों का समान देशमें रहनेका विरोध है। शकाकार कहता है कि देखिये आयु और कर्म ये दोनो एक ही देशमें रह रहे है फिर विरोध कैसे है कि मूर्त पदार्थोंका एक देशमे रहना न बन सके। इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि अपना ही अवयवरूप देश जिसके

ऐसे वहाँ दो अवयवी माने गए हैं। अतः यह दोष नहीं दिया जा सकता। तंतु और कपड़ेमे भी अपने अवयवरूप दोष होनेसे उनमे भी समान दोषपनेका अभाव होगा। ऐसा दोष नहीं दिया जा सकता। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि परमाणु और द्वाणुक स्कध इनमे तो भिन्न देशपनेका अभाव है इस कारण समानदेशपना जो आप बतला रहे हैं वह नहीं हो सकता। अब शकाकार कहता है कि देखिये—जो दो अणु वाला स्कध है वह तो परमाणुका अवयव है और परमाणु होना है निरश सो उसके अन्य आश्रयमे स्थित होना होता ही है। इस कारणसे परमाणुका और द्वाणुकका समान देशमे रहना नहीं होता इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस प्रकार तो लौकिक देशकी अपेक्षासे समानदेशपना माननेका प्रसंग आता है और वह मूर्त पदार्थोंमें होता नही। जो प्रत्यक्ष कार्य कारण रूपसे नजर आ रहे हैं मूर्त पदार्थ उनमे समान देशपना नहीं बनता। अतएव कार्य कारणके सम्बन्धमे जो दूषण दिया है वह युक्त ही है।

अवगाहन शक्तिसे भिन्न पदार्थोंमें भी परस्पर अवगाहका अविरोध—शंकाकार कहता है कि मूर्त दो पदार्थोंका जब समान देशमे रहना न बना तो फिर अनेकान्तवादियोके यहाँ जो ऐसा कहा गया है कि एक आकाश प्रदेशमे असंख्येय परमाणुओंका अवस्थान है फिर इस कथनका विरोध कैसे न हो जायगा ? इस शका के उत्तरमें स्याद्वादीजन कहते हैं कि हम तो वहाँ उस प्रकारके अवगाहकी स्थिति होनेसे एकत्व परिणाम मानते हैं अर्थात् उन सब परमाणुओंका स्कंध रूपसे एकत्व है अतएव विरोध नहीं आता। एक ही मूर्तिमान द्रव्य एक ही प्रदेशमें ठहरा हुआ हो इसमे कुछ भी विरुद्धताकी बात नहीं है अथवा ऐसी अवगाहन शक्ति है कि जहाँ एक पदार्थ हो वहाँ अनेक पदार्थ भी ठहर सकते हैं। जैसे किसी घड़ेमें जल डाला फिर नमक डाल दिया फिर भस्म डाला, फिर उनमे अनेक सूइयाँ गपो दिया तो इस प्रकार एक देशमें कितने ही पदार्थोंका अवस्थान सम्भव हो गया। सयोग भावसे स्थित रहने वाले और अपने व्यक्त एकत्व परिणामके लिए उत्सुक नहीं है ऐसे उन स्कधोका अनेक आकाश प्रदेशोमे अवस्थान हो जाय अवगाहन विशेष होनेसे तो इसमें तो यह ही बात सिद्ध हुई कि आकाशका लक्षण अवगाह है। सो ये सभी पदार्थ एक आकाशमे ठहर गए। इसमें स्याद्वादियोके सिद्धान्तमे कुछ भी विरोध नहीं आता। अब यहा नैयायिक एक प्रश्न कर रहे हैं और उसका उत्तर स्वामी समतभद्राचार्य दे रहे हो। इन दोनों बातोंका निरूपण अगली कारिकामें कहा जा रहा है।

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स संबन्धो न युक्तः समवायिभिः ॥ ६४ ॥

द्रव्य गुण आदिमें सामान्य विशेष आदिक समवायकी प्रसिद्धि—यहाँ शङ्काकार नैयायिक कह रहे हैं कि अवयव आदिकका आश्रयभाव और अवयवी

आदिकका आश्रयीभाव होनेके कारण उन समवाय कारणोमे, ततु पट आदिकमे भेद नही रहता। यद्यपि परमार्थभूत अवयव अवयवी गुणगुणी आदिकमे भेद है फिर भी आश्रय आश्रयी भावके कारण उनमे भेद स्वीकार नही किया गया। अत भेदपक्षमे जो दोष बताये जा रहे हैं वे दोष युक्त नही बैठते। आचार्य कहते हैं कि शङ्काकारकी यह आशंङ्का युक्त नही है, समवायरूप सम्बन्ध समवायीके साथ असम्बद्ध होनेके कारण बनती नही है। तब सभी कारण, कार्य, उपादान, उपादेय, अवयव, अवयवी सर्वथा भिन्न हैं, तो उनमे किसी प्रकार समवाय सम्बन्ध भी नही कहा जा सकता। शङ्काकार कहता है कि समवायके द्वारा कार्य कारण आदिकका परस्परमे प्रतिबंध हो गया। इसलिये वहाँ भेद नही नजर आता और जिसमे कि देशकाल आदिकके भेदसे उनका रहना बने देशकालकी अपेक्षा उनमे एकत्व है यह बताकर ही तो भेदका निराकरण किया जाता था लेकिन बात वहाँ यह है कि कार्यकारण आदिकमे वस्तुत भेद है, फिर भी परस्पर प्रतिबन्ध सम्बन्ध होनेके कारण देशकालके भेदसे उनका रहना नही होता, इस शङ्काके उत्तरमे पूछ रहे हैं कि भला यह बतलाओ कि फिर तो वह समवाय समवायीमे जो रहता है तो क्या अन्य समवायोसे जो रहता है या स्वत ही रह लेता है? यदि कहो कि समवायी कारणोमे समवाय अन्य समवायके द्वारा रहता है तब तो यहाँ अनवस्था दोष होगा। समवायका समवायीमे रहना सिद्ध करने चले वहाँ अन्य समवायकी जरूरत पडे तब उस अन्य समवायका समवायी अथवा समवायमे रहनेके लिए अन्य समवायकी आवश्यकता होगी। इस तरह आगे बढते जाइये कही भी विराम न हो सकेगा।

समवायकी स्वय वृत्तिकी उपपत्तिकी मीमासा—यदि कहो कि समवायी कारणोमे वह समवाय स्वय ही रहा करता है तो तब स्वय रहने लगे तो द्रव्यादिकमे उस ही प्रकार उपपत्ति बने फिर समवायकी बात कहना व्यर्थ है। और तब कार्य कारण आदिकमे सम्बन्ध कैसे बन सकेगा? यदि यह माना जाय कि समवाय अनाश्रित है इस कारणसे वहाँ अन्य सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा नही होती। तो इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि फिर भी वह समवाय तो असम्बद्ध ही रहा। समवायके साथ समवायका सम्बन्ध रहा फिर कैसे द्रव्यादिकके साथ वह समवाय रह सकेगा? जिससे कि पृथक् सिद्ध न हो? इससे यह घटाया जाने वाला सम्बन्ध युक्त नही हैं। समवाय के साथ समवाय सम्बन्ध घटित नही होता। और ऐसा हो नही सकता, कि जो स्वय सम्बन्धसे रहित है ऐसा समवाय सम्बन्ध समवायीके साथ बन सके। जिस समवायका समवायीके साथ कोई बन्धन नही है वह समवाय समवायीमे कैसे पहुंचेगा? अन्यथा तो समवायीके साथ अप्रतिबद्ध होकर भी समवाय सम्बन्ध अगर मान लिया जाता है तब तो काल आदिकके साथ भी सम्बन्ध बन जाना चाहिए। क्योकि जैसे समवायमें वह अप्रतिबद्ध है उस ही प्रकार काल आदिकमे भी वह समवाय अप्रतिबद्ध

है। सम्बद्ध होता हुआ ही अपने सम्बन्धियोंके साथ संयोग सम्बन्ध देखा गया है। संयोगका अपने सम्बन्धियोंके साथ कथञ्चित् तादात्म्य सम्बन्ध है क्योंकि उनका संयोग परिणाम हुआ है।

विशेषण विशेष्यभाव आदि कल्पनाओंसे भी समवायके समर्थनका अभाव—शङ्काकार कहता है कि समवाय भी तो विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्धके कारण समवायसे सम्बद्ध हो जायगा। इसके उत्तरमे कहते हैं कि यह शङ्का युक्त नहीं क्योंकि उसका भी अन्य विशेषण विशेष्य भावमें अपने सम्बन्धियोंके साथ सम्बन्ध माननेपर अनवस्था दोष आता है और अन्य विशेषण विशेष्यभावके बिना स्वयं ही अपने सम्बन्धियोमे उसका सम्बन्ध मान लेते हैं तो फिर उस सम्बन्धपनेका विरोध हो जायगा। तब कोई प्रतिबन्धकी बात ही न रही तो कैसे समवायका समवायीमें सम्बंध बन जायगा ? यदि कहो कि समवायीका समवायके साथ कथञ्चित् तादात्म्य है तब तो ठीक ही बात पर आ गए कार्य कारण आदिकका भी फिर कथञ्चित् तादात्म्य ही मान लो। फिर समवाय अथवा सत्ता सामान्य आदिक अन्य पदार्थान्तर का नाम व कल्पना करनेसे लाभ क्या ? वहाँ कोई फल नहीं प्राप्त होता। यदि कहो कि पहिले तो पदार्थ था नहीं, कोई कार्यका आश्रय था ही नहीं और सत्ताके सम्बन्धसे कार्यकी उत्पत्ति मानी है इसलिए सत्ता सामान्यकी कल्पना करना सफल ही है, ऐसा यहां नैयायिक शङ्काकार कह रहे हैं। उसके समाधानमे कहा जा रहा है कि जो अनुत्पन्न है कार्य उस कार्यमे सत्ताका समवाय कैसे हो सकता है तथा जो कार्य उत्पन्न हो गया उसमे सत्ताका समवाय मानना व्यर्थ ही है। जहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं उस बातके माननेसे लाभ क्या है ? अरे स्वरूपका लाभ ही तो स्वरूप की सत्ता कहलाता है। जो कार्य उत्पन्न हो गया जिसके स्वरूपका लाभ मिल गया तो वह तो अपने स्वरूपमे सत् है ही। तो स्वरूप लाभ जिसका है पहिलेसे ही उसमें कुछ सम्बन्ध आदिक मानना स्वरूप लाभके लिए व्यर्थ है और यदि वह स्वरूपसे असत्मे सत्ताका सम्बन्ध मान लिया जाता है तो यहाँ बडी विडम्बना बन जायगी। फिर तो गधेके सींग आदिकमे भी सत्ताका सम्बन्ध हो जाना चाहिए। तो इस कारण कार्य कारणको सर्वथा भिन्न माननेपर, द्रव्यापेक्षया भी उनमे एकत्व न माननेपर कार्य कारणकी विधि नहीं बन सकती। कारण है पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य और कार्य है उत्तर पर्याय संयुक्त द्रव्य तो इस उपादान उपादेय तत्त्वका आश्रय तो वह एक ही रहा। अब अवस्थाके भेदसे उन कार्य कारणमे भेद है और कथञ्चित् कार्य कारणमें अभेद है। वहाँ भेद एकान्तका पक्ष करना युक्तिसंगत नहीं है।

कार्योत्पादके सम्बन्धमे सत्त समवाय वाला शंकाकारका सिद्धान्त—

शङ्काकार कहता है कि उत्पन्न हो रहा हुआ ही कार्य सत्ताका समवायी माना जाता है क्योकि ऐसा सिद्धान्त है कि पहिले असत् हुए कार्यमे सत्ताका समवाय होना इस हीका नाम उत्पाद है। कोई यह कहे कि सत्ता समवायका नाम है उत्पाद है उतना ही रहना तो उसमे प्राग असत यह विशेषण क्यो लगाया जाता है ? सो सुनो ! प्राग असतः यह विशेषण न लगे तो कार्यकारणकी सयुक्तिक व्यवस्था नही बताई जासकती केवल समवायके सत्ता सामान्यकी तरह नित्यपना होनेसे 'उत्पाद है' ऐसा ज्ञान व कथन नही बनता। अत मान लेना चाहिए प्राक असत्‌के सत्ता समवाय, क्योकि सत्ता सम्बन्धी ही कोई पदार्थ या समवाय ज्ञान व अभिधानका हेतु नही बन पाता है। यहाँ शङ्काकार कहता है कि उत्पद्यमान ही कार्य सत्ताका समवायी माना गया है क्योकि हमारे सिद्धान्तमे यह वाक्य है कि पहिले असत् कार्यका ही सत्ता समवाय होना उत्पाद कहलाता है केवल समवायके सत्ता सामान्यकी तरह नित्यता होनेसे 'उत्पाद है' इस प्रकारके ज्ञान और शब्दका कारण नही बनता है, ऐसा नैयायिक अपना सिद्धान्त रख रहे हैं, उसकी मीमासाके लिए समन्तभद्राचार्य कारिका कहते है।

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः।
अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः॥ ६५॥

सामान्य और समवायको स्वतन्त्र पदार्थ माननेपर दोषापत्ति—सामान्य और समवाय एक एक करके प्रत्येक पदार्थमे समाप्त हो जाते हैं तब आश्रयके बिना फिर सामान्य और समवाय बाहर कहा रहेगा और इस तरह फिर अनित्यकार्य मे कैसे सत्त्वका वर्तन रहेगा ? वैशेषिकोके यहाँ परमार्थसे सामान्यका आश्रितपना होना व समवायका समवायियोमे आश्रितपना होना उपचारसे माना गया है, समवाय का समवायीमे परमार्थत प्रतिबध नही है सम्बन्ध, समवाय, बन्धन नही है, तब तो असम्बद्धता ही कहलायगी। समवायका उपचारसे आश्रितपना माना है समवायीमें तब अप्रतिबद्धपनेका ही आश्रय करके समवायका असम्बद्धपना ही सिद्ध होता है। समवायका आश्रितपना होनेमे जो उपचार किया गया है, उसका निमित्त है समवायके होनेपर इसमे यह है ऐसा जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान यह है उपचारका कारण, यहाँ वैशेषिक सिद्धान्तकी एक वार्ता रखी है कि वैशेषिक सिद्धान्तमे समवाय परमार्थत पदार्थमे सम्बद्ध नही है किन्तु उसका उपचारसे सम्बन्ध माना जाता है। तब परमार्थ से समवायका सम्बन्ध रहा नही। ऐसा जो मानते हैं उनके सिद्धान्तमे प्रत्येक नित्य द्रव्यमे सामान्य और समवाय भी असम्भव हो गए। फिर उत्पाद और विनाशवान पर पदार्थोंमे याने अनित्य कार्योंमें कैसे उनकी वृत्ति रहेगी ? किसी ही एक पदार्थमें नित्य आत्मामे आश्रयभूतमे सर्वरूपसे सामान्य और समवाय परिसमाप्त हो गया है एव उत्पद्यमान घट आदिक प्रदेशमे पहिले न था ऐसा नैयायिक कहते हैं तब वहाँ य

एक देशसे नहीं रहता या सर्व देशसे नहीं रहता, ऐसा विचार करनेपर वहां यह सिद्धान्त सङ्गत नहीं बैठता है। यदि सर्व आत्मासे पूर्व आधारका परित्याग नहीं कर तब कैसे उस सामान्यके विषयमें यह कहा जायगा, कि वह उस प्रदेशमे पहिले न था अन्यथा सामान्य और समवायका अभाव हो जायगा। यदि कहोकि एक देशसे संबको प्राप्त नहीं होता तो यह भी कथन ठीक नहीं आता कि सामान्य और समवाय अंश नहीं माना गया है। यदि कहो कि उत्पत्तिके बाद उत्पन्न हो रहे प्रदेशमें स्वयमे ही वह सामान्य और समवाय हो जायगा, क्योंकि नित्य द्रव्य आत्मा आकाश आदि में वह अपना परिचय कराने वाला होता है और आश्रयके विनाशपर नष्ट नहीं होता नित्य होनेसे, तब प्रत्येकमे परिसमाप्त है, यह बात फिर कहां रही ?

सर्वत्र व्यापक सत्त्व सामान्यकी सिद्धिका शङ्काकारको निष्फल प्रयास

शङ्काकार कहता है कि देखिये ! सत्ता सामान्य द्रव्य, गुण कर्मादिकमे प्रत्येकमें परिसमाप्त हो जाता है, क्योंकि सत् प्रत्ययकी अविशेषता है। सत्तासामान्य है सब जगह क्योंकि सत्त्व प्रत्ययका कहीं विच्छेद नही होता। समवाय भी सब जगह है, समवायी पदार्थका भी सदा काल विच्छेद नहीं है, क्योंकि समवायी पदार्थ भी नित्य है परन्तु जहां जन्म और विनाश होता है, ऐसा किन्हीं पदार्थोंका उत्पन्न हो रहे प्रदेशमे उत्पन्न होने वाले पदार्थका सत्ता समवायीपना सिद्ध होता है अर्थात् वहां उन कार्योंमें सत्ताका समवाय हो जाता है। कार्यका उत्पाद और समवाय अथवा निष्ठा और सम्बन्ध एक समयमे है। जिस ही समयमें कार्यका उत्पाद है उस ही समयमे समवाय है। अत. प्रकृत दूषण यहां नही आते। सत्ता और समवायका पहिले असत्त्व न होनेसे उस कार्योत्पादके प्रदेशमे सत्ता और समवायका अन्यसे आगमन होना न तो सर्वात्मा माना है, न एक देशसे माना है और पीछे अर्थात् उत्पन्न होने वाले प्रदेशके पश्चात् होना माना नहीं गया है क्योंकि सत्ता और समवाय सदा नित्य है। ऐसी शङ्काकारकी शङ्का भी युक्तिसङ्गत नहीं बैठती। सर्वगत सामान्यका, समवायका जो कि एक माना गया है उसका अपने आश्रयमें प्रत्येकमें परिसमाप्त होना असम्भव है। अन्यथा सामान्य और समवाय यह पहिले बन जायगा जैसे कि आश्रयका स्वरूप। ऐसा भी नही कह सकते कि सामान्य और समवायका सभी जगह अविच्छेद है इसलिए एकत्व है, उनका अविच्छेद असिद्ध है। प्रागभाव आदिक अनित्य कार्योंमें सत्का समवाय असम्भव होनेसे विच्छेद पाया जाता है।

सत्त्व व असत्त्वमे अविनाभावित्व होनेसे सत्त्वैकान्तके पक्षकी असमीचीनताकी घोषणा—प्रागभाव आदिककी सर्वथा भाव विशेषयता होनेसे वहां उनका विच्छेद न होगा। यदि ऐसा कहो तो अभाव भी सर्वगत और एक हो जायगा। फिर सभी जगह असत् प्रत्ययकी अविशेषता और अविच्छेदकी अविशेषता हो जायगी। जैसे कि द्रव्यादिकमे सत् प्रत्यय सामान्य रूपसे पाया जाता उसी प्रकार पररूपसे

सत् असत्का बोध भी पाया जाता है और जैसे अभावका सदैव भावधीनपना है उसी प्रकार सत्ताभावका अभावाधीनपना है। तो यदि अभाव है तो वहां किसीका सद्भाव है तब अभाव है और यदि सद्भाव है तो किसीका अभाव है तब ही उसका सद्भाव रह सकता है। यही उस अभावके अविच्छेद न होनेका कारण है। जैसे माना कि सर्वत्र सद्भाव है उसी तरह मान लीजिए कि सर्वत्र अभाव है। सद्भाव भी समस्त पदार्थोंमे निरन्तर है और अभाव भी समस्त पदार्थोंमे निरन्तर है, क्योंकि पररूपसे असत् हो वहां ही तो सद्भावकी प्रतीति होती है। जैसे घडेका सद्भाव है। जब तक घडा है, सत्का सद्भाव है अथवा अन्य कुछ भी बने उस मिट्टीका सदा सद्भाव है तो उस घडेके सद्भावके साथ घडेको छोड़कर अन्य जगतमे जितने भी पदार्थ हैं उन समस्त अन्य पदार्थोंका अभाव भी निरन्तर है। अर्थात् घडेमे घटपना सदाकाल है तो अघटपनेका अभाव भी सदाकाल है। क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो सर्व पदार्थों मे साथयका प्रसग होगा अर्थात् सब एकमेक हो जायेंगे। घडेमें जैसे घडेका सद्भाव है इसी तरह कपडे आदिकका अभाव भी न रहे तो अर्थ यह होगा कि घडेमें कपडेका सद्भाव हो गया फिर घडा क्या रहा ? तो जैसे सद्भाव सदाकाल है उसी प्रकार अभाव भी सदाकाल रहता है। तो यह ही यो कहते हो कि सत्ताका विच्छेद नहीं है। सत्ताका भी विच्छेद नही है और असत्ताका भी विच्छेद नही है। यदि ऐसा न माना जाय तो सब पदार्थ एकमेक हो जायेंगे। फिर वहां अभावमे विशेष व्यवस्था न की जा सकेगी कि यह घट है यह पट है क्योंकि अब तो सब एकमेक हो गए। यह चीज अमुक ही है ऐसी व्यवस्था तब बनती है जब यह स्वीकार किया जाता है कि यह चीज अपने स्वरूपसे है पररूपसे नही है और जैसे स्वरूपसे है। यह बात सदा बनी रहती है इसी प्रकार "पररूपसे नहीं है" यह बात भी सदा बनी रहा करती है।

सत्त्वकत्ववादीकी अभावविरोधमें एक विस्तृत शंका—शंकाकार कहता है कि यदि अभावका एकत्व माना जायगा अर्थात् अभावको एक माना जाय तो कार्यकी उत्पत्तिके समय प्रागभावका अभाव हो गया सो तब प्रध्वसाभाव आदि सभी अभावोका अभाव हो जायगा याने अभाव तो एक रूप माना, सो जब एक रूप माना तब कार्य उत्पन्न हो रहा है कार्यकी उत्पत्ति होनेपर प्रागभावका अभाव हो गया और प्रागभावका अभाव होनेपर प्रध्वसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभावका भी अभाव हो गया फिर पदार्थ अनन्त हो जायेंगे। सर्वरूप हो जायेंगे। और अस्वरूप हो जायेंगे। अभावको तो अब मान लिया एक। सो जिस समय प्रागभावका अभाव हुआ तो अभाव जब एक है तो बाकी तीन अभावोंका भी अभाव हो गया प्रागभाव कहते हैं कार्य उत्पन्न होनेसे पहिले कार्यका अभाव रहना। जैसे घडा बननेसे पहिले मृत्पिण्डकी हालतमे घडेका अभाव रहना। प्रध्वंसाभाव कहलाता है कि जो चीज वर्तमानमे है उसका अभाव हो जाना। जैसे घडेसे खपरियां बननेपर घडेका अभाव हो

जाना इतरेतराभाव होता है कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अभाव रहना। घड़ेका पटमें अभाव है, कपड़ेका घटमें अभाव है। अत्यन्ताभाव कहते हैं उसे कि एक वस्तुमें अन्य वस्तुका त्रिकाल अभाव रहना। कभी भी एक पदार्थ दूसरे पदार्थरूप न हो सकेगा। तो अब यहाँ अभावको मान लिया एक तो प्रागभाव न रहे तब अन्य अभाव भी न रहेंगे। जैसे मृत्पिण्डमें घट उत्पन्न हो गया तो घड़ा उत्पन्न होनेपर यह तो कहा जायगा कि घटके प्रागभावका अभाव हो गया। घड़ेका प्रागभाव है मृत्पिण्ड। घड़ा पहिले न हो उसीको कहते हैं घटका प्रागभाव तो मृत्पिण्डका अभाव तो हो ही गया। तो यों जब प्रागभावका अभाव हो गया और अभाव है एक ही तो सभी प्रकारके अभावोंका अभाव हो गया। तो देखिये कैसी आपत्ति आती है कि प्रागभाव के मिटनेपर प्रध्वंसाभाव भी मिट गया तो अब पदार्थ मिटनेपर प्रध्वंसाभाव भी मिट गया तो अब पदार्थ अनन्तकाल तक रहना चाहिए क्योंकि अब पदार्थका प्रध्वंस तो माना नहीं। इसी प्रकार इतरेतराभाव न माने तो सर्व एकमेक हो जायगा क्योंकि एकका दूसरेमें अभाव तो रहा नहीं। इसी तरह अत्यंताभाव न मानेंगे तो कोई स्वरूप ही न रहेगा। तो जब एक द्रव्यमें जीवमें पुद्गल अणुका त्रिकाल अभाव है यह माना नहीं तो अर्थ यह हो गया कि न परमाणुका स्वरूप रहा न जीवका स्वरूप रहा। तो यों अनेक विडम्बनायें बन जायेंगी। इसी प्रकार जब प्रध्वंसका अभाव हो गया माने घड़ा फूट जानेपर प्रध्वंसाभाव हुआ था लेकिन खपरियोंसे पहिले और पश्चात् अगर प्रध्वंसका अभाव हो गया तो इसका अर्थ यह रहा कि जो उत्पन्न नहीं हुआ है कि इसके प्रागभावका भी अभाव हो गया याने घड़ा बननेसे पहिले प्रध्वंसाभावका अभाव है। एक अभाव होनेपर बाकी सब अभाव भी मिट जाते हैं। ऐसी बात यहाँ कही जा रही है। तो इसके मायने है कि घट और अनादि कालसे ही रहना चाहिए और पहिले पीछे और एकमें दूसरा नहीं ये सारे विशेषण भी नहीं बन सकते क्योंकि अभाव एक है। जैसे प्रागभाव कि, कार्यका पहिले अभाव है। प्रध्वंसाभाव कैसे हुआ कि कार्यका बादमें अभाव होता है। इतरेतराभाव कैसे हुआ, कि एक पर्यायमें दूसरी पर्यायका अभाव है। अत्यन्ताभाव कैसे हुआ कि एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका अभाव है तो यह विशेषण भी अभावके साथ न बन सकेगा। क्योंकि अभावका अब अभेद मान लिया, बिना विच्छेदके मान लिया, ऐसा नैयायिक शंका करते हैं।

अपेक्षावश भाव व अभावकी सर्वत्र समानता दिखाते हुए उक्त शङ्का का समाधान—अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि जैसे अभावको अविच्छिन्न माननेपर आपत्ति दे रहे हो तो इसी प्रकार शङ्काकारके यहाँ भी बताये गए सत्त्वको एक माननेपर और समवायको एक माननेपर किसी भी पदार्थका सत्ता समवाय होने पर सब ही पदार्थोंमें सत्ता समवाय क्यों नहीं हो जाता? शंकाकार यहाँ यह कह

रहा था कि यदि अभावको एक मान लोगे तो प्रागभावका अभाव होनेपर सारे पदार्थ एकमेक हो जायेंगे अथवा अनन्त हो जायेंगे, तो यहाँ भी यह बतायें कि सत्ताको भी एक माननेपर और समवायको भी एक माननेपर फिर किसी पदार्थमें अगर सत्ता आये तो सभीमे क्यो न आ जायगी। शंकाकार सत्ताको एक मान रहा है। सारी दुनियामे सत्त्व एक है और उस सत्त्वका जिस जिसमे सम्बन्ध होता जायगा वह पदार्थ सत् होता जायगा। शङ्काकारके मतके अनुसार आत्मा आकाश द्रव्य मन गुण सभी कुछ यह स्वय नही है किन्तु इसमे सत्ताका सम्बन्ध होता है तब यह पदार्थ सत् कहलाता है। और वह सत्ता एक है। जैसे कि अनेकोको यह शंका हो सकती कि यह टेबिल रखी और इसके चार हाथ दूर पर संदूक रखा है तो टेबिल और सदूक के बीचमे सत्ता तो किसीको भी नजर नहीं पडती। और शंकाकार यह कहता है कि सत्ता एक है सर्वव्यापक है, उसका जिस जिसमे समवाय बने वे वे पदार्थ सत् कहलाते हैं तो इस प्रकार सत्ताको एक मान रहे। तो जब सत्ता एक है तो सारे पदार्थोंमे जब कि पदार्थ उत्पन्न हुआ, उसमे जैसी सत्ता आयी तो एकदम सब पदार्थोंकी सत्ता क्यो नही हो जाती याने एक कार्य बननेपर अनन्तानन्त कार्य जो भूत भविष्यमे होनेको हैं, हो बैठें। सो ऐसा क्यो नही होता ? यदि शकाकार यह कहे कि सर्व पदार्थोंमे सत्ताका समवाय माननेपर पदार्थकी उत्पत्तिके पहिले भी प्रध्वस के सम्बन्धमे भी वह सद्भाव बन बैठेगा। तो इस शंकाके उत्तरमे कहते है कि अभावान्तरमे भी अत्यन्त सत्त्व सिद्ध होनेसे फिर प्रागभाव आदिक भेदकी व्यवस्था क्यो न बन जायगी ? यदि यह कहोगे कि प्रागभाव आदिकमे तो ज्ञान हो रहा है कि घडा पहिले न था। घडा बादमे नही है। घडेमे कपडा नही है आदिक ज्ञान होनेसे अभावमे चार प्रकारकी व्यवस्था बन जाती है तो इसके उत्तरमे कहते हैं कि फिर सत्ताके समवायका भी इस तरह भेद व्यवस्था बन जाय। वहाँ भी कह सकते है कि प्रध्वससे पहिले कार्यका सत्ता समवाय असिद्ध नही है प्रागभावके बाद अर्थात् प्रागभावका अभाव होनेपर कार्यका सत्ता समवाय असिद्ध नही है। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमे इसमें यह नही है इस प्रकारका ज्ञान विशेष असिद्ध नही है तब फिर सत्ता भी अनेक बन जाय और समवाय भी अनेक बन जाय।

भावस्वरूप व अभाव स्वरूपके सम्बन्धमे वास्तविक तथ्य—वास्तविकता तो यह है कि घडेमे घडेकी सत्ता है और वह घडेमे ही सम्बन्धित हो गयी। अब कोई सत्ता घडेसे बाहर नहीं है। इसी तरह जितने भी पदार्थ हैं सब पदार्थोंकी सत्ता उन उन ही पदार्थोंमें समा जाती है। उन पदार्थोंसे बाहर कोई सत्ता नजर नही आती। तो यो जितने पदार्थ हैं उतनी सत्ता अपने आप बन गई क्योकि पदार्थ और सत्ता कोई न्यारी चीज नही है कि सत् अलग हो, घडा कपडा आदिक अलग हो और सत्ताका सम्बन्ध बने तब वह घडा कपडा सत् कहलाये। किन्तु जो जो पदार्थ हैं उनमे

उनका सत्त्व स्वयमेव है और उनका सत्त्व उनमे ही पूर्ण हो जाता। उनसे बाहर सत्त्व नही रहती। और इसी प्रकार समवाय भी अनेक बन जाते है। घडेमे सत्त्वका तादात्म्य कहलाया। अब यह तादात्म्य घडेसे बाहर कहाँ है? जिस पदार्थमें जो गुण है, शक्ति है, स्वरूप है उनका समवाय अर्थात् तादात्म्य उनका उनमें ही है। तो यों सत्ता भी अनेक सिद्ध होती है और समवाय भी अनेक सिद्ध होता है।

शंकाकार द्वारा सत्त्वके एकत्वका प्रतिपादन और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि सत्ता अनेक नही है और समवाय भी अनेक नही है। किन्तु जो समवायी पदार्थ है उनके विशेषण ही अनेक प्रकारके हुआ करते हैं। जैसे घड़ा है, कपडा है आदिक जो नाना सत्ता मालूम होती हैं तो सत्ता नाना नही है। सत्ता तो एक है, किन्तु विशेषण अनेक हैं। घडा, कपडा आदिकके साथ जो जो शब्द जोडेंगे वे विशेषण कहलाते हैं तो विशेषण बनता है सत्ता बनती नहीं है अर्थात् "है" तो एक ही है। जैसे घडा है, कपडा है, सन्दूक है तो "है" तो एक ही है। उस "है" के साथ जो शब्द जोडे जाते हैं घडा, पडा सदूक आदिक वे बनते हैं विशेषण। तो विशेषणोका भेद है। सत्ताका भेद नहीं है इसी प्रकार विशेषणका भेद है। सत्ता का भेद नहीं है इसी प्रकार विशेषणका भेद है पर समवायका भेद नहीं है। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि जैसे यहाँ यह कह डाला कि सत्ता सर्वत्र एक है पर जिसकी सत्ता कहेगे वह विशेषण अनेक है। इसी प्रकार अभावमे भी मान लो। अभाव सर्वत्र एक है। अब उसमें जो कुछ भी कहेंगे कार्यका पहिले अभाव तो कार्य का पहिले कार्यका पीछे एकका दूसरेमे, ऐसा विशेषण नहीं बनता है। पर अभाव बनता नहीं है। इस तरह अभावमे भी भेद न हो सकेगा। वहाँ भी यह कहा जा सकेगा कि अभाव तो एक है पर अभावके विशेषणोंमे भेद हुआ करता है।

अभावकी अनेकताकी तरह सत्त्वकी भी अनेकता—शङ्काकार कहता है कि अभावमे तो विरोधी धर्म मालूम पड रहे हैं, इस कारण वहाँ भेद है। जैसे कि कार्य पहिले न था घडा पहिले न था, घडा बादमे नही है, घडेका कपडेमे अभाव है तो यो ये विरोधी धर्म हैं, पहिले नहीं हैं यह बात और किस्मकी है। बादमें नही है यह बात और किस्मकी है और इसका अमुक नही है यह ढङ्ग और किस्मका है। तो ये सब विरोधी धर्म हैं एक ढङ्गसे दूसरा ढङ्ग उल्टा है, तो यो विरोधी धर्म देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि अभावमें तो भेद है याने प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव आदिक चार प्रकारके अभाव मान लेने चाहियें, क्योंकि उनमें विरोधी धर्मका सम्बन्ध है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो सत्ताका भी भेद और समवायका भी भेद विरोधी धर्मके सम्बन्धसे मान लेना चाहिए। जैसे है को तो एक मानते हो और उस में घडा है, घड़ा विशेषण लगा देनेसे भेद मानते तो घडा और कपडा ये विरोधी ही

दो चीजें हुई। घडा अलग चीज है कपडा अलग चीज है तो विरोधी धर्मका सम्बन्ध होनेसे सत्तामे भी भेद मानलो, उसे क्यो एक माना जा रहा है ? इस प्रकार यह सिद्ध है कि सत्ता विश्वरूप है अर्थात् जितने पदार्थ है उन सब पदार्थोंमय सत्ता है। प्रत्येक अणु है और उस अणुका सत्त्व उस हीमे है अणुका वह सत्त्व अणुसे बाहर नही रहता है। इस तरह जब पदार्थ अनन्त है, द्रव्य अनन्त हैं तो उनके साथ सत्ता भी अनन्त है। सो जैसे अभावको विश्वरूप मानते हो, जितने पदार्थ हैं उतने ही अभाव है तो जैसे अभाव विश्वरूप है उसी प्रकार सद्भाव भी विश्वरूप है, जितने पदार्थ हैं उतनी ही सत्ता है और उतने ही समवाय हुए अर्थात् तादात्म्य सम्बन्ध जैसे आत्मामे चैतन्यका तादात्म्य है पुदगलमे अमूर्तत्वका तादात्म्य है तो ये तादात्म्य भी अनेक हो गए। ऐसा नही है कि वह तादात्म्य या समवाय दुनियाभरमे एक हो और जिसमे समवाय आ जाय उसमे सत्ताका ज्ञान हो ऐसा नही है।

अपेक्षासे सत्त्वके एकत्व व अनेकत्वकी सिद्धि—सत्त्वका एकत्व मान लेनेपर एकत्वका विरोध भी न मानना चाहिए अर्थात् कोई कहे कि जब घडेकी सत्ता घडेमे ही समाप्त है, कपडेकी सत्ता कपडेमे ही पूरी समा गई तो यो सत्ता जब अनेक हो गए तब जिसे महासत्ता कहते हैं स्याद्वादी लोग इस तरह कोई एक सत्ता न रहेगी सो कहते हैं। ऐसी भी शङ्का अथवा सम्भावना न करें, क्योकि दृष्टिसे सत्ता अनेक हैं सो भी सामान्य विवक्षासे सत्ता एक है, इससे किसी प्रकारका विरोध नही आता। याने समस्त पदार्थ विशेष दृष्टिसे अपनी अपनी सत्ता रख रहे है और जब सभी पदार्थों मे केवल सत्त्व सामान्य देखा जाय तो सत्त्वका एकत्व हैं। जैसे १०० आदमी बैठे हैं तो प्रत्येक आत्माकी सत्ता न्यारी-न्यारी है। प्रत्येक पुरुषका सत्त्व उसका उनमे ही समाया हुआ है। यो १०० पुरुष हैं तो १०० ही सत्त्व हैं। अब उन १०० पुरुषोको जब सामान्य दृष्टिसे देखते हैं कि सभी पुरुष पुरुष ही हैं, उनमे सामान्यपना भी है तो यो जब मनुष्यपने सामान्यकी अपेक्षा देखते हैं तो वहाँ सत्ता एक है। जैसे कोई पुरुष कहता है कि नौकरको कि कोई आदमी बुला लाओ और वह बालकको ले आये तो अब मालिक उस नौकरपर नाराज नही हो सकता कि तुम बच्चेको क्यो ले आये, इतना बडा कार्य तो बडे पुरुषसे होता ? तो उसका यह उत्तर हो सकता कि आपने यही कहा कि मनुष्य लाओ। यदि यह कहा जाता कि किसी बलवान युवकको लाओ तो यह विशेष कहलाता तो विशेषकी दृष्टिसे सत्ता न्यारी न्यारी है। अनेक है, पर सामान्यकी दृष्टिसे सत्ता एक हैं। उसमे भेद नही है। और फिर देखिये जो सद् विशेष हैं उनमे ही तो सत्ता सामान्यकी प्रतीति होती है। जैसे घडा कपडा सन्दूक आदिक ये अनेक पदार्थ हैं। तो उन अनेक पदार्थोमे ही सत्त्व, सामान्य है यह बात प्रतीतिमें आती है। कोई विशेषके बिना सत्ता केवल एक कही पडी हो सो बात नही है। जैसे कि असत् विशेषोमें असत्त्व सामान्यकी प्रतीति होती है इसी प्रकार समवाय

विशेषोमे भी समवाय सामान्यकी प्रतीति होती है। जैसे आत्मामे ज्ञानका समवाय है तो ज्ञानका कथञ्चित् तादात्म्य है और परमाणुमे मूर्तपनेका समवाय है, तो समवाय सामान्य तब ही तो जाना जायगा जब पहिले सामान्य विशेष समझा हुआ हो तो उन्हीं समवाय विशेषोमे समवाय सामान्यकी प्रतीति होती है। तो तादात्म्यका या स्वरूप है। जब कोई इसका वर्णन करेगा तब यों कहेगा कि तादात्म्य एक है। समवाय एक है। मगर वह समवाय कहाँ है ? जब आधार रूपमे देखेंगे, व्यापनेके ढंगमे देखेंगे तो वह अनेक सिद्ध हो जायगा। जैसे कि संयोग विशेषोमे संयोग सामान्य की प्रतीति होती है इस चौकीपर दवातका संयोग है तो संयोग सामान्य कब समझा गया ? जब दवात और चौकीका संयोग विशेष भी ज्ञानमे हो। जैसे चौकीपर दवात है। संदूकपर कपडा है आदिक अनेक पदार्थोके साथ अनेक पदार्थ जुटे हुए हैं तो संयोग सामान्य इसे कहते हैं कि दोका एक जगह अवस्थान हो जाने, तो ऐसा संयोग सामान्य तब ही जाना जाता है, वहाँ ही जाना जाता है जहाँ दो या अनेक पदार्थोका सम्बन्ध देखा जा रहा हो। तो संयोग विशेषोमें ही संयोग सामान्यकी प्रतीति है। इसी तरह सत्ता विशेषमे सत्ता सामान्यकी प्रतीति, समवाय विशेषमें समवाय सामान्य की प्रतीति होती है इस तरह सिद्ध है कि जगतमे जितने भी पदार्थ हैं, सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हुआ करते हैं। कोई भी पदार्थ केवल विशेषरूप हो सो नहीं होता। किन्तु सब ही पदार्थ सामान्य विशेषरूप हुआ करते हैं।

पदार्थकी सामान्यविशेषस्वरूपतामें दोषोका अनवकाश—यहाँ कोई यह शङ्का न करे कि पदार्थ तो है सामान्य विशेषात्मक अब उसमे सामान्य भी हो, विशेष भी हो तो उसमें जो सामान्य है वह भी सामान्यविशेषात्मक होगा, क्योंकि सामान्य है ना ! जो है है वह सामान्यविशेषात्मक है ऐसी स्याद्वादियोंने रटन लगा रक्खी है। इसी प्रकार जो पदार्थमे विशेष है वह विशेष भी सामान्यविशेषात्मक होगा। तब यों अनवस्था दोष होगा। अब उस सामान्यविशेषमे भी अलग-अलग सामान्यमें सामान्य विशेष कहा, विशेषमे सामान्य विशेष कहा तब कहीं भी विराम न हो सकेगा। अन्यथा अर्थात् सामान्यमे सामान्य विशेष न लगावेंगे और विशेषमे सामान्य विशेष न लगावेंगे तो सर्व कुछ सामान्य विशेषात्मक है यह जैनियोकी प्रतिज्ञा खण्डित हो जायगी। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि अनवस्था दोष तो तब आयगा और प्रतिज्ञा सामान्य विशेषात्मकताकी तब मिटेगी, जब कि सामान्य विशेषको अलग अलग माना जाय। पदार्थमे सामान्य विशेष अन्योन्यात्मक है। सामान्यमें विशेष पडा है, विशेषमे सामान्य पडा है। जैसे घडा कपडा आदिक विशेष है तब वहाँ हम सत्त्व सामान्य कह सकते हैं। इसी प्रकार सत्त्व जो कुछ है तो वहाँ विशेष भी पडा हुआ है तो सामान्य और विशेष अन्यान्यात्मक हैं। तब द्रव्य दृष्टिसे तो एक है और जब वहाँ परस्परमें भेद देखा जाय तो पर्याय दृष्टिसे वह अनेक है अथवा भिन्न-भिन्न है। तो यों

अपेक्षा है सामान्य विशेषकी परस्परमे इस कारणसे उनमे किसी भी प्रकारका दोष नही दिया जा सकता है अथवा वह सामान्य विशेषात्मक है पदार्थ तो अनवस्था दोष हो सो बात नही। जो लोग ऐसा मानते हैं कि सामान्य तो अपने विशेषसे निकल करके अलग हटा हुआ है और विशेष अपने सामान्यसे निकलकर अलग हटा हुआ है। जैसे कि एक घडा है। घडेमें घटत्व सामान्य है अर्थात् जितने भी घडा हैं सबमे घटपना है तो यो घटत्व सामान्य है और घडेमे जो घडा रखा हो, जितना उसका आकार है, जितने वजनमे रूप, रंग है उस दृष्टिसे वह घडा वही है; अन्य नही है, यो हो गया विशेष तो जैसे उस घडेमे सामान्य तो हुआ घटपना और विशेष हुआ यही घट तो ऐसा नही है वहा कि उस घटसे निकलकर घटत्व कही अलग धरा हो और उस घट सामान्यसे हटकर विशेषघट अलग ही पडा रहता हो ऐसा कोई मानता हो तो सामान्य विशेषात्मक माननेपर अनवस्था दोष आ जायगा। पर जो सामान्य विशेषको अन्योन्यात्मक मानते हो उनमे यह दोष नही आ सकता है, इसी तरह सामान्यको विशेषसे भिन्न माना जाय और विशेषको सामान्यमे भिन्न माना जाय और उनको स्वतन्त्र एक दूसरेकी अपेक्षा न रखने वाले माना जाय तो प्रतिज्ञाकी हानि बनेगी, पर जो लोग जैसे स्याद्वादीजन सामान्य विशेषको अन्योन्यात्मक मानते हैं और एक ही वस्तुमे समाया हुआ मानते हैं तो वहाँ प्रतिज्ञा हानि नही होती। यो स्याद्वादमे यहाँ वस्तुका स्वरूप सर्वप्रकार भली भाँति सिद्ध होता है, पर वैशेषिकोके सिद्धान्तमे वस्तुको सामान्य विशेषात्मक नही माना, सामान्यको स्वतन्त्र पदार्थ विशेषको स्वतन्त्र पदार्थ माना है तो उनके ही सिद्धान्तमे पहिले कहे हुए ये सारे दोष आयेंगे- स्याद्वादियोके ये सब दोष नही आते।

सर्वथानभिसम्बन्धः सामान्यसमवाययोः ।
ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥६६॥

भेदैकान्तमे सामान्य समवाय व पदार्थ तीनोकी असिद्धि—वैशेषिक सिद्धान्तमे सामान्य और समवायका सर्वथा ही सम्बन्ध नही बनता और सामान्य समवायके साथ अर्थका भी सम्बन्ध घटित नही होता। इस कारणसे ये तीन अर्थात् सामान्य समवाय और अर्थ ये आकाशपुष्पकी तरह असत् ही रह जाता है। सामान्य और समवायका परस्परमे सम्बन्ध है नही। क्योकि सामान्य और समवायमे न तो सयोग सम्बन्ध माना गया है और न समवाय सम्बन्ध माना गया है। सामान्य और समवाय कोई सम्बन्ध ही न रहा तो सामान्य समवायका क्या अर्थ ? और फिर ऐसे अवस्तुभूत उन दोनोसे अर्थका भी सम्बन्ध नही है। तब ये तीनो अपना सत्त्व कायम नही रख सकते हैं। सयोग सम्बन्ध तो द्रव्य द्रव्योमे माना गया है और समवाय सम्बन्ध अयुक्त सिद्ध गुण गुणीमें आधार आधेयमे सम्बन्ध माना गया है लेकिन,

सामान्य और समवाय ये न तो द्रव्य द्रव्य हैं और न गुण गुणी है। फिर इसमे न संयोग बनता है और न समवाय बनता है। यदि कोई यह आशंका करे कि सामान्य और समवायमें विशेष्य विशेषण भाव इस समय बन जायगा सो विशेष्य विशेषणभाव इस समय बन जायगा सो विशेस्य विशेषणभाव सामान्य और समवायमे बताना केवल प्रलाप है। इसमें विशेष्य विशेषण भाव होना असम्भव है। और, फिर कदाचित कोई यह कहे कि सामान्य समवायी है सो इससे विशेष्य विशेषणभाव बन जायगा। तो ये बतायें कि सामान्य जो समवायी बनता है वह स्वत बनता है या पर पदार्थसे बनता है? स्वत: तो कह नहीं सकते, क्योंकि स्वतः कोई समवायी नही माना गया। समवायके सम्बन्धसे पदार्थोंको समवायी माना गया है। यदि कहोगे कि परसे सामान्य समवायी कहलाने लगेगा तो इसमे फिर कहीं भी अवस्थान नही रह सकता। फिर वह पर भी क्या? जो सत्‌से असम्बन्धको प्राप्त होगा? उसके लिए फिर अन्य समवाय समवायी है इस प्रकार विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना करना भी मिथ्या है। तथा एक पदार्थमे समवायका अनवकाश है, वहा समवायकी गुंजाइश नही है। समवाय किसी भी पदार्थमे असम्बद्ध है। क्योंकि समवायका और पदार्थके साथ जो सम्बन्ध बनता है उसके लिये कोई सम्बन्ध माना नही गया है। तब इन पदार्थोंमे सामान्य समवायमें सर्वथा संबन्धका अभाव सिद्ध होता है। और, तब इसका कोई सम्बन्ध ही न रहा। सामान्य अर्थसे निराला है, समवाय अर्थसे निराला है, तब ऐसी स्थितिमे परस्पर जिसका सम्बन्ध नही है, ऐसा सामान्य और समवायके साथ द्रव्य गुण कर्म ये पदार्थ भी सम्बद्ध नही हो सकते हैं। द्रव्यमे सत्ताका समवाय है, गुण कर्म में सामान्यका समवाय है आदिक कुछ भी नही कहा जा सकता। जिससे कि उनमे सत्ताका समवाय सिद्ध किया जा सके और इस ही कारण ये तीनो अपने स्वरूपको धारण नही कर सकते हैं। जैसे कि कछुवेके रोम कछुवेके रोमका कोई स्वरूप है क्या? होते ही नही हैं फिर उनके विषयमे कुछ कहना, सम्बन्ध बताना यह मिथ्या प्रलाप है।

भेदैकान्तमे कर्ता कर्म आदिकी विभक्तिकी अनुपपत्ति—उक्त प्रकार सामान्य समवाय और अर्थ ये परस्पर किसीसे कोई सम्बद्ध नहीं हैं। और, यो जब अर्थ सामान्य और समवाय ये तीनो परस्पर सम्बन्धरहित हो गए तो सम्बन्धरहित हो गए वे रहे क्या? यदि सम्बन्धरहित माने जा रहे तो अर्थ सामान्य समवाय ये कुछ भी सत् नहीं रह सकते। और, जब ये सत् नही रहे तो असत्‌मे कर्तृत्वपनेकी बात ही क्या है? कोई भी स्वरूप जब सम्भव ही नही है तो किसे कर्ता बताओगे और किसको अन्यको कर्म बताओगे? तो जब पदार्थ सत्ता समवाय सामान्य, ये परस्पर असम्बद्ध हैं और इस कारणसे इनमे कर्ता कर्म भाव नही बनता है जब कर्ता कर्म भाव नहीं बना तो ये सभी पदार्थ अपने स्वरूपको धारण करें यह कैसे कहा जा सकता है?

धारण करें यह तो लिङ्ग प्रत्ययका विधान है। वह कर्तामें प्रयुक्त होता है और कर्तृत्व यहाँ सिद्ध हो नही रहा और कर्ममें द्वितीया विभक्तिका निर्देश होता है तो जब कर्ता और कर्म ही न रहे तो यह विभक्ति भी कहाँमे बन जायगी? तो इसका भी कहा जाना अशक्य है कि ये तीनो हैं अथवा अपना स्वरूप रखते हैं।

स्वरूपसत्त्व माननेपर सत्ता सामान्य समवाय आदिके पृथक् कल्पनाके प्रयासकी व्यर्थता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि परस्पर सम्बन्ध रहित भी हो तो भी इस द्रव्य गुण आदिकमे स्वरूपसे तो सत्त्व प्रसिद्ध है याने सत्ता सामान्यसमवाय ये पदार्थमे सम्बद्ध नही हैं, सभी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत् हैं। लेकिन इनका स्वरूप-सत्त्व तो प्रसिद्ध है, इस कारण पदार्थ समवाय और सामान्य इनका असत्त्व नही कहा जा सकता। किन्तु कछुवेके रोम, आकाश पुष्प, वंध्यापुत्र, खरगोशके सीग आदिकमे स्वरूप सत्त्व ही नही है। तो ऐसा दृष्टान्त बताना यह सब विषम उपन्यास है अर्थात् उटपटांग कहे हुए दृष्टान्तका प्रकृतके साथ मेल नही खाता। भले ही अर्थ सामान्य समवाय सत्ता ये सब परस्पर असम्बद्ध हैं लेकिन स्वरूप सत्त्व सबका प्रसिद्ध है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि द्रव्य गुण कर्म इनका स्वरूप सत्त्व मान लेनेपर फिर सत्ताका समवाय किसलिए कराया जानेका श्रम किया जा रहा है ? फिर इस सत्का समवाय व्यर्थ है। जैसे कि सामान्य आदिकका स्वरूप सत्त्व मान लेनेपर सत्ताका समवाय कराना व्यर्थ है ऐसे ही जब द्रव्य गुण कर्म इनका स्वरूप सत्त्व मान लिया गया फिर सत् ही हो गए, सत्ताका समवाय करानेकी फिर आवश्यकता ही क्या है ? और ऐसा होता भी नही; सत्ता समवाय व्यर्थकी चीज हो जायगी। अथवा यदि द्रव्य गुण कर्मका स्वरूप सत्त्व मान लेनेपर भी सत्ताका समवाय बताना आवश्यक समझा जाय तो सामान्य आदिकमे भी सत्ताका सम्बन्ध हो बैठना चाहिए। यदि इस ख्यालसे कि सामान्य आदिकमे सत्ताका समवाय होना व्यर्थ न हो जाय, यदि सामान्य आदिकका स्वरूप सत्त्व नही माना जाता तो सामान्य आदिक और कूर्मरोम, खरविषाण, इनमें कोई विशेषता नही रहती। जैसे कूर्मरोम स्वरूपसे सत् नही है अब तो जो दृष्टान्त दिया है वह तो बिल्कुल संगत है ना!

भेदैकान्तमें सत्त्व समवायकी अनियतता—भेदैकान्तवादी जरा यह भी बतायें कि सत्ता जब भिन्न मान ली गई है तो समवायकी तरह सत्ता सर्वथा सम्बन्धरहित हो गयी। जैसे कि समवाय पदार्थसे अत्यन्त भिन्न है तो समवायका पदार्थमे कोई सम्बन्ध न बना, इसी प्रकार सत्ताका भी कोई सम्बन्ध न बना। और, जब द्रव्य गुण, कर्मने सत्ताका सम्बन्ध नही बनता तो फिर ये द्रव्य गुण कर्म सत् कैसे हो जायेंगे ? तो सत्ताका सम्बन्ध न होनेपर भी द्रव्य गुण कर्ममें तो सत्त्व मान ले और कूर्मरोम आकाश पुष्प खरविषाण आदिकको सत्व नही मानते तो यह कोई न्यायकी

बात न रही। इसपर बहुत गहरी दृष्टिसे विचार करना चाहिए। जब तथ्यके विरुद्ध कोई अपना कदम बढ़ाने लगता है तब उसे अनेक विषम प्रसंग आ जाते हैं। तो जब यहाँ द्रव्य गुण कर्ममें सत्ताका समवाय मानकर सत्त्व बना रहे हो तो सत्ताका समवाय तो तब ही कराया जा रहा है जब द्रव्य गुण कर्म असत् हो तो ऐसे ही असत् कूर्म रोम आदिक हैं फिर सत्ताका सम्बन्ध बताकर द्रव्य गुण कर्मका सत्त्व बताओ और कूर्म रोम आदिकमें सत्त्व नहीं बतायें, यह तो पक्षपातकी बात है, बहुत विचार करनेकी बात है। और फिर यह बतलाओ कि वह सत्ता सामान्य जो सर्वथा समवायसे असम्बद्ध है और द्रव्यादिकमे समवायी है तो कैसे उसे यों कह सकेंगे कि सत्ता सामान्य द्रव्यादिकमे समवायी है और समवाय न रहे ऐसा, यह कैसे कहा जा सकेगा? द्रव्य गुण कर्म आदिकमे समवायी अन्य समवायसे असम्बद्ध है ऐसा ही तो यहाँ प्रतीतिमे आ रहा है। और समझना चाहिए कि समवायी अन्य समवायसे असम्बद्ध है क्योंकि समवायके सम्बन्ध पानेका अभाव दोनो जगह ही समान है। उनमें इस कारण यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि द्रव्यादिकमें समवायी सत्ता सामान्य है और समवाय न हो सत्ता सामान्य यह अटपटी बात स्वीकार नही की जा सकती है।

अप्रतिबद्ध पदार्थोंमें समवायकी व्यर्थ कल्पना—यहाँ यदि शंकाकार यह मनमे आशंका रखे कि सत्ता समवायसे असम्बद्ध है और समवाय असद्भूत अन्य समवायसे असम्बद्ध है, यह विशेषण हो जायगी और उससे यह कहा जायगा कि सत्ता सामान्य तो द्रव्यादिकमें समवायी है, पर द्रव्यादिकमें समवायी नहीं है। इस आशंकापर मीमांसा कर रहे हैं कि यह निरखिये कि जब सामान्य और समवाय इन दोनोका सत्त्व और असत्त्व दोनोंसे सम्बन्ध नहीं है तो इस असम्बंद्धताको विशेषित क्या करते हैं अर्थात् विशेषण विशेष्यभावरूपसे सत् सम्बन्ध रहित वस्तु कैसे प्रयुक्त किया जा सकता है? कोई भी सम्बन्ध जो अपने सम्बन्धियोंसे सम्बन्ध रखता है तो अपने संबन्धियोंसे असंबद्ध ही रहकर कोई संबन्ध उन सम्बन्धियोंमें घटित नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार संयोग भी यदि अपने संयोगी पदार्थमें संबद्ध नहीं है तो अपने संयोगियोंमें संयोग भी घटित नही किया जा सकता है। संयोग तो गुण है और संयोगी गुणी हैं, पदार्थ हैं। गुण गुणीका संयोग संयोगियोंका समवाय होता है ऐसा वैशेषिक सिद्धान्त है। परन्तु संयोग अपने संयोगियोमे असम्बद्ध है। ऐसा नहीं कहा जा सकता इस कारणसे कार्य कारणका, गुण गुणीका सामान्य सामान्यवानका भेद एकान्त माननेपर कार्य कारण आदिक भाव युक्तिमें नहीं आते, अकार्य कारण आदिककी तरह। जैसे जो पदार्थ जिसका कार्य कारण नहीं है उनमें कार्य कारणकी बात नही कही जा सकती तो इसी प्रकार जब कार्य कारण गुण गुणीमे भेद एकान्त है, अत्यन्त भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं तो उनमें कार्य कारण भाव आदिक भी

नही कहे जा सकते, क्योंकि ये सब तो समवायसे भिन्न पदार्थ हैं उसी प्रकार समवाय भी उन सबका परस्पर घटन नही कर सकता अर्थात् वे सब परस्परमे असम्बद्ध हैं यह बात भी सङ्गत नही बन पाती, क्योकि सभी पदार्थ सर्वथा सम्बन्धरहित हो गए। जैसे सम्बन्धरहित अन्य अन्य पदार्थोंमें कुछ भी घटन नही किया जा सकता है। इस कारण समवाय असत् ही रहा और जो असत् है, वह अर्थक्रियाकारी होता ही नहीं। जैसे कूर्मरोम, यह क्या अपनेमे और परमें अर्थक्रिया कर सकता है?

भेदैकान्तपक्षमे किसीकी भी अर्थक्रियाकारिता न होनेसे शून्यताका प्रसङ्ग—असत्में अर्थक्रियाकारकत्व नही हुआ करता. सो यों द्रव्य, गुण, कर्म सत्ता, सामान्य, समवाय ये सभी असत् हो जाते हैं। वे सामान्य सत् जो पदार्थोंसे असम्बद्ध हैं वे अपने विषयमें ज्ञान उत्पन्न करा दें, इतनी भी अर्थक्रियाको करनेमे समर्थ नहीं हो सकते। किसी कार्यको कर सके, यह भी नही बनता और वे अपना ज्ञान करा सकें यह भी वहाँ नहीं बनता। तब यह ही निष्कर्ष निकला कि द्रव्यादिक पदार्थ हैं ही नही, क्योकि सत्ताका समवाय उनमे नहीं है। वे पदार्थ स्वय सत नहीं हैं। सो सत्ताका समवाय न होनेसे द्रव्यादिक पदार्थ सत नही हो सकते। यहाँ शङ्काकार कहता है कि इस हेतुका सामान्य आदिकके साथ व्यभिचार होजायगा, क्योकि सामान्य आदिकमे सत्ताका समवाय नही है, फिर भी सत्त्व माना ही गया है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि सामान्य समवाय और विशेष इनका भी परमार्थसे सत्त्व नही माना गया है और उपचरित सत पदार्थोंमे कोई व्यभिचारकी बात बताना यह सङ्गत नहीं बनता। परमार्थतः सत्त्वका अभाव हो फिर उसकी सिद्धि अगर की जाय तो ऐसे मे तो बड़ी बडी विडम्बनायें हो सकती हैं। मसकमे ऊपर रहने वाले धूमके साथ फिर सत्ता धूमका भी व्यभिचार हो जायगा। इस प्रकार कार्य कारण आदिकमें भिन्नताका एकान्त करना समीचीन नही है क्योंकि वहाँ प्रमाणका अभाव है। तो जैसे इन पदार्थोंमें अभिन्नताका एकान्त करना प्रमाणसिद्ध नही है इसी प्रकार कार्य कारण आदिकमें भी भिन्नताका एकत्व करना समीचीन नही है।

गुण गुणी आदिका भेदैकान्त माननेपर सबके असत्त्वका प्रसङ्ग—यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि गुण गुणी, कार्य कारण, उपादान उपादेय इन सबमें भेदका एकान्त मानना सङ्गत नहीं होता। गुण गुणी कथंचित् भेदरूपसे हैं। जैसे गुण है चेतन, गुणी है आत्मा अथवा ज्ञानदर्शन सुख आदिक गुण हैं, जीव गुणी है, तो वह गुण गुणीसे भिन्न प्रदेशमे नही रहता और उस गुणका द्रव्यके साथ तादात्म्य है, यो कहना चाहिए कि द्रव्य ही एक सत है। जितनी प्रकारकी जातिके द्रव्य मिलें वे सब द्रव्य सत हैं। उन द्रव्योमें गुण, क्रिया, परिणति, ये सब तादात्म्यरूपसे पाये जा रहे हैं। जो अनित्य धर्म है वह तो उस पदार्थमे उस कालमे तादात्म्यरूपसे

रहता है, किन्तु जो नित्य धर्म है, जो पदार्थका स्वरूप ही है वह शाश्वत उस पदार्थमे तादात्म्यरूपसे रहता है। तब गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, ये कोई पृथक पदार्थ नही हैं। पदार्थ तो द्रव्य है। अब जाति अपेक्षासे उस द्रव्यके अनेक भेद कर लिए जायेंगे और यो वहाँ व्यक्ति व्यक्तिरूपसे आवान्तर सत्त्व ही बन जायगा, पर कर्मादिक ये द्रव्यके धर्मरूप हैं, अंश हैं, पर ये स्वतंत्र कोई पदार्थ नही हैं। अतः मानना चाहिए कि गुण गुणी आदिकमे सर्वथा भेद नही है। किन्तु लक्षण भेदसे भेद है। जिसके बलपर प्रतिपादनकी पद्धति चलती है और एक ही सत्‌मे तादात्म्यरूपसे रहनेके कारण इन सबका अपने गुणोमे अभेद है। यहाँ तक यह कथञ्चित भेद और अभेद सिद्ध किया। यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि कार्य कारण आदिकमे नित्यताका एकान्त नहीं रहता है तो मत रहो, परमाणु तो नित्य माना गया है और वह समस्त अवस्थाओंमे भिन्न-भिन्न हो नहीं सकता तब अनन्यताका ही एकान्त मान लेना चाहिए ऐसा कहने वाले शङ्काकारके प्रति कहते हैं।

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा ॥ ६७ ॥

एकत्वैकान्तपक्षमें अर्थात् भेदैकान्त अथवा अपरिणमैकान्तमे पृथ्वी आदि संघातोकी भ्रान्तताका प्रसङ्ग—यदि एकत्वका ही एकान्त किया जाय तो संघातके समयमे भी जब कि परमाणुओका इकट्ठा पिण्ड नहीं रहा है उस समय विभागकी तरह स्वतंत्र निराले-निराले परमाणु रहेंगे और उस समय उन परमाणुओं मे परस्पर असम्बद्धता रहेगी और जब परमाणु परस्पर सम्बन्धित न रहे तो स्वयं क्षणिकवादियोका जो भूत चतुष्टय कहा गया है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिक वे सब भ्रांत हो जायेंगे। जैसे कि विभाग होनेपर परमाणु स्वतंत्र स्वतंत्र असम्बद्ध रहते हैं उस ही प्रकार संघातके सम्बन्धमे भी परमाणु असम्बद्ध रहेंगे। क्योकि अब तो उनमे सब प्रकारसे अन्यत्वका अभाव मान लिया ? अर्थात् अन्य स्वरूपसे परिणमन नही होता है। यह क्षणिकवादमें कहा गया है, क्योकि यदि अन्य स्वरूपसे परिणमन मान लिया जाय अर्थात् परमाणु अन्य-अन्य होने लगेंगे तो उनमे अनित्यताका प्रसग आयगा। अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि परमाणुओंमें अनित्यता रही आवे, वह तो हमे इष्ट है। अनित्यपना चाहे रहा आये, परन्तु परिणामिता न रहेगी। वस्तु एक ही हो सदा और वह भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपनी अवस्थायें बदलता रहे उसे कहते हैं परिणामिता, सो परिणामपना तो नहीं है अनित्यपना रहा आया, सो संघातके काल मे क्रियाकी उत्पत्ति होनेसे उसका जो समवायी कारण है उसका स्वको सयोग स्वभाव जो हुआ है अर्थात् परमाणु और संयोगका स्वभाव आया है उसका ही नाम संघातपना रहेगा। परमाणु तो पूर्ण निराले स्वतंत्र हैं, उनमे सम्बन्ध नहीं होता मगर संयोग

बना हुआ है। जैसे कि चौकीपर दवात है, चटाईपर चौकी है इसी तरहसे उन परमाणुओंका संघात बनना होता है स्कंधमे। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि उनके अतिशयकी यदि अनुत्पत्ति मानी जाय अर्थात् परमाणुओंमे किसी भी प्रकारका परिणमनरूप अतिशय न माना जाय तब तो संयोग होना ही असम्भव है, फिर तो इतना भी नहीं कहा जा सकता कि उन परमाणुओंका संयोग है। संयोग होनेपर भी तो कोई अतिशय ही तो बना और परमाणुओंमे अतिशय क्षणिकवादमे माना नहीं जा रहा तब वहाँ संयोग ही असम्भव हो गया, फिर जो अवयवीका लक्षण कहा है पृथ्वी आदिक चार भूत जो माने गए हैं वे सब भ्रान्त बन बैठेंगे।

परिणामिता स्वीकार किये बिना अतिशयकी सिद्धिकी अशक्यता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि जडात्मक क्रियामे अतिशय हुआ करता है। जैसे कोई चीज फेंक दी तो उसमे कर्मका अतिशय हुआ, तो क्रियारूप परिणाम हुआ, उस का संयोग है परमाणुओंमें, अतएव संयोग भी भ्रान्त न रहे। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि यदि चलनात्मक कर्मका अतिशय मानते हो तो कथञ्चित् अन्यता तो हो गई। पहिले वे परमाणु चलनक्रियासे रहित थे, अब चलनक्रियासे युक्त हो गए, तो अतिशय ही कहलाया। उन परमाणुओंमे अन्य प्रकारका परिणमन ही तो कहलाया। यदि इस प्रकारका कथञ्चित् या अन्यत्व न माना जाय तब तो संयोग ही नहीं बन सकता है। शंकाकार कहता है कि परमाणु तो क्षणिक है इस कारण उसमे यह दोष नहीं दिया जा सकता। रहे आये क्रियाके साथ उनका अभाव प्रति समयमे नवीन-नवीन वस्तु ही बनती है। अब वह वस्तु कोई किसी क्रियारूप बनता, कोई किसी क्रियाको लेते हुए जन्म लेता, पर है वहाँ सब अनित्य ही, इस कारण पूर्वोक्त दोष नहीं आता। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि परमाणुओंको क्षणिक मान भी लिया जाय फिर भी यह तो विचारो कि कार्य कारणमे अनन्यताका एकान्त होनेपर अर्थात् वहाँ कुछ भी अन्यता न माननेपर धारण क्रिया आदिक परमाणुओंमे संघातके समय मे भी न होगा। जैसे कि विभागकी दशामे उन परमाणुओंमे धारण आकर्षण आदिक नहीं होता है। जैसे कि विभक्त परमाणु हैं उनसे सम्बद्ध परमाणुओंमे कोई विशेषताकी उत्पत्ति तो होती ही है, तब ही तो धारण आकर्षण आदिक क्रिया बनती है। परमाणु अपनी सही स्वतंत्र स्थितिमे हो तो उनमे पानी कौन भर लेगा ? और, जब वे परमाणु उस विभक्त दशासे हटकर एक सम्बद्ध दशामे आता है तो उनमे कोई विशेष अतिशय ही तो बना, तभी अवधारण ग्रहण आदिक बातें होने लगी हैं।

जनित विशेषसे भेदैकान्तका निराकरण—शंकाकार कहता है कि उन ही विभक्त परमाणुओंकी सम्बद्ध की स्थितिमें ही कह लीजिए कि कोई विशेषता हुई

है फिर भी भरता तो नही है। जैसे कि नीचे मुख जिसका हो ऐसा घडा रखा है और जिसमे पानी भरा हो ऐसा भी घडा रखा है तो इनमे कोई अन्यता न आयगी। घडा वही था अब अधोमुख था। तब आकर्षण न होता था। अब पानी भर गया तो जैसे वहाँ वही विशेषता समझी गई इसी तरह विभक्त परमाणुओसे सम्बद्ध परमाणुओ मे विशेष उत्पत्ति हो जाती है। इसमे धारण आकर्षण आदिक कार्य भी बन जाते। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि फिर तो उन सम्बन्धित हुए परमाणुओमे जो कोई विशेषता आ गयी है वह भेदैकान्त पक्षका निराकरण कर देता है और, भेद एकान्त का निराकरण होनेपर उन अणुओमें परमाणुपनेका विरोध हो जायगा। तब तो स्कध ही कहलाने लगेगा। क्योकि भेद एकान्तका निराकरण होनेपर उन परमाणुओ में एकत्व-परिणामात्मक स्कध बन जाता है।

विभक्त और संघाती अणुओके कार्यकी विशेषतासे परिणामिताकी सिद्धि—अब यहाँ शकाकार कहता है कि जो भिन्न-भिन्न परमाणु हैं उनसे और जो एक साथ पिण्डमे सम्बन्धित परमाणु हैं सो लक्षण समान हैं। लक्षण कही जुदे जुदे नही हो गए तब उनमे अन्यत्व सम्भव नही है। हाँ वे परमाणु जब सम्बद्ध दशामे आ गए तो वहाँ धारण आकर्षण आदिकका सामर्थ्य आयगा पर स्कध हो जानेपर कहीं वे अपरमाणु तो नही हो गए। परमाणु परमाणु ही हैं। स्कधकी स्थितिमें भी सयोग है धारण आकर्षण है, कुछ विशेषता हुई है इतना सब कुछ होनेपर भी परमाणु परमाणु ही है। कही वह अपरमाणु नही बन गया, जिससे कि कार्य परमाणु और कारण परमाणुमे अविशेषता न रही, समानता रहेगी। दोनो ही परमाणु कहलाते हैं। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि विभक्त स्थितिके परमाणुओमे और स्कध संघात की स्थितिके परमाणुओमे यदि सर्वथा समानता ही कही जाय तो जैसे अलग अलग एक एक रहने वाले परमाणुओमें धारण आकर्षणका सामर्थ्य नहीं है उसी प्रकार संघातकी स्थितिमें भी धारण आकर्षणका सामर्थ्य न बन सकेगा और यदि संघातकी दशामे उन परमाणुओमे धारण आकर्षणका सामर्थ्य माना जायगा तो फिर विभक्त जुदे जुदे रहने वाले परमाणुओमे भी धारण आकर्षण हो जानेका प्रसग आयगा। शकाकार यदि यह कहे कि वे परमाणु चू कि विभक्त हैं, न्यारे न्यारे हैं इस कारण उन परमाणुओमे धारण आकर्षणका सामर्थ्य नहीं आ पाता तो सुनो। बस इस ही कारणसे जो सघात दशामे परमाणु हैं उनमे मान लिया जाए कि वह सामर्थ्य नही आती। जब परमाणुओमे कोई परिणमन नही माना जाता तब अतिशयके अभावमे सारी बात दोनो जगह एक समान माननी पडेगी चाहे परमाणु शुद्ध हालतमे हो अथवा संघात दशामे हो। परिणमन न मानने वालेको प्रत्येक बात दोनो ही स्थितियो मे एक समान समझना पडेगा। पर ऐसा है कहाँ ? स्वयं विभक्त परमाणु रहता हो तो वहाँ धारण आकर्षण आदिक कार्य नही होते। संघात दशामे धारण आकर्षण

आदिक देखे गए हैं। किसी भी विशेषके द्वारा उनके भेदका निराकरण नहीं हो सकता और तब जो पृथ्वी, जल, अग्नि वायु चार भूतोकी स्थिति मानी है वह सब केवल भ्रम मात्र रह जायगा। क्योंकि सब ही समयोमे परमाणुपना रहा करेगा। संघात स्थिति भी है, पृथ्वी आदिक भूत चतुष्टय भी है लेकिन परमाणु तो सदा परमाणु ही रहता है। उसमे कोई अतिशय क्षणिकवादमे माना ही नही गया है।

विभक्त और संघातरूप अणुवोमे समानताका प्रत्यक्ष विरोध होनेसे अनन्यताके एकान्तकी असिद्धि—शङ्काकार कहता है कि यह भी बात हमे इष्ट है, अर्थात् परमाणु सदा परमाणुरूपमे ही रहता है, इस कारणसे भूत चतुष्टय विभ्रम मात्र है यह दोष नही दिया जा सकता, रहा अविभ्रममात्र, और परमाणु केवल परमाणुरूप रहा आये। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि परमाणु सघातकी दशामे पृथ्वी आदिक भूतकी स्थितिमे परमाणुरूपसे ही रहता है, इसमे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण से विरोध आता है। स्कंधरूपमे आये हुए परमाणु और अलग-अलग रहने वाले परमाणु इनको पूर्णतया समान माना जाय यह बात प्रत्यक्षसे विरुद्ध हो जाती है। प्रत्यक्ष बाह्य वर्ण संस्थान आदिकका साक्षात्कार कर रहा है और वह स्थूल है, उसके समान आकार है। यह सब भी प्रत्यक्षमे जाना जा रहा है। हर्ष सुख दुःख आदिक अनेक पर्यायरूप आत्मा भी सुसम्वेदनसे स्पष्ट जाना जा रहा है। अब इस तरह अन्तः और बाह्यमें इन पर्यायी पदार्थोमें साक्षात् करने वाला प्रत्यक्ष भी यदि भ्रान्त मान लिया जाय तो फिर वह और अन्य अभ्रान्त प्रत्यक्ष लक्षण है क्या ? जो कि प्रत्यक्षका लक्षण बन सके, और जब प्रत्यक्ष न बना तो प्रत्यक्षके अभावमे अनुमान भी कैसे सिद्ध न होगा, क्योकि अनुमानकी प्रमाणता तो हेतुकी प्रत्यक्ष सिद्धतापर है। प्रत्यक्ष आदिक का विरोध होनेपर स्वसम्वेदन ज्ञान भी सिद्ध न हो सकेगा, क्योकि सभी समय देख लो। सम्वेदन परमाणुमात्रका अनुभव नहीं होता है। कार्यकी भ्रान्तिमे परमाणुकी सिद्धि भी वास्तविक न बन सकेगी। स्कंध हैं परमाणुका कार्य और स्कधको यदि वास्तविक नही मानते, परमाणुकी अन्य दशा हो गयी इस तरह स्वीकार नहीं करते तब तो परमाणुकी भी सिद्धि नही हो सकती।

> कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्गं हि कारणम्।
> उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न ॥ ६८ ॥

स्कन्धोंके ज्ञानको मात्र विभ्रम माननेसे कारण परमाणु, गुण, जाति आदि सभीकी शून्यताका प्रसङ्ग—कार्यका भ्रम होनेसे परमाणुमे भ्रान्ति हो जायगी, किन्तु परमाणुको माना है कारण और कारण समझा जाता है कार्यके आधारसे। किसी भी पदार्थको यह कारण है यह समझना है तो कार्य समझकर समझना बनेगा। तो जिसका कार्य लिङ्ग नहीं है उसका कारण भी सिद्ध नही होता।

तो यो कार्यमे विभ्रम माननेसे परमाणुओंके ज्ञानमे भी विभ्रम समझिये और इस तरह ये कार्य कारण दोनो ही नही रहते हैं। न कोई कार्य परमाणु रहा, न कुछ कारण परमाणु रहा तब ऐसी स्थितिमें उनमे रहने वाला गुण, जाति, क्रिया आदिक भी सिद्ध न होगा। शङ्काकार कहता है कि परमाणुओंकी तो प्रत्यक्षसे प्रसिद्धि है फिर परमाणुओंमे भ्रम क्यो बताया जा रहा ? इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि परमाणु किसी को भी प्रत्यक्षभूत नही हो रहे। हम आप सब कोई इस पृथ्वी आदिक स्कधोंको ही देख रहे हैं नेत्रइन्द्रियजन्य ज्ञानमें स्थूल एक आकार जाना जा रहा है, सो यही प्रतिभास प्रमाणके निरंश एकान्तवादका खण्डन करता है, अर्थात् "परमाणु सदा पृथक पृथक रहता है, उसका मेल होनेसे बन्धन संघातरूप स्थिति नहीं होती" इसका खण्डन तो यह इन्द्रिय आदिक जन्य ज्ञानमे प्रतिभासित हुआ स्थूल एक आकार ही कर रहा है। अथवा चक्षु आदिक ज्ञानमे स्थूल एक आकारसे विपरीत परमाणु अथवा उसका आकार नहीं दिख रहा है।

कार्यरूपको विभ्रम माननेपर कारणरूप अणुओंमे भी भ्रान्तिका प्रसङ्ग—यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि नित्यत्वैकान्तका निराकरण करनेपर यह हो जायगा कि परमाणुओंमे फिर जो एकत्व आदिकका ज्ञान हो रहा है वह सब भ्रान्त हो जायगा, तब स्याद्वादमे नित्यत्वैकान्तका निराकरण किया सो उसके फलमे यह बात फिर बनेगी कि अब परमाणुओंका एकत्व सिद्ध ही न हो सकेगा। एकत्व विषयक समस्त ज्ञान भ्रान्त मान लिए जायेंगे। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये ! परमाणु जब चक्षुरादिक इन्द्रियज ज्ञानको अपना स्वभाव नही सौंप रहा है तो कार्यलिङ्गका अभाव तो हो ही गया। ज्ञान तो शङ्काकारके सिद्धान्तमें तब ही बनता है जब पदार्थ अपना स्वभाव आकार सौंपे। अब परमाणुओंने अपना स्वभाव तो चक्षु आदिक इन्द्रिय ज्ञानमे सौंपा नहीं है जब कोई कार्यलिङ्ग न रहा तो परमाणुका स्वभाव माननेकी बात भी अयुक्त हो जाती है। जैसे अलग-अलग खडे हुए बकुल शीशम सागोन आदिकके अनेक पेड हैं तो उनमें कभी प्रत्यक्षसे उनका भिन्न-भिन्न रूपसे ज्ञान नहीं हो रहा। और, दूरसे एक सघन ही सब कुछ दिख रहा है तो उनके अनेक आकारोंका प्रतिभास जैसे भ्रान्त बन गया तो अब वहाँ उन पेडोंके स्वभाव माननेकी बात न बन सकेगी। इसी प्रकार यदि इन परमाणुओंमे स्वभाव अर्पण करनेका सामर्थ्य नहीं है तो कार्यलिङ्ग न बननेसे प्रमाणत्व भी न समझा जायगा, क्योकि परमाणुरूपमें कारणत्व है, वह तो कार्यलिङ्गपर निर्भर है। कार्यलिङ्गका अभाव होनेसे परमाणुपनका भी परिज्ञान नहीं बन सकता। सो देखिये ! कार्य लिङ्ग तो है कारण परमाणुरूप। तो जब कार्यमें भी भ्रान्ति हो गयी तब फिर वह कारणरूप परमाणु भ्रान्त क्यो न कहलायेगा ? यदि इस दोषके भयसे परमाणुओंका कार्य ही न माना जाय तो देखिये ! परमाणुओंका कार्य न मानने पर इन दोनोका अभाव हो जायगा।

कार्य तो माना ही नहीं। कार्य न माननेसे कारण परमाणू भी नहीं रह सकता। जब यह स्कंध न माना जायगा तो स्कंधका कारणभूत परमाणू कैसे स्वीकार कर लिया जायगा?

भेदैकान्तपक्षमे कार्य परमाणु व कारण परमाणु दोनोंका अभाव होनेसे गुण जाति क्रिया आदि सभीके अभावका प्रसङ्ग—अनन्यतैकान्त पक्षमे कार्य व कारण दोनोंका अभाव होनेसे फिर उनकी जो वृत्तियाँ हैं—जाति, गुण, क्रिया आदि ये सब भी न होंगी। जैसे—कोई कहे कि आकाशफूलमें बड़ी सुगन्ध है, तो यह बात अविवेकपूर्ण ही कही हुई है। जब आकाशफूल ही नहीं है तो उसमें सुगन्धि बतानेमे क्या दम रहा? तो इसी तरह जब परमाणु और परमाणुका कार्य ही न रहे तो फिर जाति, गुण, क्रिया आदिका विभाग बताना सङ्गत नहीं हो सकता। गुण जातिरूप सत्ता आदिक स्वभाव मानना अथवा अन्य बातें मानना क्रियाविशेष समवाय परमाणु वृत्ति कार्यवृत्ति ये सभी के सभी अब न किए जा सकेंगे जब कि कार्य और कारण ये दोनों ही नहीं माने गए अथवा सम्भव न हो सके। जैसे आकाशपुष्पका अभाव है तो आकाशपुष्पका अभाव होनेपर भी क्या कोई आकाशपुष्पमें रहने वाली सुगंधिको मान लेता है। यदि परमाणुसे कारण कार्यरूप न माननेपर जाति गुण क्रिया आदिक मान ली जायें तब फिर आकाशफूल न होनेपर भी उसमें सुगन्धिका न रहना माननेका प्रसङ्ग आ जायगा। तो जब गुण जाति परमाणु कार्य आदिक या उसमें रहने वाली वृत्ति न बन सके तब जो गुण जाति आदिकको मानना चाहते हैं ऐसे पुरुषोंका कार्य द्रव्य अभ्रान्त मानना ही पड़ेगा और वह इस तरह सम्भावनामें आता है कि परमाणुओमे परमाणु रूपताका त्याग हो और अवयवी रूपताका ग्रहण हुआ। तो जब परमाणुरूपताका त्याग और अवयवी रूपताका ग्रहण माना जाय तब ही कार्यकारण भाव माना जा सकता है। इस प्रकार यहाँ यह सिद्ध हुआ कि परमाणुओमे अनन्यता का एकान्त नहीं है। तो जो ऐसा मानते हैं कि परमाणु सदा ही अपने आपकी एकता मे, स्वतन्त्रतामे ही रहते हैं उन परमाणुओंके मिलकर कोई स्कंध आदिक दशा नहीं बनती है। यह सिद्धान्त निराकृत हो जाता है, क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति होनेपर परमाणुओमे कथञ्चित् अन्यता ही आ जाती है। अर्थात् वे परमाणु पहिले विभक्त थे जुदे जुदे थे, अब स्कन्धरूपसे परिणत हो गए हैं, तब क्षणिकवादियोकी तरह वैशेषिककी भी तो अन्यताकी सिद्धि नहीं हो सकती। अब कार्यकारणका अभाव माननेपर क्या दोष आता है सो बतलाते हैं।

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः।
द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥६६॥

कारण कार्यमेंसे एकको ही सत् माननेपर अविनाभावी शेषके अभाव

कार्य व कारणमें द्वित्व संख्याके विरोधका प्रसंग—सांख्य सिद्धान्तमें कार्य और कारण दो परमार्थभूत नहीं माने गए हैं। उनमेंसे एक ही चीज है। कार्य अलग हो, कारण अलग हो, ऐसी बात इस सिद्धान्तमे नही है। तो कार्य और कारणमेंसे किसी एकको ही माना जाय तो इसका फल यह होगा कि दूसरेका अभाव हो जायगा। कारण ही माना तो कार्य न रहा, कार्य माना तो कारण न रहा। और ऐसी स्थितिमें एकका अभाव क्यों ? फिर बाकी जो कुछ शेष बचा है उसका भी अभाव हो जायगा। बाकीका शेष अविनाभावी कारण तभी होता है जब कि कार्य होता है। कार्य तब ही होता है जब कि कारण हो और फिर दो आदिक संख्याका भी विरोध होगा। यह कारण है इस प्रकार द्वित्व संख्या नहीं बन सकती है। यदि कहो कि यह सब सम्वृत्ति रूप है। केवल कल्पनासे ही मानी गई बातें हैं तो सम्वृत्ति तो मिथ्या ही हुआ करता है, उससे कोई द्वित्वकी सिद्धि नहीं हो सकती। कार्य तो हुए सांख्य सिद्धान्तमे महान अहंकार आदिक और कारण हुआ प्रधान तो कार्यका और कारणका परस्परमे एकत्व है, तादात्म्य है और ऐसी स्थितिमें कोई एक ही है, ऐसा कार्य कारणका एकत्व माना जाय तादात्म्य है और ऐसी स्थितिमे कोई एक ही है, ऐसा कार्य कारणका एकत्व माना जाय तादात्म्य माना जाय तो दूसरेका अभाव हो जायगा, क्योकि दोनों सर्वथा एक मान लिए गए तो एक कौन रहा ? यों केवल एकका आग्रह करनेपर शेष का भी अभाव हो जायगा। जैसे कि कार्य ही माना तो कारणका अभाव हो जायगा कारण ही माना तो कार्यका अभाव हो जायगा क्योकि कार्य कारणमें अविनाभावका नियम पाया जाता है। एक न हो तो दूसरा भी नही हो सकता। इस प्रकार सभी वस्तुओंका अभाव बन जायगा।

कार्य और कारणमें सर्वथा एकत्व माननेपर मूल तत्त्वोंकी अपरिचिति व शून्यताका प्रसंग—शंकाकार कहता है कि कार्यका तो कारणमे प्रवेश हो जाता है इस कारणसे कार्य कोई पृथक चीज नहीं रहती है। और ऐसी स्थितिमें एक कारण ही सत् रह जाता है। क्योकि कारण नित्य है। अत कार्यका कारणमें प्रवेश हो जानेसे ये दो न रहे, किन्तु एक ही कारण रह गया। अब ऐसा सिद्धान्त माननेवालोंके प्रति उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो द्वित्व संख्याका विरोध रह ही गया है। याने द्वित्व संख्या फिर हो नहीं सकती। कार्य और कारणका सर्वथा एकत्व माननेपर फिर कार्य कारण आदिक एक वस्तुमे न रह सकेंगे। जैसे कि एक वस्तुमे क्या कार्य क्या कारण कहा जाय ? तो ऐसे ही एक माननेपर द्वित्व संख्या भी नही रह सकती। यदि यह कहे शङ्काकार कि द्वित्वकी संख्या मानना भी काल्पनिक है। प्रधान महान आदिकके प्रसंगमे ये दो हैं ऐसा कहना कल्पनामात्र ही है, तो सुनो ! कल्पना तो मिथ्या ही होती है। तो यह द्वित्व संख्या भी कार्य कारण भावकी तरह मिथ्या बन जायगी, और ऐसा कार्य कारण मिथ्या होनेपर फिर प्रधानका

परिज्ञान कैसे होगा? सांख्य सिद्धान्तमे दो तत्त्व सिद्ध किए जा रहे हैं-प्रधान और पुरुष। इसके अतिरिक्त और कुछ न माना जाय तो बताओ कि प्रधान और पुरुषका परिचय भी किस प्रकार हो सकता है। प्रधानका परिचय तो यो कराया जाता है कि बुद्धि, अहंकार, इन्द्रिय, भूत ये सब पाये जाते हैं तो इनको निरख करके प्रधानकी कल्पना की जाती है। चैतन्य भी इसी ढंगसे माननेमे आ पाता है कि जब सुख दु.ख आदिक विदित हो रहे हैं तो यह किस आधारसे है इस तरह सोच कर चेतनका अनुमान किया जाता है। तो अब कार्य तो कुछ माना नही गया तो कारणका भी परिचय नही हो सकता है। तो बतलाओ कि महान अहंकार आदिकको वास्तविक न माननेपर प्रधान का परिचय किस तरह हो सकेगा ? प्रधानका परिचय प्रत्यक्षसे तो हो नही सकता क्योकि प्रधान प्रत्यक्षका विषयभूत ही नही है। इन्द्रिय ज्ञानसे तो मूर्त साकार अनित्य यह पदार्थ ही समझा जा सकता है। तो प्रधानका ज्ञान प्रत्यक्षसे न हो सका और अनुमानसे भी नही हो सकता। क्योकि अनुमान तो तब ही बने जब वहाँ कोई अभ्रान्त तात्त्विक लिङ्ग अथवा साधन हो। पर अभ्रान्त लिङ्ग तो है नही। तो अनुमान भी नही बन सकता। आगमसे भी प्रधानका परिचय नही हो सकता, क्योकि आगम है शब्दरूप और शब्दोको माना है भ्रान्तस्वरूप। अतएव उन भ्रान्त शब्दोके द्वारा भी प्रधानका परिचय नही किया जा सकता। तो भ्रान्त साधन आदिकसे अभ्रान्त साध्यकी सिद्धि करनेमे अतिप्रसङ्ग हो जायगा, तब तो भ्रान्त धूमको निरखकर अग्निका भी ज्ञान हो बैठेगा। सो इस तरह प्रधान और महत् आदिकमे एकता मानने पर न प्रधानकी सिद्धि होगी न महत् आदिकी सिद्धि हो सकती है।

पुरुष और चैतन्यमें सर्वथा एकत्व माननेपर शेषका अभाव होनेसे मूलके भी अभावका प्रसङ्ग—अब कहते हैं कि जिस प्रकार कार्य कारणमे एकत्व माननेपर न एक ही रहता, न कुछ ही रहता है इसी प्रकार पुरुष और चेतन जो कि आश्रय आश्रयीरूप हैं उनका एकत्व माननेपर वहाँपर भी उनमेसे किसी एक का अभाव हो जायगा। पुरुषमे यदि चैतन्यका प्रवेश मान लोगे तो पुरुषमात्र ही रह जायगा, चैतन्यका अभाव हो जायगा। और पुरुषका चैतन्यमे अनुप्रवेश माननेपर चैतन्यमात्र ही रह जायगा। तब इस तरह किसी एकका अभाव इन सांख्यवादियोके भी हो जायगा। और, जब एकका अभाव हो तो शेषका भी अभाव हो जायगा, क्योकि पुरुष चैतन्यका अविनाभावी है, चैतन्य पुरुषका अविनाभावी है, उनमेसे किसी एकका अभाव माननेपर दूसरेका भी अभाव हो जायगा। जैसे कोई कहे कि बंध्यापुत्र मे रूप और संस्थान है, तो जैसे बंध्यापुत्रके रूप ही नही है तो उसका आकार कैसे होगा ? क्योकि आकार स्वभावका अविनाभावी है वह संस्थान, इसी प्रकार पुरुष जो कि आश्रयभूत है उसका अभाव माननेपर आश्रयी चैतन्यका भी अभाव हो जायगा और जब चैतन्यका अभाव हो गया याने स्वभाव ही न रहा तो स्वभाववान पुरुषका

भी अभाव हो जायगा, क्योंकि पुरुष और चैतन्यमें परस्पर अविनाभाव है। तो यो जब पुरुष और चैतन्यका परस्परमें सर्वथा प्रवेश हो जायगा तो द्वित्व संख्या भी नही रह सकती। पुरुष और चैतन्यमें अब एकत्व ही मान लिया गया तो दो बातें कैसे कह सकेंगे कि यह चैतन्य है, यह पुरुष है, यह पुरुषका स्वरूप है। वहाँ फिर दो बातें ही सम्भव नही हो सकती। यदि शङ्काकार कहे कि उस द्वित्व संख्या आदिकी सम्वृतीसे कल्पना की जाय तो सर्व शून्य हो जायेगा, क्योकि वास्तविकतासे अब वह विपरीत हो गया। जैसे मिथ्या वचनका कोई अर्थ नहीं है उसी प्रकार सम्वृतिकल्पनाका भी वास्तविक विषय नही है। परमार्थत यदि सख्या न मानी जाय तो संख्येय भी नही रह सकता। सख्येय मायने पदार्थ। जिन पदार्थोंके बारेमें सख्या बतायी जाती है वे पदार्थ भी न रह सकें, क्योकि सर्व धर्मोंसे रहित किसी भी वस्तुकी सम्भावना नहीं होती है, इस कारण कार्य कारण आदिकमे अनन्यताका एकान्त सम्भव नहीं होता। जैसे कि कार्य कारणमे अन्यताका एकान्त सम्भव नहीं होता?

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते॥७०॥

कार्य कारण आदिमें भिन्नता अथवा एकताके सम्बन्धमें उभयैकान्त व अवाच्यतैकान्तकी अयुक्तता—कोई पुरुष यदि कार्य कारणमें भिन्नता अथवा एकताका दोनोंका सिद्धान्त माने अर्थात् भिन्नता भी है और एकता भी है और उसे माने निरपेक्षरूपसे तो उन दोनोंमे विरोध होनेके कारण यह उभयका एकान्त भी सिद्ध नही होता। जिसने स्याद्वाद न्यायसे विद्वेष रखा हो एकान्त पक्षका जो आग्रह कर रहा हो उसके यहाँ ये दोनो एकान्त भी सम्भव नही होते। इसी प्रकार कोई यदि अवाच्यताका एकान्त करे तो कार्य कारणमें अन्यता है अथवा एकता है? यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह सर्वथा अवाच्य है। यो यदि अवक्तव्यताका एकान्त किया जाय तब फिर वहाँ इतना भी कहना नही बन सकता। पदार्थ अवक्तव्य है, इन शब्दोमे कुछ कहा ही तो गया। जब सर्वथा अवक्तव्य मान लिया जायगा तब फिर यह अवक्तव्य है, इतना भी कहा जाना अशक्य हो जायगा। तो उभय एकान्त तो यों नहीं है कि अवयव अवयवी गुण गुणी आदिकमें जो भिन्नता और एकान्तताका एकान्त माना जा रहा सो ये दोनो एक साथ सम्भव नही हो सकते क्योकि इनमें विरोध है और अपेक्षा भी कुछ नही रखी गई क्योकि एकान्तका आश्रय है। तो यों उभयात्मक नही बनता और अवक्तव्यताका एकान्त करनेमें अपने पक्षका ही विरोध होता है। जैसे कोई पुरुष कहे कि मैं सदा मौनसे रहता हूँ तो बोल तो रहा ही है, फिर मौन कैसे सिद्ध हो? तो जैसे कोई कहे कि मैं मौनव्रती हू तो उसका यह कहना स्ववचन बाधित है। इसी प्रकार कोई कहे कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है तो कहता तो जा रहा है, कैसे माना जायगा कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है? उसमें तो अपने वचन

का ही विरोध आ जाता है, क्योकि वह अवक्तव्य है। इस रूपसे तो वह कहा ही गया है। यदि अवक्तव्यताका एकान्त मान लिया जाय तो जब सर्वथा अवक्तव्य बन गया तो दूसरेको किसी भी प्रकार समझाना कैसे बन सकेगा ? यदि कहो कि समझा तो रहे हैं, वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है, इस प्रकारके वचनसे वह समझ जायेगा अवक्तव्यपना, तब फिर उत्तरमे कहते हैं कि बताओ वहाँ अवक्तव्यताका एकान्त रहा कैसे ? वस्तु अवक्तव्य है इन वचनो द्वारा वक्तव्य तो बन ही गया।

किसी प्रकार भी अवाच्यतैकान्त सिद्ध करनेकी अशक्यता—यदि शङ्काकार यह कहे कि परमार्थसे तो कोई भी बात वचनसे समझाई नही जा सकती, तब फिर उत्तर सुनो ! कि वहाँ स्वय अवाच्यताका ज्ञान कैसे हो जायगा ? शङ्काकार यदि कहे कि वस्तुमे वक्तव्यना नहीं पाई जारही, इस कारणसे अवाच्यताका ज्ञान हो जायगा। तो शङ्काकार यह बताये कि वस्तुमे जो वाच्यता नही पाई जा रही तो ऐसी वह अनुपलब्धि दृश्यानुपलब्धि है या अदृश्यानुपलब्धि ? दृश्यानुपलब्धि उसे कहते हैं कि जो वस्तु दीखने योग्य हो तो पर उसकी उपलब्धि न हो और अदृश्यानुपलब्धि उसे कहते हैं कि जो वस्तु कभी भी दीखने योग्य ही नही है फिर उसकी उपलब्धि है, सो यदि यहाँ दृश्यानुपलब्धि कहते हो तो बताओ वह दृश्यानुपलब्धि कैसे हुआ ? जब दृश्य होकर उसकी अनुपलब्धि है तब उसमें कही किसी न किसी प्रकारसे वाच्यता सिद्ध हो ही गई। दृश्य होकर अनुपलब्धि है। वाच्य होकर भी अवाच्य है, यही बात तो आयी, तो कभी वाच्यता तो सिद्ध हो गयी। आज चाहे वाच्यता न मिले तब अवाच्यताका एकान्त न रहा। यदि कहो कि दृश्यानुपलब्धि नही है किन्तु वह अदृश्यानुपलब्धि ही अनुपलब्धि है तो ऐसी स्थितिमे वहाँ वाच्यताके अभावका निश्चय कैसे हो सकता है ? शकाकार कहता है कि विकल्पके द्वारा प्रतिभास होने वाले अन्यापोहमे मानी हुई वाच्यताका स्वलक्षणमे निषेध किया जा रहा है इस कारण उक्त दोष नहीं लगाया जा सकता। इसका स्पष्ट भाव यह है कि अन्यापोहका प्रतिभास विकल्पसे होता है। पदार्थका जो निज स्वलक्षण है उसका बोध तो निराकार दर्शनसे होता है और उसके बाद उसहीसे सम्बन्धित जो कुछ विकल्प उत्पन्न होते हैं उन विकल्पोसे अन्यापोहका प्रतिभास होता है, तब अन्यापोहमे ही वाच्यता मानी गई है। उस वाच्यता का स्वलक्षणमें प्रतिषेध किया जा रहा है इस कारण यह दोष नहीं दिया जा सकता कि अदृश्यकी अनुपलब्धि बतानेपर तो परमाणु आदिक भी अदृश्य हैं, उनकी भी अनुपलब्धिका प्रसंग आ जायगा, अथवा वाच्यताका निषेध हो जायगा। यह दोष यो नही लगा सकते कि हम स्वलक्षणमे अन्यापोहमें मानी हुई वाच्यताका निषेध कर रहे हैं। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शङ्का युक्ति संगत नही है, क्योकि फिर भी वस्तु की वाच्यताका निषेध नहीं किया जा सका है। आखिर अन्यापोहको वाच्य मानते हुए ही तो वाच्यताका निषेध किया है। भले ही अन्यापोह मानते हो उस वाच्यताका स्व-

प्रकरणमें निषेध किया गया है किन्तु स्याद्वादकी वाच्यताका प्रतिषेध भी नहीं हो सकता है। अन्यापोहकी वाच्यता हो भी वस्तुकी वाच्यता नहीं कहलाती, क्योंकि अन्यापोहकी वाच्यताका वस्तुमें प्रतिषेध किया जा रहा है। यदि अन्यापोहकी वाच्यता हो स्वलक्षण की वाच्यता मान भी जाय तो उसके स्वलक्षणमें फिर प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्धमें अधिक यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि स्याद्वादके सम्बन्धमें बहुत ही विस्तार पूर्वक पहिले निराकरण किया गया है। इस कारण यहाँ इस विषयको लम्बा नहीं किया जाता है।

वस्तुका कथंचित् नित्यता, अनित्यता, अन्यता व अवाच्यताका सिद्धान्त—तात्पर्य यह है कि वस्तु न सर्वथा नित्य है न सर्वथा अनित्य है, न दोनों में एकान्त है और न अवाच्यताका एकान्त है। अवाच्यतावादी अन्य यदि स्याद्वादके सिद्धान्तको मानो जाय तो कहीं कोई दोष न होगा क्योंकि कथञ्चित अवाच्यत्व भावकी उपलब्धि यहाँ देखी जा रही है। सभी वस्तु स्वद्रव्य पर्यायकी दृष्टिसे तो वाच्य है और अर्थपर्यायकी दृष्टिसे अवाच्य है ऐसी स्याद्वादियोंने व्यवस्था बनायी है अन्यथा प्रमाण नहीं बन सकता। वस्तु अगुरुलघुत्वके षड्गुण हानि वृद्धिकी दृष्टिसे प्रतिक्षण षड्गुण हानि वृद्धिरूपसे परिणाम रही है। उसको स्पष्टतया किन शब्दोंमें कहा जाय? प्रतिक्षण जो कुछ हो रहा है वह कथञ्चित् अवाच्य है, किन्तु वस्तुके सम्बन्धमें जो स्पष्ट पर्यायें हो रही हैं वे तो सब वाच्य बनी हैं। इस तरह वाच्यता और अवाच्यता का स्याद्वाद ही हल सुलझाता है, इस प्रकार अवयव अवयवी आदिकका अन्यत्व आदिकका एकान्त निराकरण करके अब यद्यपि निराकरणसे यह सिद्ध हो गया कि अन्यत्व और एकत्वके विषयमें अनेकान्तकी व्यवस्था सही है फिर भी प्रतिवादियोंके चित्तमें रहने वाली दुराशङ्काका निषेध करनेके लिए एक सही हकताका निश्चय करने की इच्छा रखते हुए आचार्यदेव कहते हैं।

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः॥ ७१॥

संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा॥ ७२॥

द्रव्य और पर्यायका कथंचित् एकत्व व कथंचित् नानात्व—द्रव्य और पर्यायमें कथञ्चित् ऐक्य है क्योंकि द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न आधारोंमें नहीं पाये जाते, फिर भी आखिर यह परिणाम विशेष है और वहाँ शक्तिमान और शक्तिका व्यपदेश है, संज्ञा विशेष है, संख्या विशेष है, उनके निजका स्वलक्षण भी विशेष है, भिन्न-भिन्न है और उनका प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न है, इस कारण उनमें नानापन है।

पर ऐक्य और नानापन वे सर्वथा नहीं कहे जा सकते। इस कारिकामे द्रव्य शब्दका मतलब है गुणी सामान्य और उपादान कारणका और पर्याय शब्दसे मतलब है गुण-परिणति व्यक्ति, व कार्यभूत द्रव्योका। स्वभाव और स्वभावकी अवस्था इन दोनोमें अभेद है। यो कि द्रव्य और पर्याय एक ही वस्तु है। यद्यपि उनमे भेद प्रतिभास हो रहा है फिर भी भिन्नता नहीं है, यही बात अनुमान प्रयोगसे भी सिद्ध होती है कि द्रव्य और पर्याय एक वस्तु है प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्नता होनेसे। जिसका प्रतिभास भेद हो तिसपर भी अभिन्न हो तो वह एक कहलाता है, जैसे वेद्य वेदक ज्ञान इनमे प्रतिभास भेद होता रहता है। वेद्याकार कुछ और है वेदकाकार कुछ और है, यो प्रतिभास भेद होनेपर भी ये दोनो भिन्न-भिन्न नही हैं, अभिन्न है इसी प्रकार रूपादिक द्रव्य ये भी भिन्न-भिन्न नही हैं। और मेचकज्ञानमे, चित्रज्ञानमे अनेक आकार प्रतिभासित होते हैं फिर भी वह ज्ञान एक है। तो जैसे उस ज्ञानमे प्रतिभास और नाना ज्ञेयाकार ये अभिन्नरूपसे रह रहे है तो प्रतिभास भेद होकर भी चूंकि इनमे अभिन्नता है अतएव ये सब एक वस्तु कहलाते हैं। इसी प्रकार ये द्रव्य पर्याय भी भिन्न भिन्न नही बन पाते हैं, इस कारण ये एक वस्तु है। ब्रह्माद्वैतवादी पर्यायको अवास्तविक मानते हैं और उससे भिन्न ही है द्रव्य और वह वास्तविक है ऐसा सिद्धान्त बनाते है। और, क्षणिकवादी अवास्तविक द्रव्यसे भिन्न ही है वास्तविक पर्यायको अवास्तविक कहा और उससे भिन्न कोई द्रव्य है जिसे वास्तविक कहा जाता है और दूसरे सिद्धान्तमे द्रव्यको अवास्तविक कहा और जो वास्तविक है पर्याय, वह उससे भिन्न चीज है। इस कारण दोनो मंतव्योको शुद्ध करनेके लिये यह जो हेतु दिया गया है कि प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्नता है, इस कारण एक वस्तु है यह सिद्ध होता है।

केवल द्रव्य या केवल पर्याय माननेपर अर्थक्रियाकी असंभवता—उन द्रव्य और पर्यायोके बीचमें किसी एकका बिलकुल अभाव माना जाय तो वहाँ अर्थक्रिया उत्पन्न नही हो सकती है क्योंकि द्रव्य, पर्यायमेसे कुछ भी मात्र एक अर्थक्रियाका कारण नहीं बनता अर्थात् पर्याय नहीं होगी, ऐसी कल्पना की जाय तो केवल द्रव्यसे अर्थक्रिया नही बनती, क्योंकि केवल द्रव्यमे न क्रम रह सकता है और न यौगपद्य रह सकता है, केवल पर्यायकी तरह। इसी तरह केवल पर्याय भी अर्थक्रियाका कारण नही बन सकती। याने द्रव्य कुछ नहीं है, मात्र अवस्था है। ऐसा कहीं होता नही है पर कल्पनामें कुछसे कुछ भी कल्पना करली जाय वहां किसीको शंका तो नही की जा सकती। कोई केवल पर्याय ही माने तो वह भी अर्थक्रियाका हेतु नही बनता, क्योंकि एक पर्यायमें भी क्रम और यौगपद्य सम्भव नही हो सकता, केवल द्रव्यकी तरह। यहाँ कोई आशंका रख रहा है कि कैसे कहा कि केवल द्रव्यमे और केवल पर्यायमे क्रम और यौगपद्यका विरोध है। उसका विरोध सिद्ध तो नही होता। उस आशंकाका उत्तर यह है कि शंकाकारोने द्रव्य और पर्यायको सर्वथा एक स्वभाव माना है। अर्थात्

उनमे न क्रमसे अनेक स्वभाव है और न एक साथ अनेक स्वभाव है ऐसा सिद्धान्त माना है केवल द्रव्यवादियोंने और केवल पर्यायवादियोंने। तो द्रव्य और पर्यायमें, जो कि सर्वथा एक स्वभाव है, क्रम और यौगपद्य देखा नहीं जाता। अनेक पर्यायात्मक ही कोई द्रव्य हो, उसमें ही क्रम और यौगपद्यकी उपलब्धि होती है।

प्रतिभासभेद होनेपर भी अव्यतिरिक्तपना रहनेकी सम्भवताका प्रतिपादन

यहाँ कोई शङ्का करता है कि द्रव्य और पर्याय वास्तविक होनेपर भी उनमें अभिन्नता असिद्ध है। द्रव्य भी वास्तविक रहे, पर्याय भी वास्तविक रहे, पर उनमें अभेद होजाय यह बात सिद्ध नही है। जैसे घड़ा आदिक द्रव्य हैं और उनसे रूपादिक पर्यायें भिन्न हैं भिन्न क्यों हैं कि उनमे ज्ञानका प्रतिभासभेद हो रहा है तो चू कि प्रतिभासभेद होनेसे घड़ा और घड़ेके रूपादिक ये भिन्न भिन्न हैं तो यों ही द्रव्य और पर्यायमे भी भेद प्रतिभास होता है, इस कारण वे भी परस्परमे भिन्न-भिन्न हैं, घट पट आदिककी तरह। जैसे घट पट ये भिन्न-भिन्न प्रतिभासमे आ रहे हैं। इस कारणसे यह कथन असिद्ध है कि वहाँ अभिन्नता है। ये भिन्न-भिन्न वस्तु हैं। प्रतिभासभेद जहाँ होता है वहाँ एकत्व नही रह सकता। इन दोनोंका परस्पर विरोध है, प्रतिभासभेद भी हो और एकत्व भी हो, ये दोनों बातें एक जगह सम्भव नही हो सकती, ऐसी नैयायिकजन शङ्का कर रहे हैं। इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि यह योगोंकी शङ्का सम्यक नहीं है, क्योंकि प्रतिभासभेदका एकत्वके साथ विरोध नही होता। अनेक स्थल आप को ऐसे प्रमाणसिद्ध मिलेंगे कि जहाँ प्रतिभास भेद तो हो रहा है पर वस्तु एक है। जैसे कि उपयोग विशेषसे रूपादिक ज्ञानोमे प्रतिभासभेद चल रहा है पर अपने विषय के एकत्वका यह प्रतिभास भेद निराकरण नहीं कर पाता है। एक वस्तु है, मानो एक फल है। उसे जब इंद्रियज्ञानके उपयोगसे देखा तो वहाँ रूप प्रतीत हुआ। जब नासिका इंद्रिय ज्ञानके उपयोगसे समझा तो वहाँ गंध जाना गया। इसी प्रकार अन्य अन्य इंद्रियके उपयोग विशेषसे अन्य अन्य विषय समझे जा रहे हैं। तो प्रतिभास भेद तो बहुत हो गया लेकिन फल वह एक है। एक ही वस्तुमें रूप रस आदिकका प्रतिभास भेद हुआ है और भी दृष्टान्त लीजिए एक ही पुरुष अनेक पुरुष दूरसे किसी वृक्ष को देख रहे हैं तो वहाँ अस्पष्ट ज्ञान हो रहा है। कुछ निकट जानेपर स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। तो उस एक ही पुरुषने दूर और निकटकी सामग्रीके भेदसे एक ही वृक्षके सम्बन्धमें विशद और अविशदका ज्ञान कर लिया है इस कारण यह हेतु असिद्ध नहीं है। प्रतिभास भेद होनेपर भी जहाँ अभिन्नता पायी जाती है वह वस्तु एक कहलाता है। इसमें प्रयुक्त साधन असिद्ध नहीं है। और इस साधनका न विशेषण विरुद्ध भी नही है, प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्न है। यह है हेतुका पूर्णरूप। उसमे प्रधान हेतु शब्द तो यह है कि अभिन्न है। उसके साथ विशेषण लगा है कि प्रतिभास भेद होनेपर भी अभिन्नता है। द्रव्य और पर्यायमें, इस कारण वह एक वस्तु है, प्रतिभास-

भेद विशेषणका अव्यतिरिक्तत्व हेतुके साथ विरोध नही है जिससे कि कोई यह शंका रख सके कि प्रतिभासभेद भी कहा जा रहा है और अभिन्नता भी कही जा रही है। प्रतिभास भेद भी है और अभेद भी है इन दोनो बातोमें विरोध नही हैं।

द्रव्य और पर्यायमें ऐक्य सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त 'प्रतिभासभेदेऽप्य-व्यतिरिक्तत्वात्' हेतुमें साध्यसमनामक दोषकी अनुपपत्ति—अब यहाँ नैयायिक शंका करते हैं कि देखिये—अव्यतिरिक्तत्वका अर्थ है ऐक्य। तो जब अव्यतिरिक्तत्व कहो या ऐक्य कहो दोनोका एक अर्थ है सो यह जो हेतु दिया है वह साध्यके ही समान है। जैसे कोई यह बोले कि इस पर्वतमे वह्नि है अग्नि होनेसे वह्निका भी आग अर्थ है और आगका भी आग अर्थ है तो क्या ऐसा हेतु सही हो सकता है ? इसे कहते हैं साध्यसम हेतु। जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है विनाशधर्मी होनेसे। तो जो साध्यकी बात कही गई है वही हेतुमें कह दी गई है। तो जैसे वह हेतु साध्यका गमक नही होता इसी प्रकार द्रव्य और पर्याय एक वस्तु हैं, प्रतिभास भेद होनेपर भी इनमें अव्यतिरिक्तता होनेसे इसमे दिया गया हेतु साध्यके ही समान है अतएव यह साध्यकी सिद्धि करनेमें असमर्थ है। इस शंकाके उत्तरमे कहते है कि शंका सही नही है, क्योंकि यहाँ जो अव्यतिरिक्तत्व शब्द हेतुमें कहा गया है उसका अर्थ है अशक्य-विवेचनता। जिसका किसी भी प्रकार भेद और विभाग न किया जा सके उसे कहते हैं अव्यतिरिक्तत्व जिस द्रव्यमें शक्तिका पर्यायका निराकरण नही किया जा सकता कि द्रव्य यही पड़ा रहे, पर्यायको अलग रख दे। तो यो जब उनमे व्यतिरेक नहीं किया जा सकता तो बस जिसमे ऐसी अशक्य विवेचनता है उसको ही अव्यतिरिक्त हेतु बताया गया है। व्यतिरिक्तपना, विवेचन करना, व्यतिरेचन करना, ये सब व्यतिरि-क्तत्वके पर्यायवाची शब्द हैं। अलग कर सकनेको व्यतिरेचन कहते हैं और जहाँ व्यतिरेचन न हो उसे कहते है अव्यतिरिक्तत्व। तो द्रव्य और पर्यायमे ऐसा विवेचन नही बनता अर्थात् उनको जुदा जुदा नही रखा जा सकता इस कारण वह हेतु अव्य-तिरिक्तत्व हेतु सही हेतु है। उनका जो भाव है वही अव्यतिरिक्तपन कहलाता है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि जिसके विभाग न किए जा सके, अशक्य विवेचन हो उसे अव्यतिरिक्त कहते हैं। इस प्रकारकी व्युत्पत्ति होनेसे द्रव्य और पर्यायमें ऐक्यपना है और यह वास्तविक है। यही साध्य इष्ट है और उसकी सिद्धि होती है। हेतु फिर साध्यका साधक कैसे न होगा। यह अशक्य विवेचनत्व हेतु असिद्ध नही है क्योंकि विवक्षित द्रव्य पर्यायोमे कुछ भी किसी अन्य द्रव्यमे ले जानेके लिए शक्यता नही है अर्थात् द्रव्य और पर्यायोमेसे कुछ भी एक चीज किसी अन्य जगह ले जायी नही जा सकती यह बात सबके चित्तमे भली भांति प्रतीति सिद्ध है जैसे वेद्याकार और वेदका-कार वे ज्ञानमेसे कही हटाये नही जा सकते। इस कारण इनमे अशक्य विवेचनता है। वेद्याकार और वेदकाकारका जो ज्ञान है वह किसी अन्य ज्ञानमें नही लिवाया जा

सकता है और इसमे कोई अन्य निमित्त भी नहीं बन सकता। इस कारण वेद्याकार और वेदकाकारको अशक्यविवेचन कहा है। ऐसे ही द्रव्य और पर्यायोका अशक्य विवेचनत्व है, इस कारण प्रतिभास भेद होनेपर भी द्रव्य और पर्याय एक वस्तु सिद्ध होते हैं।

अयुतसिद्धत्व, अविष्वग्भाव, अशक्यविवेचनत्व आदिसे द्रव्य पर्यायमें ऐक्यकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि वेद्याकार और वेदकाकार ये दोनो तो अयुक्त सिद्ध हैं अर्थात् पृथक-पृथक सिद्ध नहीं हैं इस कारणसे अशक्य विवेचनता पायी जाती है। इस शङ्काके उत्तरमें पूछते हैं कि अयुत सिद्धपनेका अर्थ क्या है? पृथक सिद्ध न होना याने अभेद होना, तो वे बतलावें कि क्या देशाभेदका नाम अयुत सिद्ध है? यदि कहेंगे कि दोनों पदार्थोंका एक ही देश होना इस तरहके देशाभेदका नाम अयुत सिद्धपना है तब तो वायु और गर्मी इन दोनोंमें भी अयुत सिद्धपना हो जायगा और अशक्य विवेचनत्व हो जायगा। याने फिर गर्मी और हवा इन दोनोका कोई विवेचन न किया जा सकेगा। इस कारण देशाभेदका नाम तो अयुत सिद्ध होता नहीं, तब क्या कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध है, अर्थात् वही समय एकका हो और वही समय दूसरेका हो, इस तरह एक ही प्रकारका सम्बन्ध होना यह काला भेद है। क्या इस कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध है? यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि कालाभेद तो हवा और गर्मी दोनोंमें देखा जाता है। जिस ही कालमे हवा है उस ही कालमे गर्मी है, किन्तु हवा व गर्मी एक तो नही हो गये। तो कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध नही है। यदि कालाभेदका नाम अयुत सिद्ध होता तो गर्मी और हवामे कभी विवेक और विवेचन नही किया जा सकता था। तब क्या स्वभावका अभेद होना अयुत सिद्ध कहलाता है? यह पक्ष भी युक्त नही है। क्योंकि विरोध है। यहाँ द्रव्य पर्यायमें जो स्वभावका अभेद कहा जा रहा है तो क्या सर्वथा स्वभावका अभेद माना जाय या कथञ्चित् स्वभावका अभेद माना जाय? यदि कहो कि सर्वथा स्वभावका अभेद माना जाय तब तो यह अयुक्त है, क्योंकि यहाँ विरोध देखा जाता है स्वभावका अभेद और द्वित्वमे कि यह पवन है, यह गर्मी है। इस तरहके द्वैधीकरणमें तो विरोध पाया जाता। यदि कहो कि कथञ्चित् स्वभावाभेद है पवन और गर्मीमें तो यही कहलाया कथञ्चित् अशक्य विवेचनपना, अर्थात् उसके भेद करना अशक्य है, अतएव इस प्रकारका वहाँ भेद पाया जाता है। और कथञ्चित् स्वभावाभेदका ही नाम है अविष्वग्भाव। यही कहलाता है समवाय। इस प्रकार तो स्याद्वादमतकी ही सिद्धि हो गयी। अन्यथा अर्थात् कथञ्चित्पना लगाकर यह सब वर्णन न किया जाय तब समवाय ही सिद्ध नहीं होता। यहाँ नैयायिक कहते हैं कि देखिये अयुत सिद्धपनेका अर्थ है कि पृथक अनाश्रयका आश्रयीपना होना और पृथक गतिमान न होना, इसका नाम अयुतसिद्ध है। उत्तर-इसका यही है कि यह भी जो कुछ कहा जा रहा है

वह अशक्य विवेचनपनेसे भिन्न बात नही कही जा रही है। इस कारण जो उदाहरण दिया गया है अनुमानमें वह साध्य साधन नही है और हेतु भी साध्यके समान न रहा। प्रकृत अनुमान प्रयोगमें रूपादिक द्रव्योका उदाहरण भी मिल जाता है। प्रकृत अनुमान प्रयोग यह है कि द्रव्य और पर्याय एक वस्तु है। प्रतिभासभेद होनेपर भी अव्यतिरिक्त होनेसे अतिरिक्त भिन्न न होनेसे। जैसे रूपादिक द्रव्य। रूपादिक द्रव्यो मे समवाय अशक्य विवेचन है, अर्थात् रूप और द्रव्य इनका जो सम्बन्ध है उसका विवेचनपना होनेसे इस अव्यतिरिक्त साधनका सद्भाव यहाँ भी है और ऐक्य है और एक वस्तुपना सिद्ध होता है, इस कारण यह उदाहरण भी युक्त है।

द्रव्य और पर्यायमे अभेदके साधक हेतुकी प्रमाणाबाधितता—शङ्काकार कहता है कि धर्मीको ग्रहण करने वाले प्रमाणसे यह बाधित हो जाता है अभीष्ट तत्त्व, अतएव कालात्ययापदिष्ट दोषसे दूषित हेतु रहेगा। धर्मीका सम्बन्ध है द्रव्य और पर्याय। अब 'कुछ' भी तत्त्व एक प्रधान उद्देश्य विधेयके रूपमे बोला जाता है तब वही कहलाता है धर्मी। ऐसे धर्मीको ग्रहण करने वाले प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधा आती है, अतएव स्याद्वादियोका दिया हुआ हेतु कालात्ययापदिष्ट दोषमे दूषित है। इस शङ्काके समाधानमे कहते है कि यह कथन भी सत्य नही है, क्योकि धर्मीको ग्रहण करने वाले प्रमाणके द्वारा कथञ्चित् भिन्न धर्मीका ही ग्रहण किया गया है, सर्वथा भिन्न द्रव्य पर्याय हो ही नही सकती। द्रव्य कही अलग रहे, पर्याय अलग हो जाय ऐसी भिन्नता द्रव्य और पर्यायमें असम्भव है। जैसे कि हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतोमे सर्वथा भिन्नता रहेगी। शङ्काकार कहता है कि द्रव्य और पर्याय ये दोनो भिन्न भिन्न द्रव्य है। उनमे अभेद क्यो जबरदस्ती सिद्ध करनेका प्रयास किया जा रहा है? भिन्न-भिन्न पदार्थोमे द्रव्यपना और पर्यायपना सम्भव नहीं होता। जैसे कि हिमालय और विन्ध्याचल ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, तो इनमे कोई द्रव्य कहलाये और कोई पर्याय यह नही हो सकता। शङ्काकार कहता है कि द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न भिन्न हैं तो उनमे अभेद कैसे हो जायगा? सर्वथा भिन्न भिन्न पदार्थोमे अभेद माननेपर विरोध आदिक अनेक दोष उत्पन्न होगे। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि जब भेद और अभेद रूपसे पदार्थ पाये जाते हैं तब उनमे विरोध आदिककी बात कैसे सम्भव हो सकती है? जैसे चित्रज्ञानमे अनेकाकार प्रतिभासित हो रहे है उन आकारोका परस्परमे तो कुछ भी विरोध नही है। जैसे मेचकज्ञान विरोध आदिक दोषोसे रहित है अथवा सामान्य विशेषवान या सामान्य ही विशेष तद्वान पदार्थ उसमे भी कोई विरोध आदिक नही है। विरोध वैयधिकरण संशय, व्यतिकर, संकर, अनवस्था, अप्रतिपत्ति और अभाव, ये सामान्य विशेषात्मक भेदाभेदात्मक वस्तुमें घटित नही होते हैं, क्योकि उनकी उस ही तरहसे प्रतीति हो रही है। जब ये भेदरूप और अभेदरूपसे जाने ही जा रहे हैं तब उनमे दोषकी क्या सम्भावना है? द्रव्य और पर्याय

संज्ञा व संख्याके भेदसे भी द्रव्य व पर्यायमे भिन्नत्वकी सिद्धि—द्रव्य, पर्यायका व्यतिरेक सिद्ध किया जानेसे शक्ति और शक्तिमान भावकी भी सिद्धि हो जाती है। शक्ति तो हुआ पर्यायरूप, शक्तिमान हुआ द्रव्यरूप। यद्यपि शक्ति भी शाश्वत होती है और वह परिणति स्वरूप नही है, किन्तु पर्यायका अर्थभेद भी है जो कि शक्ति मान तो है एक पूर्ण द्रव्य और उसके भेद करके शक्ति शब्दका प्रयोग है सो शक्ति पर्यायरूप हुआ। यो शक्तिमान और शक्तिभाव भी प्रसिद्ध होता है। परस्परमे पृथक भावरूपसे रहने वाले स्वभाव सज्ञा सख्या विशेष वाले द्रव्य पर्याय होते हैं। द्रव्यमे स्वभाव दूसरा है, पर्यायमे स्वभाव दूसरा है। द्रव्य एक है पर्याय अनेक है। तो द्रव्यमे द्रव्य है, पर्यायमे पर्याय है, इस प्रकार अन्वर्थक संज्ञा प्रसिद्ध है। द्रव्यको ही द्रव्य कहते हैं। पर्यायको ही पर्याय कहते हैं। जो द्रव्यका अर्थ है वह द्रव्यमे घटित होता है। द्रव्य कहते उसे हैं कि जिनसे पर्यायें प्राप्तकी। जो पर्यायें प्राप्त कर रहा है अथवा जो पर्यायें प्राप्त करेगा उसे द्रव्य कहते हैं। तीनो ही कालका परिणमन जिसमे पाया जाय उसका नाम द्रव्य है। पर्यायका अर्थ है परिणमन, भेदरूप हो, वे सब पर्याये हैं। तो द्रव्य व पर्यायमे सज्ञाका भेद है, संख्याका भी भेद है। द्रव्यमे एकत्वकी सख्या है, पर्यायमें बहुत्वकी सख्या है। द्रव्य एक है और पर्याय अनेक है। इसी प्रकार अनुपचरित संख्या भी यह बात सिद्ध करती है कि द्रव्य और पर्यायमें ऐक्य नही है। इस प्रकार जो कारिकामे कहा है कि संज्ञा सख्याके विशेष होनेमे द्रव्य और पर्यायमे नानापन सिद्ध होता है सो यह बात समीचीन है।

प्रयोजन भेदसे द्रव्य व पर्यायमें भिन्नत्वकी सिद्धि—अब द्रव्य व पर्याय का प्रयोजन भी देखिये! द्रव्य तो है एकत्व अथवा अन्वयके ज्ञानके कार्य वाला तो द्रव्यके सम्बन्धमे एकत्वका ज्ञान होता है और यह सदाकाल अन्वित है इस प्रकार अन्वयका ज्ञान होना है। यो द्रव्यका कार्य है एकत्व अथवा अन्वयका ज्ञान कराना। अथवा प्रयोजन यह है कि द्रव्यका एकत्व और अन्वय समझकर उस योग्य अपनी कार्य साधना, पर्यायका कार्य है अनेकत्व अथवा व्यावृत्तिका ज्ञान कराना अर्थात पर्यायके सम्बन्धमे अनेकत्व और व्यावृत्तिरूप ज्ञान होता है। इस प्रकार उनमे परस्पर विविक्त स्वभावका प्रयोजनपना है यह बात भी असिद्ध नही है। अब कालकी भिन्नता भी देखिये! द्रव्य तो है तीन कालमे रहने वाला और पर्याय है केवल वर्तमान कालमे रहने वाला। तो इस प्रकार उनका भिन्नकालपना भी सिद्ध है। भिन्न प्रतिभास जैसे प्रयोजन आदिक भेदसे सिद्ध हो जाते है अथवा प्रयोजन आदिकका भेद सिद्ध करता है, इसी प्रकार यह भिन्न कल्पना भी प्रयोजन भेदका साधक है। जैसे अध्यात्म मार्गमे पर्यायको क्षणक्षणवर्ती समझकर यह प्रयोजन सिद्ध किया जाता है कि जो अनित्य है उसमे रुचि न रखना उससे उपभोग हटाकर शाश्वत स्वभावमे रुचि करना तो कितने बडे भारी प्रयोजनका कारण बन रहा है द्रव्य और पर्यायका बोध। तो द्रव्य व पर्याय

पत्ति तथा विपक्षव्यावृत्तिका भी दिग्दर्शन—यहाँ नैयायिक शंका करते है कि देखिये ! विपक्ष इसमे सिद्ध है इस कारण सत्त्वको अनुपसहार्य नही कह सकते। वह इस प्रकार है कि जो सत् नही है वह वस्तु नही है। साधनके अभावमे साध्यका अभावरूप यहाँ विपरीत पद्धति द्वारा व्याप्ति की गई है। किसलिए कि लक्ष्य और लक्षणके बीच एकका अभाव होनेपर दूसरेका भी अभाव होता है यह समझानेके लिए तो जो सत् नही है वह वस्तु नही है। जैसे खरगोशके सीगको लो। यहाँ विपक्ष असत् सिद्ध हो गया। सत पक्ष है तो उसका उल्टा असत हुआ, वह विपक्ष बन गया। तो जब असत् रूप विपक्षकी सिद्धि हो रही तो सत्त्वको अनुपसंहार्य कैसे कहा जा रहा ? प्रयोग यह हुआ सर्वं वस्तु सत्त्वात्। तो यहाँ सत्का विपक्ष है असत् और असत्का विपक्ष है सत्। तो विपक्षकी सिद्धि हो गयी। फिर अनुपसंहार्य हेतु कैसे रहा? क्योकि अनुपसहार्य हेतु उसे ही कहते है कि जो पक्षमे तो रहे पर सपक्ष और विपक्षसे रहित हो। इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि फिर तो इस ही कारण प्रमेयत्वको भी अनुपसहार्य मत कहो। सर्वं भिन्नं प्रमेयत्वात्। यही तो प्रकृतमे कहा जा रहा था। तो भिन्न सिद्ध सिद्ध किया जा रहा था उसका विपक्ष हुआ जो भिन्न न हो। तो भिन्नपनेका अनाश्रयभूत जो खरविषाण है वह असत् है यह बात सही है और असत् होनेके कारण भिन्नपनेका अनाश्रयभूत भी है। तो भिन्नपनेका अनाश्रयभूत असत् खरविषाण कर्मरूपसे प्रमिति क्रियाका जनक नही है। अत अप्रमेय है। लो अब विपक्षका सद्भाव बन गया। इस कारणसे प्रमेयत्व क्रियाको भी अनुपसहार्य नही कह सकते। सर्व पदार्थ भिन्न है प्रमेय होनेसे। जो अप्रमेय है वह भिन्नपनेका आश्रयभूत नही होता। जैसे कि खरविषाण, अथवा जो भिन्नपनेका अनाश्रयभूत है वह अप्रमेय होता है। यों विपक्षका सद्भाव होनेसे प्रमेयत्व हेतुको अनुपसहार्य नही कह सकते।

सर्व पक्षमे रहने वाले हेतुमे भी विपक्षव्यावृत्तिका दिग्दर्शन—शकाकार कहता है कि सर्व शब्दके द्वारा तो सत् और असत् दोनोका ही ग्रहण हो गया। फिर यहाँ खरविषाणको विपक्ष कैसे बताया जा रहा ? सर्वमे सत् एक आ गया। असत् भी आ गया। खरविषाण असत् है वह भी पक्षमे ही गर्भित हो गया। उसे विपक्ष क्यो कहा जा रहा है? इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि सत् इस शब्दके ग्रहणसे भावको भी स्वीकार किया गया है और भावान्तर स्वभावरूप प्रागभाव आदिकको भी स्वीकार किया गया है। इस कारणसे किसी भी असत्को उस सत्त्वका विपक्षपना प्राप्त नही होता। याने सत्त्वके कहनेसे केवल भाव भाव ही ग्रहणमे नही आता, किन्तु भावान्तर स्वभावरूप जिसे प्रागभाव आदिक कहते है वह भी ग्रहणमे आ जाता है। इस कारण सत्त्वका विपक्षपना न होगा। दूसरोके द्वारा माना गया जो उत्पादव्यय-ध्रौव्यसे रहित विकल्प बुद्धिसे प्रतिभासितको विपक्ष मान लेनेपर सत् और असत्के वर्गका अभावभूत अर्थात् जो न सत् जातिमे आता है और न असत् जातिमे

आता है ऐसा शून्यवादीके द्वारा माना गया जो अप्रमाण विषय है उसको विपक्ष-पना हो जायगा, क्योंकि अब सत्त्व और प्रमेयत्वके विषयमें किसी भी प्रकारका अन्तर न रहा।

पक्षाव्यापी हेतुकी असाधारणतासे लक्षणत्वकी अनुपपत्ति—उक्त प्रकार सर्वको भिन्न सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त प्रमेयत्व हेतुमें अनुपसंहार्यत्वका होना नही बना जिससे कि पक्षव्यापी ही असाधारणके वस्तुलक्षणपना सिद्ध न हो, क्योंकि विद्यमान हो चाहे अविद्यमान हो, ऐसा जो कोई भी सपक्ष और विपक्ष है उस मे अविद्यमान लक्षण जो पक्षव्यापी है उसे ही असाधारण कहा गया है। पक्षव्यापी हा असाधारण वस्तु लक्षणपना बताया जानेके कारण जो पक्षमें व्यापक नही है उसका असाधारणपना कोई कहे तो वह निराकृत हो जाता है, क्योंकि उस पक्षके एक देशमे व्यापक लक्षणके यद्यपि असाधारणपना है अर्थात जो सबमें न जाय, कुछमें रहे उसे ही तो असाधारण कहते हैं। तो यो पक्षके एक देशमें रहने वाले लक्षणका असा-धारणपना आनेपर भी लक्षणपना नही बनता है, क्योकि वहां अव्याप्ति पाई जा रही है। लक्षण वह समीचीन होता है कि जिसमे अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव ये कोई दोष न हों। जैसे किसीने कहा कि पशुका लक्षण सींग है तो यहां लक्षण कहा गया है सींग और लक्ष्य बताया गया है पशु, सो यह लक्षण लक्ष्यके एक देशमे रहता है अर्थात सींग सभी पशुओंमे न रहकर किन्हीं पशुओंमे रहता है। यो पक्षके एक देश मे रहने वाला लक्षण यद्यपि असाधारण तो है मायने पक्षियोंमे, मनुष्योंमें, अनेकोमें पाया नही जाता तो यो असाधारणपना होनेपर भी सींग पशुका लक्षण तो न बन जायगा। यदि पक्षके अव्यापकको भी लक्षण मान लिया जायगा तो वहां धोखा और विडम्बना ही हाथ लगेगी। तो जो पक्षमे व्यापक है वह यद्यपि असाधारण है तो भी लक्षण नहीं बन सकता है। जैसे उष्णपना अग्निका असाधारण लक्षण है तो वह भी लक्षण नहीं बनता, क्योकि वह लक्ष्यके एक देशमें रह रहा है। देखिये ! वह उष्ण-पना समस्त अग्नि व्यक्तियोंमे नहीं है। जैसे प्रदीप प्रभा, प्रकाश आदिकमें, जहां कि उष्ण स्पर्श प्रकट नही है उनमें उष्णताका अभाव है। जो अनुद्भूत हो उसे लक्षण नहीं कहा जा सकता। जो प्रगट नही है उसे किसका लक्षण कहा जायगा ? अप्रसिद्ध होनेसे। यदि उष्ण स्पर्शके योग्य है इस तरह अग्निका लक्षण कहा जाय तो इसमें कोई दोष न होगा, क्योकि पक्षमे व्यापने वालेको असाधारण कहा गया है, पक्षव्यापी को असाधारणपना कहा जानेके कारण अविद्यमान विपक्षमें न रहने वाले हेतुका सपक्षमें भी रहना असम्भव है इस कारण असाधारणता समझ ही लेनी चाहिये।

पक्षव्यापी साध्याविनाभावी हेतुके सपक्ष, विपक्षका अभाव होनेपर भी लक्षणत्वकी उपपत्ति—और भी देखिये ! विद्यमान सपक्षमें भी न रहनेवाले

हेतुका विपक्ष असम्भव है, सो पक्ष व्यापि असाधारणके लक्षणपना विरोधको प्राप्त नही होता जैसे कि शब्दको अनित्यपना सिद्ध करनेमे श्रावणत्व हेतु असिद्ध और विरुद्ध नही होता। वह श्रावणत्व हेतु विद्यमान अनित्य घट आदिक सपक्षमे नही हैं। अनुमान प्रयोग बनाया गया है कि शब्द अनित्य है श्रावण होनेसे अर्थात् स्रोत्र इन्द्रिय द्वारा सुननेमे आनेसे। तब अनुमान प्रयोगमे सपक्ष भी कहलायेगा। जो जो पदार्थ अनित्य हैं, जहाँ जहाँ साध्य पाया जाता हो उसे सपक्ष कहते हैं और जहाँ साध्य न पाया जाय उसे विपक्ष कहते हैं। तो जो जो भी पदार्थ अनित्य होंगे सपक्ष सो सपक्षमे रहना चाहिए हेतुको लेकिन ये घट आदिक अनित्य पदार्थ तो सपक्ष हैं किन्तु उनमे श्रावणत्व नही पाया जाता। दूसरी बात यह है कि इस अनुमान प्रयोगका विपक्ष होना चाहिए नित्य एकान्त। सो नित्य एकान्त कोई विपक्ष नहीं है। कदाचित् शङ्काकार यह कहे कि शब्दमे रहने वाला जो शब्दत्व है वह तो नित्य एकान्त है, सो शङ्काकार ऐसा नही कह सकते, क्योंकि शब्दत्व भी सदृश परिणाम लक्षण वाला है। जातियाँ सदृश परिणामको निरखकर बना करती हैं तो शब्दत्व जाति भी सदृश परिणाम है, अतएव वह भी कथञ्चित् अनित्य है तो नित्य एकान्त कोई चीज सम्भव ही नही है अत: इस अनुमानका विपक्ष कोई मिलेगा ही नही। शङ्काकार यदि यह सोचे कि शब्दका अभाव ही विपक्ष बन जायगा, अनुमान प्रयोग यह है कि शब्द अनित्य है स्रोत्रइन्द्रियका विषय होनेसे, तो यहाँ अनित्याविपक्ष है नित्य एकान्त और अनित्य एकान्त सम्भव नहीं बताते तब शब्दका ही अभाव होना यही विपक्ष बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी नही कह सकते क्योंकि शब्दका जो अभाव है वह तुच्छाभावरूप न होगा, किन्तु अन्य भावके स्वभावरूप होगा। तो शब्दका अभाव शब्दान्तरके स्वभावरूप है अथवा शब्दको छोड़कर अन्य पदार्थोंके स्वभावरूप है अत वहाँ इतरेतराभाव है और प्रध्वंसाभाव भी है सो वह सब अनित्य होनेसे। अब शब्दाभाव भी पक्षसे भिन्न न रहा। नित्य अनित्य जितने हैं वे सब विपक्ष हो ही नही सकते। और दूसरी बात यह है कि जो शब्दके अभावको यहाँ विपक्ष कह रहे हो अर्थात् अशब्दात्मक तत्त्वको तो वह तो अश्रावण होनेसे ठीक ही बन गया। तो अब श्रावणपना शब्दका लक्षण बन गया क्योंकि शब्दाभावमे श्रावण्यता है नही तो शब्दका लक्षण स्रोत्रइन्द्रियका विषयभूत होना यह ठीक लक्षण बन गया, यदि शब्दात्मकता न हो तो श्रावणपना कभी उत्पन्न नही हो सकता, इस प्रकार अन्यथानुपपत्तिरूप लक्षण है, वह पक्षमें व्याप रहा है और वह निर्दोष है, क्योंकि यह लक्षण लक्ष्य शब्दके बिना उत्पन्न नहीं हो रहा है। शब्द न हो तो श्रावणत्व नहीं रह सकता, अत शब्दका लक्षण श्रावणपना युक्त ही है।

द्रव्य और पर्यायका लक्षण—अब द्रव्य और पर्याय इन दोनोंके लक्षणकी चर्चा कर रहे हैं। द्रव्यका लक्षण तो है गुण पर्यायवान होना, सूत्रकारने भी कहा है गुण-

पर्यायवद् द्रव्य। द्रव्य गुण पर्याय वाला होता है। तो द्रव्य गुण पर्याय वाला है यह बात इस तरह सिद्ध होती कि जहाँ क्रमभावी विचित्रता और अक्रमभावी विचित्रता पायी जा रही है। द्रव्यमें एक ही साथ रहने वाली अनन्त शक्तियां हैं जो द्रव्यके साथ है। अनादि अनन्त हैं तथा क्रमसे होने वाली परिणतियां भी निरन्तर चलती रहती है। जिसका आदि है और अन्त है। अन्त होनेपर भी तुरन्त ही परिणति होती रहती है। यो क्रमभावी और अक्रमभावी विचित्र परिणाम न माननेपर द्रव्यत्व ही लक्षण गुणपर्ययवद् द्रव्य जो कहा गया है वह समुक्त ही है। इसी प्रकार द्रव्यके अभावमें गुण पर्ययवानपना भी नही बनता गुण पर्यायके बिना जैसे द्रव्य लक्ष्यमें नही आता उसी प्रकार द्रव्यके बिना गुण पर्यायकी भी उपपत्ति नही बनती। अत. गुण पर्ययवद्द्रव्य सही लक्षण है।

द्रव्यलक्षणकी निर्दोषता—शकाकार यदि ऐसी आशकार रखे कि देखिये कार्य द्रव्य तो पर्याय है फिर वहा द्रव्यका लक्षण कैसे घटित होगा ? द्रव्यका लक्षण किया है गुण पर्ययवद् द्रव्यं। जो गुण पर्याय वाला हो सो द्रव्य कहलाता है। अब कार्य द्रव्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये सभी स्कध ये कार्य द्रव्य है। इनमे गुण पर्यायवान पना तो नही पाया जाता। वे तो केवल पर्यायरूप है। इस शंकाके समाधानमें, यह समझना चाहिए कि कार्य द्रव्य जो घट आदिक पदार्थ हैं उनमे भी गुणवत्ता और पर्यायवत्ता पाई जाती है। गुण तो घट आदिकमें रूप, रस गध, स्पर्श आदिक शक्तियाँ अब भी चल रही हैं और नया पुराना आदिक जो व्यक्त परिणतियां हैं वे पर्याय कहलाती हैं। यो गुण पर्यायवान द्रव्य कहलाता है। तब गु पर्ययवद्द्रव्यं लक्षण अव्याप्ति दोषसे दूषित नहीं है। अतिव्याप्ति दोष तो तब लगता कि द्रव्य तो हो कोई, किन्तु वहाँ गुणपर्यायवानपना न पाया जाय सो घटादिक द्रव्योमें गुण पर्यायपना पाया जाता है अतएव अव्याप्ति दोष नही लगता। इसी प्रकार अतिव्याप्ति दोष भी नही है। कोई कहे कि रूप, रस, गध, स्पर्श जो क्रमसे उत्पन्न होते हैं वे पर्यायें हैं। उनमे गुण पर्यायपना कैसे पाया जायगा ? सो भी नही कह सकते, क्योकि जो स्पर्श आदिक विशेष हैं जैसे मृत्पिण्डसे स्थास, कोस, कुशूल, घट आदिक अवस्थाये बनी है, वे क्रमसे हैं। ऐसे ही उन स्पर्शादिक सामान्योमे जो कि सहभावी है उन केवल गुणोमे गुण पर्यायित्व लक्षणका अभाव है। अतिव्याप्ति दोष तो तब कहलाता कि द्रव से अतिरिक्त अन्य पदार्थोंमे भी यह लक्षण पहुचे। अलक्ष्यमे भी लक्षण पहुचनेका नाम अतिव्याप्ति है। सो शकाकारकी दृष्टिसे यह अलक्ष्य बन गया रूप रस आदिक सहभावी गुण। तो उन सहभावी गुणोमें गुण पर्यायमित्व नही पाया जाता, फिर अतिव्याप्ति दोष कैसे लगेगा ? पर्यायका लक्षण कहा है तद्भाव। मायने पदार्थका कुछ होना, "तद्भाव. परिणाम", ऐसा सूत्रकारका भी वचन है। विशिष्ट रूपसे होनेका नाम परिणाम है और वह सहभावी एव क्रमभावी समस्त पर्यायोमे तद्भाव लक्षण पाया

जाता है। अत. पर्यायका लक्षण भी अव्याप्ति दोषसे दूषित नही है। यहाँ कोई कहे कि फिर अतिव्याप्ति दोष लग जायगा, सो भी नही लगता, जहाँ तद्भाव नही है ऐसे द्रव्यमे पर्यायका लक्षण नही जाता। इस प्रकार यह प्रमाणसे सिद्ध हुआ कि द्रव्य और पर्यायमे लक्षण भेद भिन्न-भिन्न है और वह कथञ्चित नानापनेको सिद्ध करता है।

द्रव्य और पर्यायमे कथचित् अन्यता व कथचित् अनन्यताकी सिद्धि—यहाँ प्रकरण चल रहा है इसका कि द्रव्य पर्यायमे कार्य कारणमे अन्यता है या एकता है। सिद्ध किए जा रहे उस द्रव्य पर्यायमे लक्षण आदिकके भेदसे भिन्नताहै और वस्तु एक है अतएव एकता है। इसकी पुष्टिके लिए रूपादिकका उदाहरण भी उपयुक्त है। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब जो पाये जा रहे हैं मूर्त पदार्थोंमें सो यह बताये कोई कि रूप रस गध आदिक परस्परमे अन्य-अन्य ही हैं या एक रूप है ? वहाँ सिद्ध यही होगा कि कथञ्चित् अन्य-अन्य रूप हैं कथञ्चित् अनन्य हैं। तो रूपादिकके उदाहरण मे भी साध्य और साधन पाये जाते हैं। तो कथञ्चित् नानापनसे व्याप्त जो भिन्न लक्षणपना है उसकी यहाँ सिद्धि की गई है, परस्पर व्यतिरिक्त स्वभाव संज्ञा, संख्या आदिकके द्वारा अर्थात् उनमे स्वभाव भिन्न है, सख्या भिन्न है, प्रयोजन भी भिन्न है अतएव द्रव्य और पर्याय कथञ्चित् नानारूप है, उनमे भिन्नता है, रूपादिकका लक्षण और रसादिकका लक्षण भी भिन्न भिन्न है अतएव वहाँपर भी कथञ्चित नानारूप विदित होता है। रूपादिकका लक्षण है रूपादिकके ज्ञानके प्रतिभासके योग्य होना अर्थात यह रूप है इस तरहके प्रतिभासके जो विषय हो सकते हैं वह रूप है ऐसा रूप, रस आदिकमे सबमे अपनी-अपनी बुद्धिका भेद है, इस कारण कथंचित रूपादिक मे नानापन सिद्ध होता है। तो द्रव्य और पर्यायमे लक्षण आदिकके भेदसे नानापन है, इसकी सिद्धिमें रूपादिकके उदाहरण भी सही हो जाते है।

द्रव्य व पर्यायमे भिन्नलक्षणत्व व एकत्रवस्तुताकी मीमांसा—यहाँ शङ्काकार साख्य कहता है कि क्या हर्ज है, रूपादिकमे, द्रव्यपर्यायमे भिन्न लक्षणपना भी बना रहे और नानापन भी बना रहे, परस्परमे भेद भी रहा आये और उनके लक्षण स्वभावादिक भी जुदे जुदे रहे, उसमे कोई विरोध नही आता। इस कारणसे जो हेतु दिया गया है वह सदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक है अर्थात जिस हेतुकी विपक्षसे व्यावृत्ति रहे अर्थात जो हेतु विपक्षमे न जाय वह तो समीचीन होता है और जिसमे विपक्ष व्यावृत्ति न हो अर्थात विपक्षमे भी चला जाय वह हेतु सदोष होता है। इसी प्रकार विपक्षमे जानेका संदेह रहे वह भी हेतु सदोष होता है। यहाँ हेतुमे सन्देहवाला दोष है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का इस कारण युक्त नही है कि विरुद्ध धर्मका प्रतिभास और बुद्धिमे प्रतिभासभेदका होना इन दोनो बातोसे वस्तुके

स्वभावभेदकी सिद्धि हो जाती है। इन दोनोके एक साथ रहनेमें विरोध नहीं है किंतु परस्पर साधकता है। पदार्थमे विरुद्धधर्म पाये जायें और बुद्धिमें प्रतिभासभेद स्खलित न हो ये दोनो एक साथ सम्भव हो सकते हैं। इस कारण वस्तुमें स्वभावभेदकी सिद्धि होती है अन्यथा अर्थात विरुद्ध धर्मका अध्यास होना और बुद्धिप्रतिभास भेदका स्ख लत न होना इन दोनोका अभाव होनेपर भी यदि वस्तुके स्वभावमे भेदकी सिद्धि करते हो तब यह जगत नानापनसे रहित हो जायगा और ऐसा मान लेनेपर फिर पक्षान्तर आ न सकेगा विरुद्धधर्मका अध्यास और बुद्धिप्रतिभास भेदका स्खलित न होना इन दोको छोडकर और कोई प्रकार नही है कि जो पक्ष उपस्थित किया जा सके। कैसे पक्षान्तर नही है ? सो सुनो ! विपक्षमे तो बाधक प्रमाणका सद्भाव है। विपक्ष हुआ यहाँ नानापनका अभाव याने सर्वथा एकत्व उसमे तो बाधक प्रमाण मौजूद है इस कारण विपक्षव्यावृत्ति निश्चित है और इसी सबब भिन्न लक्षणपना होना इस साधन का द्रव्य और पर्यायोमे होना पाया जाता है और सर्वथा एकत्व होनेपर जो कि विपक्ष रूप है वहाँ विरुद्ध धर्मका अध्यास होना और बुद्धिमे भेद प्रतिभास न होना ये दोनों नही पाये जाते हैं। यों भिन्न लक्षणताकी विपक्षमे अनुत्पत्ति है, विपक्षमे हेतु न जाय इस पद्धतिसे ही हेतु निर्दोष कहलाया करता है। उन विरुद्ध धर्मोका अध्यास और बुद्धिप्रतिभासभेदका स्खलित न होना इन दोनोके अभावमे भिन्न लक्षणताकी अनुत्पत्ति कैसे है ? सो भी सुनो ! व्यापक जो स्खलन बुद्धिप्रतिभास है और वही ग्राहक है उसका अभाव होनेपर व्याप्य भिन्न लक्षणत्व विषय नहीं बनता। अर्थात विरुद्ध धर्मका अध्यास होनेपर ही भिन्न लक्षणता बनती है। इसलिए विरुद्ध धर्मका अध्यास भिन्न लक्षणपनेका अविनाभावी है। इससे सिद्ध है कि जहाँ विरुद्धधर्मका अध्यास हो, बुद्धिमे प्रतिभास भेद हो वहाँ वस्तु स्वभावमे भेद सिद्ध होता ही है। बुद्धिमें प्रति-भासभेद स्खलित नही होता ग्राहक प्रतिभासके अभावमे और ग्राह्य पदार्थके अभावमें भी अगर भिन्न लक्षणपनेकी व्यवस्था मान ली जाय तब तो जगतमे कुछ भी एक न रहेगा। अब तो विना कारणके ही कुछ भी व्यवस्था बनाई जाने लगेगी। और, न फिर जगतमे कुछ नाना भी रहेगा, क्योंकि विरुद्धधर्माध्यास और प्रतिभासभेदका स्खलित न होना, इसके अभावमें भी जब नानापना सिद्ध किया जाने लगा तब भिन्न लक्षणपना और नानापना ये अब उस विरुद्ध धर्माध्यासके द्वारा भिन्न लक्षणत्वका साधनपना न बन सकेगा और बिना साधनोके किसीकी सिद्धि होती नही है। साधन के बिना यदि किसीकी सिद्धि मान ली जाय तो इसमे अतिप्रसङ्ग होता है और नाना-त्व एव एकत्व माननेमे और कोई दूसरा प्रकार नही है। विरुद्ध धर्माध्यास और प्रति-भासभेदकी बुद्धि बनना इन दोके सिवाय अन्य कोई प्रकार नही है कि जिससे नाना-पन सिद्ध हो सके। इसी प्रकार विरुद्ध धर्माध्यासका न होना अथवा भेद प्रतिभासकी बुद्धिका न बनना यही होता है एकत्वके माननेका साधन। सो विरुद्ध धर्माध्यास और

उनके उल्टा दोनोके द्वारा ही नानात्व और एकत्व स्वरूपकी व्यवस्था बनती है। ऐसे ही बुद्धिप्रतिभास भेदका स्खलित न होना अथवा स्खलित होनेमे ही नानात्व और एकत्व स्वरूपकी व्यवस्था बनती है।

द्रव्यत्व पर्यायमें नानात्व व एकत्वके सम्बन्धमे सप्तपदी प्रक्रिया—उक्त प्रकारसे सिद्ध होता कि स्वलक्षणभेदसे द्रव्यपर्यायमे नानापन है और अशक्य विवेचन होनेसे दोनोमे एकत्व है और जब क्रमसे इन दोनोकी विवक्षा की जाती है अर्थात् स्वलक्षणभेद और अशक्य विवेचन दोनोकी विवक्षा करनेपर वस्तु स्यात् उभयरूप है और जब दोनो ही एक साथ विवक्षित किए जाते है तो कुछ कहा नही जा सकता है, इस कारणसे वस्तु अवक्तव्य ही है। जब विरुद्ध धर्माध्यक्षकी दृष्टि और एक साथ दोनोकी दृष्टि की जाती हो तब वस्तु स्यात् नाना और अवक्तव्य है। इसी प्रकार जब अशक्य विवेचनता और दोनो पदार्थोंके एक साथ कहनेकी अशक्यता इन दो दृष्टियोसे देखा जाता है तब वस्तु स्यात एक अवक्तव्य है। जब क्रमसे दोनो और अक्रमसे दोनो की विवक्षा की जाती है तब वस्तु कथचित उभय अवक्तव्य है, इस तरह प्रत्यक्ष और अनुमानके अविरुद्ध सप्तभङ्गी प्रक्रिया जाननी चाहिए। यो कार्य कारणमे, गुण गुणी मे, अवयव अवयवीमे कथंचित भेद है और कथंचित एकत्व है। यह विषय इन परिच्छेदमें पुष्ट किया गया है।

अगले परिच्छेदमे वक्तव्यकी संधि—अब इन अंतिम दो कारिकाओमे पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, ऐसा बताकर अब यह बतायेंगे कि उनके विषयमे कोई लोग यह मानते हैं कि उन दोनोकी सिद्धि आपेक्षिक है, ऐसा एकान्त किया जाता है। तो कुछ दार्शनिक ऐसा एकान्त करते हैं कि उनकी सिद्धि अनापेक्षिकी है। इन दोनो एकान्तोका निराकरण करनेके लिए अब पञ्चम परिच्छेदमे कथन किया जायगा और वहा यह समर्थन होगा कि धर्म धर्मी आदिक व्यपदेश तो आपेक्षिक है किंतु उनका स्वरूप आपेक्षिक नहीं है। यह सब वस्तु स्वरूपका परिज्ञान किस तरह मोहके विनाश मे सहायक होता है ? यह पद्धति भी जानना चाहिए। समस्त ज्ञानोका प्रयोजन निर्मोहता और वीतरागताका सम्पादन करना है। द्रव्य पर्यायकी बात स्वयंकी वस्तुमे घटाई जाय—यह मैं आत्मा स्वयं एक हू और इसमे प्रतिक्षण उनकी परिणतियाँ होती रहती हैं। वे परिणतियाँ इस शाश्वत द्रव्यसे भिन्न लक्षण रखती हैं अतएव भिन्न हैं, नाना हैं किन्तु हैं वे अपनी ही परिणतियाँ। जिस कालमे वे परिणतियाँ हैं, उस कालमे इस द्रव्यसे अभिन्न हैं, अतएव एक वस्तु हैं। सो सम्यग्ज्ञानके इस अवयव के परिच्छेदमे अवयव अवयवी आदिके एकत्व व नानात्वकी मीमासा की गई है।

यद्यापेक्षिकसिद्धः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥ ७३ ॥

धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी मानने वाले दार्शनिकका आशय—धर्म धर्मीकी सिद्धि यदि आपेक्षिक मानी जाय तो इसमे परमार्थतः दोनोकी व्यवस्था नही रहती, इसी प्रकार धर्म धर्मीकी सिद्धि यदि आपेक्षिकी मानी जाती है तो वहाँ सामान्य विशेषपना नही रहता है, इस रहस्यको सुनकर यहाँ कोई दार्शनि यह कर रहा है कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि तो आपेक्षकी ही होती है, क्योकि प्रत्यक्ष बुद्धिमें धर्म धर्मी का प्रतिभास नही होता। जैसे कि दूरवर्ती और निकटवर्ती पदार्थोंके सम्बन्धमे जो स्पष्ट अस्पष्टरूपका बोध होता है वह आपेक्षिक सिद्ध है, उसका भी निराकार दर्शनमे प्रतिभास नही होता है। प्रत्यक्षज्ञानमे, निराकार दर्शनमे धर्म और धर्मी प्रतिभासमान नही होते। धर्म धर्मीका प्रतिभास तो निराकार दर्शनके पश्चात् होने वाले विकल्पसे कल्पित किया जाता है। निराकार दर्शनमें अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानमे तो स्वलक्षणका ही प्रतिभास है। फिर कैसे धर्म धर्मीका व्यपदेश प्रत्यक्षके पश्चात् होने वाले विकल्पमात्र से ही उपकल्पित है, वह भी आपेक्षिकी सिद्धिका समर्थक है। देखिये जब यह अनुमान प्रयोग होता है कि सर्व क्षणिक है सत्त्व होनेसे तो यहाँ शब्दकी अपेक्षासे सत्त्वादिकको धर्म कहा गया है। याने वस्तुमें सत्त्वधर्म है और ज्ञेयत्वकी अपेक्षासे धर्मीका भी व्यवहार किया जाता है। सत्त्व भी तो ज्ञेय होता है। जो जाना जाय वह एक स्वतंत्र चीज है। तो यो धर्मी हो गया। अर्थात् वही सत्त्व धर्म, विशेष बनता है और वही सत्त्व धर्मी विशेष्य बन जाता है। तो यहाँ ज्ञेयत्वकी अपेक्षासे ज्ञेयत्व धर्म है और क्या कहा गया उस सत्त्व शब्दके द्वारा उस अभिधेयपनेकी अपेक्षासे सत्त्वादिक धर्मी कहलाता है और जब अभिधेयपनेकी अपेक्षा की जाती है तो अभिधेयपना धर्म कहलाता है और जब प्रमेयपनेकी अपेक्षा की जाती है कि प्रमेय क्या हुआ, जाना क्या गया? तब वही सत्त्व धर्मी कहलाता है। तब देखिये कि किसी भी शब्दमें जो धर्म धर्मीकी व्यवस्था की जाती है वह अपेक्षासे की जाती है। इस प्रकार धर्म और धर्मी कही भी व्यवस्थितरूपसे नहीं ठहरता है इस कारण धर्म अथवा धर्मी तात्त्विक चीज नहीं है, किन्तु उनकी सिद्धि अपेक्षिक है और वह कल्पित है।

उदाहरण द्वारा धर्म धर्मीकी आपेक्षिकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा उपसहार—देखिये नीलका स्वलक्षण अथवा ज्ञानका स्वलक्षण प्रत्यक्षमे प्रतिभासमान होता हुआ किसीकी अपेक्षा रखकर अन्य प्रकारसे वह होते हुए अनुभवमें आवे, ऐसा नहीं पाया जाता। स्वलक्षण तो जहाँ जो है सो ही है। वहाँ परिवर्तन नही होता। जैसे कि धर्म और धर्मीके सम्बन्धमे परिवर्तन हो जाता है वही किसी अपेक्षासे धर्म है तो किसी अपेक्षासे धर्मी है। जैसे कि अभी सत्त्वके सम्बन्धमे बताया गया लेकिन वस्तुका जो असाधारण स्वरूप है वह किसी भी अपेक्षासे बदल नहीं सकता है। तो जो स्वलक्षण है वह प्रत्यक्षसे प्रतिभासित है और अनापेक्षिक है। केवल अपेक्षा बुद्धिमे विशेषण विशेष्यपना सामान्य विशेष्यपना, गुण गुणीपना, क्रिया क्रियावान-

पना, कारण कार्यपना, साधन साध्यपना, ग्राहक ग्राह्यपना यह सभी अपेक्षाओंसे ही प्रकल्पित होता है। जैसे कि दूर और निकट कौन सा स्थान दूर कहलायगा और कौन सा स्थान निकट कहलायगा? इसको कोई निर्णय नही दे सकता, क्योंकि दूर और निकट आपेक्षिक है। जिस स्थानको किसी अपेक्षासे हम दूर कहते हैं वही स्थान किसी अन्य अपेक्षासे निकट हो जाता है। तो जैसे दूर होना निकट होना यह कोई स्वतः सिद्ध बात नही है, आपेक्षिक है इसी प्रकार धर्म धर्मी विशेषण विशेष्य आदिक भी अपेक्षासे सिद्ध होता है। ऐसा कोई दार्शनिक धर्म धर्मी आदिकी सिद्धि आपेक्षिकी करनेके लिए यह सब कह रहे हैं।

आपेक्षिक सिद्धिका एकान्त करने पर और उसे अतात्त्विक कहनेपर शंकाकाराभिमत नील व नीलसंवेदनके अभावका प्रसग—अब उक्त मंतव्यके निराकरणके लिए आचार्यदेव कहते हैं कि यदि धर्म धर्मी आदिककी एकान्ततः आपेक्षिकी सिद्धि मानी जाय तब ये दोनो कुछ नही ठहर सकते, नील स्वलक्षण और नील का सम्वेदन ये दोनो आपेक्षिक हैं। अर्थात् एककी अपेक्षासे दूसरेकी सत्ता ठहरती है अथवा जानकारी होती है वह इस प्रकारकी जिसकी सर्वथा परस्पर अपेक्षाकृत ही सिद्धि है उसकी व्यवस्था नही बनती। जैसे कि एक नदीमे तैरने वाले दो लोग परस्पर एक दूसरेका आश्रय करले तो दोनोकी सही व्यवस्था न रहेगी। कोई दो तैराक लोग आपसमे एक दूसरेको पकडलें तो दोनोको डूबनेकी सम्भावना है और वे भली भांति तैरकर नही निकल सकते। जिस तरह परस्पर आश्रय करनेसे दो तैराक विडम्बनामें पड जाते हैं इसी प्रकार इन धर्म धर्मी नील पदार्थ, नील सम्वेदन आदिक सब कोई आपेक्षिक मान लिये जानेपर दोनोकी ही व्यवस्था नहीं बनती है। नील और नीलका सम्वेदन इनकी भी सर्वथा अपेक्षाकृत सिद्धि है इस कारण ये दोनो नही ठहर सकते। नीलपदार्थ नीलज्ञानकी अपेक्षा न रखकर सिद्ध नही हो सकता। यदि नील सम्वेदनकी अपेक्षा न रखे तो वह नील अवेद्य बन जाय अर्थात् ज्ञेय न रहेगा उसकी कुछ जानकारी ही न बन सकेगी। क्योकि वस्तुकी व्यवस्था ज्ञान निष्ठ हुआ करती है व्यवस्थापक तो ज्ञान है। ज्ञानमे वस्तु आये तो उसकी व्यवस्था बनती है। तो जैसे नील पदार्थ सम्वेदनकी अपेक्षा न रखकर सिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार नील पदार्थकी अपेक्षा न रखे तो नील सम्वेदन भी सिद्ध नही होता, क्योकि नील सम्वेदनका आत्म लाभ तो नील पदार्थसे माना गया है अन्यथा नील सम्वेदन निर्विषय बन जायगा। यह नील है इस प्रकारका जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान नील पदार्थ है तब बनता है नील पदार्थका विषय किया है। तब बनता है। तो यहाँ नील पदार्थ और नील सम्वेदन ये दोनों ही परस्पर आश्रित हो गए। इनमेंसे यदि किसी एकका ही अभाव कर दिया जाय तो शेष दूसरेका भी अभाव हो जायगा। तब दोनोंकी व्यवस्था न बन सकेगी। जब किसी एकको मुख्य किया जाता है और दूसरेको आपेक्षिक सि-

मानकर गौण कर दिया जाता है तो उनमें जिसको गौण किया उसका ही अभाव बन बैठेगा तब तो मुख्यकी भी सिद्धि न हो सकेगी। किसी भी एक की सिद्धि न हो शेष दूसरेकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। तो नील और नील सम्वेदन ये एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं, न रखें तो दोनोकी व्यवस्था न बने।

नीलवासनासे नीलसवेदनकी उपपत्ति माननेपर भी शंकाकारका दोषापत्तिसे छुटकारेका अभाव—नील वासनासे नील सम्वेदन होता है, ऐसा यदि शङ्काकार कहे तो इस दर्शनमे भी उन दोनोकी व्यवस्था न बन सकेगी। क्योंकि नीलवासना कैसे बनी ? इसका उत्तर दिया जायगा कि नील सम्वेदन कर रहे तब वासना बनी तो अब पूछा जाय कि नील सम्वेदन कैसे बना तो उसके लिए इसी पंक्ति मे कहा ही जा रहा है कि नील वासनासे नील सम्वेदन बना तो इस तरह नील वासना से नील सम्वेदन माननेपर दोनोका ही सत्त्व सिद्ध न हो सकेगा। उन दोनोके अन्योन्यापेक्ष एकान्त मान लेनेपर याने प्रकट अपेक्षाकृत सिद्ध है लेकिन सर्वथा ही अपेक्षा सिद्ध मान लिया जाय, उनका सत्त्व स्वतन्त्र स्वीकार न किया जाय तो स्वभावसे प्रतिष्ठित किसी एकका भी अभाव होनेपर याने जब एकका अभाव हुआ तो शेष बचे हुएका भी अभाव हो गया, तब ये दोनो ही कल्पनामे नही ठहरेंगे। नील पदार्थके ज्ञान के अभावमें तद्विषयक वासना विशेष व्यवस्थित नही होता है अन्यथा अर्थात् नील पदार्थके ज्ञानके अभाव होनेपर भी यदि नील विषयक वासना विशेष मान लिया जाता है तो फिर अनेक अति प्रसग आते हैं। धूमरूप दर्शनके अभावमे भी पर्वतमे अग्निका सद्भाव मान लिया जाय आदिक अनेक प्रसंग होनेसे यह नही कहा जा सकता है कि नील पदार्थ विषयक ज्ञानके अभावमे नीलज्ञान विषयक वासना. विशेष बन जायगी। इसी प्रकार नील पदार्थका सम्वेदन भी व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है। अन्यथा अर्थात् नील वासनाके बिना नील ज्ञानकी व्यवस्था मानी जाती है तो वह निमित्त सहित बन जायगी। क्योकि अब नील ज्ञानको नील वासनाकी भी आवश्यकता नही हुई। शङ्काकार यह कहता है कि सम्वेदनका तो स्वत. ही प्रकाशन है याने नील ज्ञान स्वयं ही बन जाता है, इस कारण दोष न आयगा। इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी युक्ति निकाली नही जा सकती; क्योकि इसमे परस्पर अपेक्षाके एकान्तका विरोध है। यहाँ पक्ष तो यह चल रहा है कि सभीकी सिद्धि आपेक्षिकी है। अब नील वेदनका मान लिया स्वत' ही प्रकाशन तो मूल पक्ष तो अब न रहा और भी देखिये ! यो दण्डादिक विशेषण भी विशेषण बुद्धिमे स्वत: हो जायें और सामान्य क्रिया गुण आदिक भी अपनी बुद्धिमे अन्यकी अपेक्षा रहित प्रतिभासित हो जायें और इसी प्रकार विशेष्य विशेषण आदिक भाव भी अपनी बुद्धिमें स्वत. ही रूपसे प्रसिद्ध हो जायें। तब प्रतिवादियोंके द्वारा कहा गया यह दोष कि दोनोका अभाव हो जायगा यह दोष अब न आ सकेगा। तो अब विशेषण विशेष्य सामान्य विशेष आदिक दोनों रूपोका अभाव न

हो सका तो इसी प्रकार दूर निकट आदिक दृष्टान्त जो शङ्काकारने दिया है वह साध्य और साधन दोनों धर्मोंसे रहित हो जायगा।

मूल प्रसंगमे साध्य साधनका अभाव—शङ्काकारका मूल पक्ष यह था कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी होती है, क्योंकि निराकार दर्शनमें धर्म और धर्मीका प्रतिभास नही है। जैसे कि दूर और निकट आदिक व्यवहारोंका प्रतिभास निराकार दर्शनमे नही है, किन्तु उसके बाद होने वाले विकल्पज्ञानमें प्रतिभास है तो इस मूल प्रसंगमे जो दूर और निकटका दृष्टान्त बताया अब इसमें न साध्य रहा और न साधन रहा। न आपेक्षिकी सिद्धि रही और न प्रत्यक्ष बुद्धिमें अप्रतिभास रहा। दूर और निकट भाव भी तो अपने स्वभाव परिणमन विशेष हैं। यदि उस रूपसे स्वभाव परिणमन न माना जाय तो समानदेशमे रहने वाले पदार्थोंमे भी दूर और निकटवर्तीके व्यवहारका प्रसग आ जायगा। अर्थात जो एक ही जगह हैं दोनों उनमे भी दूर निकट रहते हैं यो मान लेना पडेगा क्योंकि दूर और निकटवर्ती होनेका कोई उस रूप से स्वभाव परिणमन माना ही नही है, परन्तु ऐसा कहां है ? समान देश, समानकाल और समान स्वभाव वाले उस एक दूसरेकी अपेक्षासे भी दूर और निकट भावका व्यवहार नही होता है। जैसे कि खरविषाणमें दूर और निकट रहनेका स्वभाव नही है तो वहां दूर और निकटका व्यवहार नहीं बनता। इसी प्रकार समान देशकाल स्वभाव वाले पदार्थोंमे भी अन्यान्यापेक्षासे भी दूर आसन्नका व्यवहार नही बन सकता। क्योंकि यहां भी अब स्वभाव परिणमन नही माना गया। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि दूर और आसन्न व्यवहार भाव स्वभावसे होता है अन्यथा यहां इतरेतराश्रय दोष हो जायगा। जब दूर और निकटके पदार्थोंका ज्ञान हो जाय तब दूर और निकटके पदार्थके प्रतिभासकी समझ बनेगी और जब दूर और निकट अर्थके प्रतिभासकी समझ बन जाय तब दूर और निकटके पदार्थोंका ज्ञान बनेगा। अतः मानना चाहिए कि इन सबकी सिद्धि सर्वथा आपेक्षिकी नहीं है।

धर्म धर्मीकी सिद्धिकी भी धर्म धर्मी स्वभाव विशेषकी सिद्धिपर निर्भरता—दूर आसन्न विशेष्य विशेषण आदिक सभी पदार्थोंकी जब स्वभावसे स्थिति बतायी गयी है तो इसमे यह भी समझ लेना चाहिए कि अपने अर्थात् सत्त्वके आश्रयभूत शब्द यहां जैसे शब्द क्षणिक है सत्त्व होनेसे, इस अनुमान प्रयोगमें शब्दादिककी अपेक्षासे सत्त्वादिकका धर्म रूपमे और अपने धर्मकी अपेक्षासे धर्मत्व रूपसे माननेकी बात अव्यवस्थाकारी होनेसे युक्त नहीं है यह बात सिद्ध हो जाती है। परमार्थमे धर्म और धर्मी स्वभाव यदि न माना जाय तो परकी अपेक्षासे भी धर्म धर्मी भाव नहीं बन सकता है। शंकाकारका जो यह पक्ष है कि धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी है तो धर्म धर्मी आपेक्षिक है। जो धर्म धर्मी आपेक्षिक है यह बात भी सब

बनेगी जब कि वहाँ धर्म धर्मी होनेका स्वभाव विशेष पड़ा हो । अन्यथा तो घटपट अपेक्षासे कुछका कुछ सिद्ध बना दिया जायगा, पृथक्भूत घटपट पदार्थोंमें भी धर्म धर्मी की आपेक्षिकी सिद्धि कह दी जाय । आखिर आपेक्षिकी सिद्धि भी तो कहाँ होगी, कहाँ न होगी यह भी तो देखना होगा और वह सब धर्म धर्मी होनेके स्वभाव विशेष की समझपर होगा तो धर्म धर्मी भाव नही बन सकता । और फिर दूसरी बात यह है कि धर्म तो अनन्त है और उसका अपेक्षावान है वह भी अपर्यन्त है अर्थात् अनन्त है । अन्यथा अर्थात् सभी धर्म धर्मीको स्वतः सिद्ध बनाया जाय तो जिसको धर्म धर्मी मान रहे हैं उनकी व्यवस्था नही हो सकती । आपत्ति आयगी, फिर तो भिन्न भिन्न किन्ही भी पदार्थोंमें धर्म धर्मी मान लेनेकी व्यवस्था बना ली जायगी । इस कारण आपेक्षकी ही है । ऐसा एकान्त संगत नही बनता है।

अनापेक्षिकी सिद्धिका एकान्त करने वाले दार्शनिकका आशय—अब शंकाकार नैयायिक कहता है कि धर्म और धर्मीकी तो सर्वथा अनापेक्षिकी सिद्ध है । जब आपेक्षिकी सिद्धिमे दोष आ रहा है तब अनापेक्षिकी सिद्धि मान लीजिए और अनुमान प्रयोगसे भी सिद्ध होता है कि धर्म धर्मी आदिक सर्व पदार्थोंकी सिद्धि अनापेक्षिकी होती है । इस विषयमें यह अनुमान प्रयोग है कि धर्म और धर्मीकी सर्वथा अनापेक्षकी सिद्धि है । क्योंकि प्रतिनियत बुद्धिका विषय होनेसे । यह धर्म है यह धर्मी है इस तरह जो प्रतिनियत ज्ञान चल रहा है उसके वे विषय बन रहे हैं याने धर्मके बारेमे ही यह बुद्धि चलती है कि यह धर्म है । धर्मीके प्रति ही यह ज्ञान बनता है कि यह धर्मी है । तो यो प्रतिनियत बुद्धिका विषयभूत होनेसे धर्म और धर्मीकी सिद्धि सर्वथा अनापेक्षिकी है यह सिद्ध होता है । जैसे कि नीलादिक स्वरूप । नील और नील स्वरूपका अनापेक्षिक प्रसाधन माना है, अर्थात् इसकी सिद्धि घटपट पदार्थोंमें भी धर्म धर्मीकी आपेक्षिकी सिद्धि कह दी जाय । आखिर आपेक्षिकी सिद्धि भी तो कहाँ होगी, कहाँ न होगी यह भी तो देखना होगा और वह सब धर्म धर्मी होनेके स्वभाव विशेषकी समझपर होगा, तो धर्म धर्मीका स्वभाव विशेष यदि नही पाया जा रहा तो परकी अपेक्षासे भी धर्म धर्मी भाव नहीं बन सकता । और फिर दूसरी बात यह है कि धर्म तो अनन्त है और उसका जो अपेक्षावान है वह भी अपर्यन्त है अर्थात् अनन्त है अन्यथा अर्थात् सभी धर्म धर्मीको स्वतः सिद्ध न माना जाय, तो जिनको धर्म धर्मी मान रहे हैं उनकी व्यवस्था नही हो सकती, आपत्ति आयगी । फिर तो भिन्न भिन्न किन्ही भी पदार्थोंमें धर्म धर्मी मान लेनेकी व्यवस्था बना ली जायगी । इस कारण आपेक्षिकी सिद्धिका एकान्त समीचीन नही है । धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिकी ही है । ऐसा एकान्त सगत नहीं बनता है । असापेक्षकी मानी है, इसी प्रकार धर्म धर्मीकी भी सिद्धि अनापेक्षकी होती है । यदि सर्वथा अनापेक्षपना न माना जाय धर्म धर्मी आदिक पदार्थोंमे तो उनमे प्रतिनियत बुद्धिका विषयपना नही बन सकता है । यह

धर्म है, यह धर्मी है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूपसे जो उनका प्रतिभास होता है वही यह सिद्ध कर रहा कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि अनापेक्षकी है । अनापेक्ष न माननेपर प्रतिनियत ज्ञान न बन सकेगा । जैसे आकाश पुष्प । वहाँ कोई अनापेक्षिक याने स्व-तत्र सम्व नही है । तो वहाँ वह प्रतिनियत बुद्धिका विषय नही बनता अथवा आकाश पुष्पके सम्बन्धमे कोई प्रतिनियत ज्ञान नही बनता क्योंकि कुछ सत्त्व ही नही । तो वहाँ सर्वथा अनापेक्षिकी सिद्धि नही है जिनके बलपर वह सब बन सके ।

अनापेक्षिकी सिद्धिके एकान्तका निराकरण—अब उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि धर्म धर्मी आदिक पदार्थोंकी सिद्धि जो अनापेक्षिक मानी है सो इस अनापेक्षाके पक्षमे भी अन्वय व्यतिरेक नही बन सकता है । जैसे कि आक्षेपकी सिद्धि माना । मतव्यमे अन्वय व्यतिरेक नही बनता उसी प्रकार अनापेक्षकी सिद्धि मानना, मंतव्यमे अन्वय व्यतिरेक नही बनता, क्योंकि भेदाभेदका विशेष सामान्यका परस्पर अपेक्षात्मकपना है । विशेष सामान्यकी तरह । अन्वयके मायने है सामान्य और व्यतिरेकका अर्थ है विशेषण । ये दोनो परस्पर सापेक्षिक ही व्यवस्थित होते हैं । उनका अनापेक्षिक दोष माननेपर वहाँ सामान्य विशेषता नही रह सकती । अन्यथा प्रतिनियत बुद्धिके विषयभूत पदार्थोंमे प्रतिनियत पदार्थता आ जायगी नील पीत आदिककी तरह जैसे कि नील और पीतके अनापेक्षिक सिद्ध होनेपर, यह नील है, यह पीत है, यह निश्चय नही बनता । मान लो केवल एक नील नील ही पदार्थ रहता, पीतादिक न होते तो उसे नील कौन कह सकता था ? चूंकि पीत आदिक अन्य भेद नही हैं अतएव नील है, हम ऐसा ज्ञात करते हैं । कोई यहाँ आशङ्का करता है कि इस विशेषका यह सामान्य है, इस सामान्यका यह विशेष है; ऐसा प्रतिनियत अन्वय व्यतिरेक बुद्धिका विषय होनेसे उन सामान्य और विशेषने भी सामान्य विशेष रूपता बन जायगी । इस आशङ्काके समाधानमे कहते हैं कि भाई अभेद भेद निरपेक्ष नही हुआ करता । भेद-निरपेक्ष अभेद प्रतिनियत अन्वय बुद्धिका विषयभूत नही है । इसी प्रकार अभेद निर-पेक्ष भेद भी कभी भी प्रतिनियत व्यतिरेक बुद्धिका विषय नही बनता । अभेद शब्दकी सिद्धि भावका अर्थ जानने वाला ही कर सकता है । तो भेद निरपेक्ष अभेदसे अन्वय बुद्धि नही बनती और अभेद निरपेक्ष भेदसे व्यतिरेक बुद्धि नही बनती किसी भी विशेषमे विशेषपना तभी समझा जाता है जब कि कुछ सामान्यपना भी जाना गया हो । इसी प्रकार किसी भी सामान्यमे सामान्यपना तब जाना जाता है जब कुछ विशेष भी समझा गया हो, अन्यथा एक व्यक्तिमे भी और उसके पहिले देखनेके सम्बन्धमें अन्वय और व्यतिरेक बुद्धि हो जाना चाहिए, पर ऐसा कहाँ है ? तब अन्वय व्यतिरेक बुद्धिका विषय आपेक्षिक सिद्ध होनेसे जो हेतु दिया है शंकाकारने कि ये सब पदार्थ अनापेक्षक हैं, इसकी सिद्धि अनापेक्षकी है, प्रतिनियत बुद्धिका विषय होनेसे । सो यह हेतु विरुद्ध बन जाता है अर्थात् प्रतिनियत बुद्धिका विषय होनेसे । शंकाकार तो यह

सिद्ध करना चाहता था कि इन पदार्थोंकी सिद्धि अनापेक्षकी है । अतः यह हेतु विरुद्ध दोषसे दूषित है । जो प्रतिनियत बाधक विषयभूत हो, वह कथञ्चित् आपेक्षिकपनेसे व्याप्त है । प्रत्यक्ष बुद्धिका प्रतिभासमान होने वाले दूर निकट पदार्थोंकी तरह । जैसे दूर और निकटमें जो प्रत्यक्ष बुद्धिमें प्रतिभासमान होता है वह कथंचित् आपेक्षकपनेसे व्याप्त है इस कारणसे आपेक्षक और अनापेक्षकके दोनों एकान्त घटित नहीं होते । जिन दार्शनिकोंका यह मन्तव्य है कि धर्म और धर्मीकी व्यवस्था आपेक्षकी है, यह मन्तव्य भी दूषित है और जिन दार्शनिकोंका यह भाव है कि धर्म और धर्मीकी सिद्धि अनापेक्षकी है ये दोनों मन्तव्य भी दूषित हैं । ये दोनों एकान्त घटित नहीं होते । अन्यथा इस एकान्तके माननेपर वस्तुकी व्यवस्था न बन सकेगी ।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७४॥

आपेक्षिकी अनापेक्षिकी सिद्धिके उभयैकान्तका निराकरण—जब अपेक्षाका एकान्त और अनापेक्षाका एकान्त सिद्ध न हो सका तो यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि तब यहाँ उभय एकान्त मान लीजिए अर्थात् अपेक्ष एकान्त भी है और अनापेक्ष एकान्त भी है । इसके उत्तरमें कहते हैं कि जो दार्शनिक स्याद्वाद न्यायसे विद्वेष रखते हैं अर्थात् स्याद्वाद नीतिका अनुसरण नहीं करते हैं उनके यहाँ इन दोनों एकान्तोंका विरोध है इस कारण उभय एकान्त भी सिद्ध नहीं होता । हाँ स्याद्वाद नीतिका अनुसरण यदि कर लिया जाय, यहाँ दृष्टि अपेक्षा समझ ली जाय तो आपेक्षिकपना और अनापेक्षिकपना दोनों सिद्ध हो जाते हैं । सो इस नीतिके अनुसरणमें उसको एकान्त न कहा जा सकेगा । तो जो स्याद्वाद नीतिका आश्रय नहीं करते हैं उनके यहाँ उभय एकान्त सिद्ध नहीं होते । कोई लोग कहते हैं कि सर्व कुछ सत् ही है असत् कुछ होता ही नहीं है । अर्थात् असत्में कार्य नहीं बनता । जो जो भी कार्य होते हैं वे सब पहिलेसे सत् हैं । तो कोई यह कहते हैं कि दुनियामें कोई भी पदार्थ पहिलेसे सत् नहीं होता । जो भी पदार्थ उत्पन्न होता है वह असत् ही उत्पन्न होता है । तो जैसे इन दोनों एकान्तोंमें विरोध है अतः ये सिद्ध नहीं होते । इसी प्रकार अपेक्षा एकान्त और अनापेक्षा एकान्तमें विरोध है । अतः ये भी सिद्ध नहीं होते ।

आपेक्षिकी व अनापेक्षिकी सिद्धिके सम्बन्धमें अवाच्यतैकान्तका निराकरण—अब चौथा शंकाकार यह कहता है कि जब अपेक्षा एकान्त न बना और अनपेक्षाकान्त न बना तथा उभय एकान्त भी न बना तब अवाच्यताका एकान्त मान लिया जाय अर्थात् इस प्रसंगमें वस्तु सर्वथा अवक्तव्य है । इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह अवाच्यताका एकान्त भी नहीं बनाया जा सकता । क्योंकि उसमें स्ववचन विरोध है । अवक्तव्यताके एकान्तका निराकरण पहिले अनेक बार

कर लिया जा चुका है इस कारण यहाँ विशेषसे अब क्या प्रयोजन है? समझ लेना चाहिए कि जैसे सत्त्व और असत्त्व रूपसे अवाच्यताका एकान्त पहिले निराकृत किया गया है विस्तारसे, उसी पद्धतिमे यहाँ भी समझ लेना चाहिए कि अपेक्षैकान्त ये सर्वथा अवक्तव्य हैं। ऐसा अवक्तव्यताका एकान्त नही कहा जा सकता। आखिर यहाँ भी इतना तो मानना ही होगा कि यह अवक्तव्य है इस रूपसे वक्तव्य तो है। यो ये चारो प्रकारके एकान्त युक्तिसे संगत नही है। इस परिच्छेदमे उक्त प्रकारसे कथञ्चित आपेक्षिकपना और कथञ्चित अनापेक्षिकपनाका अनेकान्त इस सामर्थ्यसे ही सिद्ध है कि जब आपेक्षिक एकान्तका निराकरण कर दिया और अनापेक्षिक एकान्तको निराकरण कर दिया इस निराकरणमे ही यह सिद्ध होता है कि इस सम्बन्धमे अनेकान्त है। स्याद्वाद विधिसे ही निर्णय है, ऐसा सिद्ध होनेपर भी किन्हीं पुरुषोंको यदि कुछ आशका है, उनमे उनको हठ है तो उनका निराकरण करनेके लिए पुन समन्तभद्राचार्य कहते है।

> धर्मधर्म्यविनाभावः सिध्यत्यन्योन्यवीक्षया ।
> न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥७५॥

स्वरूपकी दृष्टिसे अनापेक्षिकी सिद्धि व व्यवहारकी दृष्टिसे आपेक्षिकी सिद्धि—धर्म और धर्मीका अविनाभावी एक दूसरेकी अपेक्षासे सिद्ध होता है परन्तु स्वरूप अपेक्षासे सिद्ध नही होता। वह तो स्वत ही है। जैसे कारकके अंग और ज्ञापकके अंग इनमे कारकपनेकी बात तो स्वतन्त्रतासे है और ज्ञापकके सम्बन्ध की बात परस्पर अपेक्षासे है और ज्ञापकके सम्बन्धका बात परस्पर अपेक्षासे है। धर्म और धर्मीका अविनाभाव है और वह परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षासे ही सिद्ध होता है परन्तु स्वरूप एक दूसरेकी अपेक्षासे सिद्ध नही किया जाता क्योकि स्वरूप तो पहिले से ही सिद्ध होता है। स्वत सिद्ध वस्तुमे धर्म धर्मीका निर्णय किया जाता है। धर्म और धर्मीका स्वरूप स्वत ही सिद्ध है सामान्य विशेषकी तरह: जैसे सामान्य स्वत सिद्ध स्वरूप है पर जाना जाता है भेदकी अपेक्षा रखकर अन्वय बुद्धिसे इस प्रकार विशेष भी स्वत सिद्ध स्वरूप है, किन्तु वह जाना जाता है सामान्यकी अपेक्षा रखने वाले व्यतिरेकके ज्ञानमे अर्थात् विशेषका परिज्ञान होता है व्यतिरेकसे। यह इससे जुदा है इस तरहकी समझसे विशेषका परिचय होता है। लेकिन यह व्यतिरेक सामान्यकी अपेक्षा रखता हुआ ही रहता है। इसी प्रकार सामान्य जाना तो जाता है अन्वय बुद्धिसे परन्तु यह अन्वय व्यतिरेककी अपेक्षा रखकर ही रह पाता है। केवल सामान्य विशेषका ही स्वलक्षण अपेक्षित हो, परस्पर अविनाभाव रूप हो सो ही नही है किन्तु धर्म और धर्मीका स्वलक्षण अपेक्षित हो, परस्पर अविनाभाव रूप हो सो ही नही है किन्तु धर्म और धर्मीका स्वलक्षण भी स्वत सिद्ध है। गुण गुणी आदिकका भी स्वरूप स्वतः सिद्ध है। उन सबका अपना निज निज स्वरूप है। कर्ता कर्म बोध्य

बोधककी तरह। जैसे कारकके अंग हैं कर्ता और कर्म तो ये कर्ता और कर्म स्वरूप तो स्वतः सिद्ध हैं और ज्ञापकके अंग हैं बोध्य बोधक भाव। तो कर्ताका स्वरूप कर्मकी अपेक्षा रखकर नहीं है। कर्मका स्वरूप कर्ताकी अपेक्षा रखकर नहीं है। जैसे एक वाक्य बोला कि राम पुस्तक पढ़ रहा है तो कर्ता यहाँ राम है और कर्म है पुस्तक। तो रामका अस्तित्व पुस्तककी अपेक्षा नहीं है। पुस्तकका अस्तित्व रामकी अपेक्षासे नहीं है। यदि कर्ता और कर्म एक दूसरेकी अपेक्षामें बन जाय तो दोनोंका सत्त्व न रहेगा, पर कर्तृत्वका व्यवहार परस्पर अनपेक्ष नहीं है। इस वाक्यमें राम कर्ता है, यह जब जाना गया कि पुस्तक कार्य है और क्रिया भी समझी गई पुस्तक कर्म है यह जाना गया कि इस पुस्तकका जो कुछ करना है उसका करने वाला राम है। तो रामका व्यवहार और कर्मका व्यवहार तो परस्परकी अपेक्षासे है मगर कर्ताका स्वरूप और कर्मका स्वरूप परस्परकी अपेक्षासे नहीं है। कर्तृत्वपनका निश्चय तब ही होता है जब कर्मका निश्चय होता है। कर्मपनेका निश्चय तब होता है जब कर्ताका ज्ञान होता है। इस प्रकरणसे बोध्य बोधकका प्रमेय प्रमाणका स्वरूप स्वतः सिद्ध है परन्तु ज्ञाप्य ज्ञापकका व्यवहार परस्परकी अपेक्षासे सिद्ध है यह कहा गया उसी प्रकार समस्त धर्मी और धर्ममें यही प्रक्रिया लगाना चाहिए।

आपेक्षिकी सिद्धि व अनापेक्षिकी सिद्धिके सम्बन्धमें सप्तभङ्गी प्रक्रिया

उदाहरणके रूपमें यहाँ कुछ बातें बतायी गई हैं लेकिन इसी पद्धतिसे जगतमें जितने धर्मभूत पदार्थ हैं और धर्मीभूत पदार्थ हैं सबमें यही स्याद्वाद नीतिसे आपेक्षिक और अनापेक्षिकताका परिचय कर लेना चाहिए। सभी पदार्थ व्यवहार दृष्टिसे तो आपेक्षिक हैं परन्तु पूर्व प्रसिद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे अनापेक्षिक हैं। सभी पदार्थ अपनी सत्ता स्वयमेव रखते हैं। अब उनमें यह व्यवहार होना कि यह कर्ता है, यह कर्म है, यह धर्म है, यह धर्मी है, यह सब व्यवहारसे जाना जाता है। तो व्यवहार दृष्टिसे आपेक्षकी सिद्धि है। पूर्व प्रसिद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे अनापेक्षकी सिद्धि है। जब क्रमसे दोनोंकी विवक्षा लगायी जाय तो सिद्धि आपेक्षकी और अनापेक्षकी है। जब दोनों दृष्टियोंसे एक साथ कहने चले तो नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिसे स्यात् अवक्तव्य है अर्थात् दोनों दृष्टियोंकी एक साथ विवक्षा करनेपर अवक्तव्यपना है। तब व्यवहार दृष्टि और एक साथ सहार्पित दृष्टि की जाय तो आपेक्षकी अवक्तव्यता दृष्ट है। इसी प्रकार जब पूर्व प्रसिद्ध स्वरूपकी दृष्टि और सह विवक्षाकी दृष्टि हो तो पदार्थ अनापेक्षकी और अवक्तव्य सिद्धि वाला है। जब क्रमसे दोनों ही दृष्ट हुए और युगपत दोनों दृष्ट हुए तब वे सिद्ध आपेक्षकी अनापेक्षकी और अवक्तव्य होते हैं। इस तरह सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया समस्त पदार्थोंकी सिद्धिके सम्बन्धमें नय विशेषकी विवक्षासे अविरुद्ध रूपसे समझना चाहिए। इस तरह इस प्रकरणमें यह बताया गया है कि पूर्व प्रमाणमें जो वस्तु स्वरूपकी सिद्धि की है वह सब सिद्धि व्यवहारके प्रसंगमें तो आपेक्षकी है, परन्तु

निज निज स्वरूपकी सिद्धिके प्रसंगमे अनापेक्षकी है। इस प्रकरणसे शिक्षा यह मिलती है कि सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूपसे स्वत. सिद्ध है। कोई पदार्थ अपनी सत्ता कायम रखनेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा नही रखता है। भले ही उनका व्यवहार जो अनेक प्रकारसे होता है उसमे अपेक्षा है। तो सत्त्वको स्वतत्र जानकर एक दूसरेसे किसी प्रकार सम्बन्ध नही, अपेक्षा नही, ऐसा समझकर निर्मोहताके लिए प्रेरणा मिलती है और सम्यग्ज्ञानका यही प्रयोजन है कि मोह और अज्ञानका समूल विध्वंस हो जाय।

सिद्धं चेद्धेतुत: सर्वं न प्रत्यक्षादितो गति: ।
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥ ७६ ॥

उपाय तत्त्वकी व्यवस्थाका प्रतिपादन—अब इस परिच्छेदमें उपाय तत्त्व की व्यवस्था की गई है। अब तक उपेय तत्त्वके सम्बंधमे बहुत वर्णन किया गया उपेय तत्त्वका अर्थ है जो पाने योग्य तत्त्व है, समझने योग्य तत्त्व है उसका बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ। आत्मा, सर्वज्ञ लोक, परलोक, वस्तु स्वरूप जो जो कुछ भी करने योग्य, समझने योग्य चिन्तनके योग्य तत्त्व है उसका वर्णन किया गया था। अब उपाय तत्त्वकी व्यवस्था की जा रही है कि वह उपाय तत्त्व पाया किस तरह जाता है ? जैसे जिसने पहिले उपेय धान्यकी व्यवस्था की है, समझा है कि यह धान्य अनाज बोने योग्य बीज है तब वह खेती आदिकमे प्रवृत्ति करता है और इस ही बीजके उपायकी व्यवस्था बनानेका प्रयत्न किया करता है। प्रयोजनके बिना कोई साधारण बुद्धिवाला भी प्रवृत्ति नही करता है। तो मोक्ष आदिक उपाय तत्त्वके लिए जो प्रवृत्ति करते हैं वे किस प्रकार प्रवृत्ति करते है ? उपाय क्या है ? इसकी व्यवस्था इस परिच्छेदमे सक्षेप रूपसे बताई जा रही है। जो मोक्षको चाहने वाले पुरुष हैं, जिनके विवेक बुद्धि प्रकट हुई है, जब वे उपेय मोक्षस्वरूपका निर्णय कर लेते हैं कि मोक्ष और मोक्ष पाने योग्य तत्त्व है, उस ही जीवके शान्ति है, कल्याण है। इस प्रकार मोक्षस्वरूपकी जब व्यवस्था कर चुकते है, निश्चय कर लेते हैं तो ऐसे विवेकी पुरुषोके ही तो मोक्षके उपाय बनानेका व्यापार देखा जाता है। जिन लोगोंने मोक्ष तत्त्वका निश्चय ही नही किया ऐसे चार्वाक नास्तिक आदिक पुरुषोके कहाँ मोक्षके उपायकी व्यवस्था देखी जाती है ? वे तो मोक्षमार्गसे पराँगमुख ही रहते हैं। तब यहाँ यह निर्णय किया जाता है कि मोक्षसे उपायकी व्यवस्था किस प्रकार बनती ? यो इस परिच्छेदमे उपायतत्त्वकी संयुक्तिक व्यवस्था बताई जावेगी।

हेतुसे ही सबकी सिद्धि मानने वाले दार्शनिकोका आशय—इस परिच्छेदके प्रारम्भमे ही यह सुनकर कि उस उपाय तत्त्वकी व्यवस्था बनाना है तो कोई दार्शनिक कहता है कि समस्त उपेय तत्त्व अनुमानसे ही सिद्ध हैं। उपेय तत्त्व कि

प्रकार सिद्ध है ? इस प्रसङ्गमे अनुमानवादी सौगत कहते हैं कि अनुमानसे ही सारे कार्य तत्त्वोंकी सिद्धि होती है प्रत्यक्षसे नही। प्रत्यक्षके होनेपर भी विवाद देखा जाता है इस कारण अनुमानमे ही सब उपेय तत्त्व सिद्ध हैं अर्थात् हेतुसे ही सब स्वरूपकी सिद्धि है। कहा भी है कि जो कुछ युक्तिमें हम नहीं पारहे हैं उसको हम देखकर भी श्रद्धान नहीं करते, ऐसे अभिप्रायके लोग भी पाये जाते हैं। अब अर्थ और अनर्थके विवेचनकी भी बात सुनो! इसका अर्थ क्या है ? और इसका अर्थ यह नही है ? इस तरहका विवेक अनुमानके आधीन है। अर्थ और अनर्थका विवेचन जब अनुमानके आधीन है और उसमे ही कोई करे विवाद तो उसकी व्यवस्थाके लिए लोग हेतुवादकी व्यवस्था बनाया करते हैं। तो अनुमानमे ही वस्तुतः अर्थकी सिद्धि है। औरकी तो बात क्या ? यह प्रत्यक्ष है, यह प्रत्यक्षाभास है, इस प्रमाणकी व्यवस्था भी अनुमानसे होती है। अन्यथा यदि अनुमान बिना, हेतु बिना प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षाभासकी व्यवस्था बना दी जाय तो उसमे संकर व्यतिकर आदिक दोष उत्पन्न होते हैं। याने प्रत्यक्ष कभी अप्रत्यक्ष बन जाय, प्रत्यक्षाभास कोई प्रत्यक्ष बन जाय, इस तरह एक दूसरेमे जाय, इसे संकर दोष कहते हैं और एक ही आधार इन दोनोंका बन जाय ऐसे अनेक दोष आते हैं और प्रत्यक्षाभास इसका अर्थ है, विषय और अनर्थ है विषयाभास इनका विवेचन प्रत्यक्षके आश्रयमे असम्भव है। इस तरह कोई लोग अनुमानसे ही उपेय तत्त्व की सिद्धि है, ऐसा कहते हैं।

हेतुसे ही सर्वसिद्धिके एकान्तके आशयका निराकरण—अब उक्त आरेकाके समाधानमे कहते हैं कि जो लोग हेतुवादसे ही उपेय तत्त्वकी सिद्धि, मानते हैं उनकी प्रत्यक्षसे गति न होगी और तब अनुमान आदिकमे भी गति, न होगी। अर्थात् उनको किसी भी प्रकार परिज्ञान न हो सकेगा। धर्म, साधन, उदाहरण आदिकका अगर प्रत्यक्षसे बोध न माना जाय तो किसीके अनुमान भी प्रवृत्त नही हो सकते। जो दार्शनिक कहते हैं कि उपेय तत्त्वकी सिद्धि हेतुसे है। अनुमानसे है तो वे जब अनुमान बनायेंगे तो उसमें पक्ष हेतु और उदाहरण ये प्रत्यक्षसे सिद्ध होंगे, तभी तो अनुमानकी प्रवृत्ति होगी। जैसे किसीने अनुमान किया कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, जैसे रसोई घर। वहाँ धूम भी है, अग्नि भी, है तो ऐसा अनुमान करने वाले ने पर्वतको प्रत्यक्षसे समझा और धूमको प्रत्यक्षसे समझा और रसोई घरको भी प्रत्यक्षसे समझा था तब यहाँ अनुमानका प्रयोग बन सका है। तो प्रत्यक्षसे कुछ भी परिचय न माननेपर किसीके अनुमान भी प्रवृत्त नही हो सकता है ? यदि कोई कहे कि अन्य अनुमानसे पक्ष साधन और उदाहरणका ज्ञान हो जायगा सो यो अनुमानान्तरसे पक्ष आदिकका ज्ञान माननेपर उस अनुमानमे भी पक्ष साधन उदाहरण पड़े हुए हैं, उनका ज्ञान न हो सका। तब उस दूसरे अनुमानमे आये हुए पक्षादिकके ज्ञान के लिए अन्य तृतीय अनुमान मानना होगा। उस तृतीय अनुमानमे भी पक्ष साधन

उदाहरणमें पाये जाते हैं। उसकी सिद्धिके लिये अन्य अनुमान मानना होगा। इस तरह अनवस्था दोष हो जायगा। इस कारण यह बात सिद्ध है कि कथञ्चित् साक्षात्कार माने बिना, पक्ष, साधन, उदाहरण आदिक इनका प्रत्यक्षसे बोध माने बिना कहीं अनुमान भी नहीं घटाया जा सकता है और फिर शास्त्रोपदेशसे भी प्रयोजन क्या रहा? जब सब कुछ अनुमानमे ही सिद्ध किया जाने लगा तो आगममें शास्त्रोपदेशकी क्या आवश्यकता है? इस तरह प्रत्यक्षसे भी सिद्धि अभ्यस्त विषयमे मान लेनी चाहिए, अर्थात् केवल हेतुसे ही सिद्धि नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष आदिकसे भी ज्ञान होता है यह निर्णय मानना ही चाहिए अन्यथा अर्थात् प्रत्यक्षसे यदि सिद्धि नहीं मानी जाती है तो तब यह ही एकाकार यह अनुमान प्रयोग करता है कि शब्दादिक क्षणिक है तत्त्व होनेसे। तो इस स्वार्थानुमानमे पक्ष तो आया है शब्द और साधन है सत्त्वात् तो पक्ष शब्द और हेतु सत्त्व दोनोका ही परिचय नहीं बन सकता है तो साध्यकी सिद्धि भी कैसे होगी? अर्थात् यह अनुमान किया कि शब्द क्षणमे नष्ट हो जाता है, क्योंकि वह सत् है कोई चीज है। तो अनुमान प्रयोगमे पक्ष और साधनका बोध प्रत्यक्षसे हुए बिना अपमानकी प्रवृत्ति न बनेगी। तो जब स्वय स्वार्थानुमानकी सिद्धि न हुई तो शास्त्रोपदेश क्या है। सब परार्थानुमान रूप है तो शास्त्रोपदेश भी न बन सकेगा। अतः मानना चाहिये कि अनुमानसे ही उपेय तत्त्वकी सिद्धि नहीं किन्तु प्रत्यक्षादिकसे भी उपेय तत्त्वका परिचय होता है।

आगमसे ही सर्व सिद्धिके एकान्तका आशय—कुछ दार्शनिक लोग कहते हैं कि सर्व आगमसे ही सिद्धि होती है। आगमके बिना मणि आदिकका प्रत्यक्ष होनेपर भी यथार्थ निर्णय नहीं बन सकता। जैसे कोई मणि अथवा सोना लाये। अब उस सोनेका यथार्थ निर्णय करना है कि यह वास्तविक सोना है अथवा मिथ्या है तो उसे कसौटीपर घिसते हैं। तो वह घिसना हुआ एक प्रकारका आगम। उससे एक प्रकार का निर्णय किया जाता है कि यह सत्य है। तो प्रत्यक्षसे जान लिया, देख लिया फिर भी उसके पारखी लोग उस स्वर्णादिकको कसौटीपर कसते हैं, उसके बाद उसका फैसला देते हैं। सो इससे सिद्ध है कि सर्वकुछ आगमसे ही निश्चय किया जाता है। इसी प्रकार अनुमानसे भी कोई बात जान ली जाय फिर भी वहाँ आगमकी अपेक्षा होती है। जैसे किसी रोगी पुरुषका रोग और चिकित्सा किए जानेकी बात अनुमानसे भी समझ लिया फिर चिकित्सा आदिक करनेमे वैद्यक शास्त्र आदिक आगमकी अपेक्षा करना होता है। क्या लिखा है वैद्यक शास्त्रमे इस रोगकी दवा क्या बताया है ऋषियोंने इस तरह उस शास्त्रके वाक्योंकी अपेक्षा होती है। इससे सिद्धि है कि कोई यदि यह हठ करे कि फिर तो सब कुछ अनुमानसे ही सिद्ध मान लेना चाहिए जब कि प्रत्यक्ष होनेपर भी स्वर्ण जवाहरात आदिकका यथार्थ निर्णय आगमसे ही होता है, तब फिर वह आगम ही अथवा अनुमान ही मान लेना चाहिए। सो कह रहे हैं कि

अनुमानमें आने हुए पदार्थोंमें भी चिकित्सा आदिकमें आगमकी अपेक्षा की जाती है। और, भी देखिये जिसका पक्ष आगमसे बाधित है ऐसा अनुमान अपने विषयभूत पदार्थों का गमक नहीं होता। जैसे कोई अनुमान करदे ऐसा ही मिथ्या कि ब्राह्मणोंको मदिरापान करना चाहिए, क्योंकि द्रव द्रव्य होनेसे दूधकी तरह। द्रव द्रव्य कहते हैं उसे जो पानी आदिककी तरह बहता हुआ द्रव्य हो। तो दूध द्रव्य है, उसका पान करनेका हुक्म है तो मदिरा भी द्रव द्रव्य है। दूध और पानीकी तरह एक बहता हुआ द्रव्य है। तो वह भी ब्राह्मण पी ले ऐसा अनुमान बनाया गया है। लेकिन इस अनुमानमें बाधा आती है आगमसे शास्त्रमें बताया गया है कि मदिरापान न करना चाहिए। तो जिन बातोंकी अनुमानसे सिद्धि की जाती हो उसमें यदि आगमसे बाधा आती है तो वह अनुमान साधक नहीं कहलाता। इससे भी सिद्ध है कि सर्व कुछ आगमसे ही सिद्ध हुआ करता है। और भी देखिये! ब्रह्म तत्त्वकी सिद्धि तो शास्त्रसे ही होती है। सर्व कुछ एक ब्रह्मरूप है, इस बातको न कोई आँखोंसे जान पाता है न इसका अनुमान किया जाता है। उसका विवेचन शास्त्रोंमें लिखा है, सो आगमसे ही समझते हैं कि परब्रह्मादिक तत्त्व है। प्रत्यक्ष और अनुमान तो अविद्याकी पर्यायोंको जानते हैं। अज्ञानसे जो कुछ बात समझी जा रही है इसको ही प्रत्यक्ष जानता है और अनुमान जानता है, किन्तु आकाशका विषय है सन्मात्र तत्त्व। आत्मतत्त्व, परमात्म तत्त्व। उनमें प्रमाणपनेका व्यवहार आगमसे होता है और शास्त्रोंके उपदेशसे यह निर्बाध प्रसिद्ध है कि सब कुछ वह ब्रह्म है आदिक। सो उस ब्रह्म तत्त्वको न प्रत्यक्ष समझता है न अनुमान समझता है तो आगमका जो विषय है उसे प्रत्यक्ष और अनुमान समझता है। तो आगमका जो विषय है उसे प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं जानता इसलिए आगमकी बातमें प्रत्यक्ष और अनुमानसे बाधा नहीं आ सकती। ऐसा कोई लोग कहते हैं कि सर्व कुछ आगमसे सिद्ध है। प्रत्यक्ष और अनुमान ये सब व्यर्थ हैं।

आगमसे सर्व सिद्धिके एकान्तके आशयका निराकरण—अब उक्त शंका के समाधानमें कहते हैं कि जो लोग केवल आगमसे ही सिद्धि मानते हैं प्रत्यक्ष और अनुमान कुछ भी काम नहीं आते हैं तो ऐसा कहने वालोंके तो विरुद्ध अर्थ विरुद्ध मत भी शास्त्रोपदेशसे सिद्ध हो जायगा। कोई पुरुष मानते हैं कि सर्व पदार्थ नित्य ही हैं और मानते हैं आगमसे ही तो अनित्य मानने वाले पुरुष हैं, आगम तो उनके भी हैं। फिर उनके आगमसे क्षणिकपना क्यों न सिद्ध हो जायगा। क्योंकि आगम बौद्धोंके आगम हैं। सभी लोग अपने अपने शास्त्रोंको समीचीन शास्त्र मानते हैं। तो यदि आगमसे ही पदार्थके प्रमेय तत्त्वकी सिद्धि की जाय तो सभी लोगोंके आगमसे उन उनके सभी मंतव्य सिद्ध हो जायेंगे। तो शंकाकारके विरुद्ध अर्थ और मत भी सिद्ध हो जायेंगे, यहाँ शंकाकार कहता है कि जो सच्चा उपदेश है वहाँ ही तत्त्वकी सिद्धि होती है। तब कैसे विरुद्ध अर्थकी सिद्धि आगमसे हो जायगी। इस शंकाके समाधानमें कहते

है कि ठीक ही कहा है कि सच्चे उपदेशसे तत्त्वकी सिद्धिका कारण तो युक्ति है। यहां पर युक्तिसे ही पदार्थके स्वरूपकी समीचीनताका निर्णय होता है। जो निर्दोष कारणोसे उत्पन्न हुई बाधाओसे रहित हो ऐसी युक्तियोसे ही समीचीनताका बोध होता है। और भी देखिये ये जो समस्त व्यपदेश है वह युक्तिसे निरपेक्ष होकर सही नही माना जा सकता है मगर युक्ति जिसमे न चले उसमे युक्तिकी बात भी नही माना है। और फिर भी इस उपदेशको सही मान लिया जाय तो परस्पर विरुद्ध अर्थ वाले तत्त्वोकी भी सिद्धि हो जायगी। अपौरुषेय आगमसे परब्रह्म तत्त्वकी ही सिद्धि होती और कर्मकाण्ड या ईश्वर आदिक प्रवाहकी सिद्धि नही होती, यह कैसे कहा जा सकता है? क्योकि ऐसा नियम कर सकने वाला कोई उपाय न रहेगा। अर्थात् जो केवल अर्थसे ही सिद्धि मानते हैं उनको विरुद्ध अविरुद्ध सभी तत्त्वोकी सिद्धि माननी होगी।

मात्र आगमसे ही सिद्धि मानने वालोके आगमकी सिद्धिकी भी अशक्यता—और भी देखिये केवल आगमसे ही तत्त्वकी सिद्धि है ऐसी रटन लगाने वाले लोग भला यह बतलाये कि जब स्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षको अप्रमाण मान लिया अर्थात् प्रत्यक्षसे किसी तत्त्वका निर्णय ही नही मानते तो जब शब्दका ही ज्ञान न हो सका तो वैदिक शब्दोका ज्ञान कैसे हो जायगा? और फिर उन वैदिक शब्दोसे अर्थ का निश्चय कैसे कर लिया जायगा? अतः मानना होगा कि आगम मात्रसे उपेय तत्त्वकी सिद्धि नही होती, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण व अनुमान प्रमाणसे भी वस्तुस्वरूप की सिद्धि होती है। अब यदि स्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षको प्रमाण मान लेते हो तो अनुमानके अभावमे अर्थात् यह स्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष है प्रमाण है सम्वादी होनेसे और यह अप्रमाण है विसम्वादी होनेसे। इस तरहका अनुमान यदि नही मानते तो स्रोत्रइंद्रियजन्य ज्ञानमे प्रमाणता है अथवा अप्रमाणता है इसका बोध किस उपायसे होगा? तो अनुमानके अभावमे जब सम्वाद और विसम्वादका निर्णय नही होता तो यह भी निर्णय न बन सकेगा कि यह प्रमाणभूत है और यह अप्रमाण है इस कारण से जो लोग ऐसी हठ करते हैं कि आगम तत्त्वसे ही सर्व सिद्ध होता है उनको यह मान लेना चाहिए कि आगमसे भी तत्त्वकी सिद्धि है और प्रत्यक्ष अनुमानसे भी तत्त्व की सिद्ध है। यदि वे अनुमानसे और प्रत्यक्षसे तत्त्वकी सिद्धि नही मानते हैं, केवल आगमसे ही प्रमाण मानते हैं तो आगमकी भी सिद्धि नही हो सकती। क्योकि यही आगम यही उपदेश प्रमाणभूत है यह निर्णय कैसे किया जायगा? उपदेशमे जो बात कही गई है वह सत्त्व है यह निर्णय तो युक्तियोसे हुआ करता है। अब युक्तियोको प्रमाणभूत मानते नही हो तो ऐसी अप्रमाणभूत युक्तियोसे अथवा आगमसे पदार्थकी सिद्धि न हो सकेगी। अतः यह दूसरा पक्ष भी निराकृत हो जाता है कि जगतमे समस्त तत्वोकी व्यवस्था एक आगमसे ही होती है।

पुरुषोके भी अत्यन्त परोक्ष अर्थमे परोपदेश आगे बिना साध्यके साथ अविनाभाव रखने वाले साधन धर्मकी प्रतिपत्ति नही होती। जो कोई भी पुरुष अनुमान करते है तो जिस साध्यका अनुमान करते है वह अत्यन्त परोक्ष अर्थमे ही है अथवा अत्यन्त परोक्ष किन्ही भी तत्त्वोके सम्बन्धमे कोई अनुमान भी करे तो परोपदेशका सहारा कुछ होता ही है और अनुमान जानने वाले पुरुष भी अभावको या अत्यन्त परोक्ष अर्थको नही जानते अथवा उनके द्वारा भी जो साधन धर्मका ज्ञान होता है कि यह साध्यके साथ अविनाभावी है यह सब भी परोपदेशके बिना नही हो सकता है। व्याप्ति का ज्ञान करना आदिक बाते परोपदेशसे ही लोग प्राप्त करते है यह बात स्पष्ट विदित है। इस कारण ये दोनो ही एकान्त करना युक्त नही है। कोई दार्शनिक मानते हैं कि सर्व कुछ हेतुसे ही जाना जाता है। कोई दार्शनिक जानता है कि सर्व कुछ आगमसे ही जाना जाता है। ये दोनो एकान्त संगत नही हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७७॥

हेतुवाद व प्रमाणवादके उभयेकान्तका निराकरण—अब तक यहाँ दोनो एकान्तोका निराकरण किया है। पहिला एकान्त यह था कि सब कुछ हेतुसे ही जाना जाता है, दूसरा एकान्त यह था कि सब कुछ मात्र आगमसे ही जाना जाता है, इन दोनो एकान्तोका निराकरण होनेपर अब कोई तीसरा शकाकार कहता है कि दोनो एकान्त मान लीजिए। जब एक एक एकान्त माननेमे दोष आया है तब दोनोको स्वीकार कर लीजिए। तो दोष न रहेगा अर्थात् हेतुमे ही सब कुछ जाना जाता है, ये दोनो एकान्त मान लीजिए। इसके उत्तरमे कहते हैं कि दोनो एकान्त परस्परमे विरुद्ध हैं, इस कारण एकमे दोनो एकान्तोका प्रवेश होना असम्भव है। जो स्याद्वाद नीतिमे विद्वेष रखते है वे पुरुष कथञ्चित्के ढङ्गसे हेतुवाद और आगमवादको नही मानते, किन्तु एक ही दृष्टि रखकर उनका एकान्त स्वीकार करते हैं। यदि कथंचित् अर्थात् अपेक्षा लगाकर उन दोनोको मान लिया जाय तो इसमे विरोध नही आता। इस कारणसे हेतुवादसे ही सब कुछ जाना जाता है, आगमवादसे ही सब कुछ जाना जाता है, ये दोनो एकान्त नही सिद्ध होते।

हेतुवाद व आगमवादके सम्बन्धमे अवाच्यतैकान्तका निराकरण—अब चौथा दार्शनिक कहता है कि फिर तो इस प्रसङ्गमे अवाच्य तत्त्व ही मान लेना चाहिए। हेतुवादसे सब परिचय है, आगमसे सब परिचय है, यह सब कुछ नहीं कहा जा सकता। इस कारण यह तो अवक्तव्य ही है, ऐसा एक अवक्तव्यपनेका एकान्त ही स्वीकार करना चाहिए। इस शकाके उत्तरमे कहते है कि पदार्थ युक्तिसे भी वाच्य और आगमसे भी वाच्य नही है, सर्वथा ही अवाच्य है, ऐसा एकान्त तो स्व-

चन बाधित है। इतना तो सामने कहा जा रहा है। शंकाकारकी युक्ति और आगम दोनोंमे तत्त्व अवाच्य है, इन शब्दोमे कहते हुए स्पष्ट दीख रहा है। तो जो पुरुष ऐसा कहते हैं कि तत्त्व अवाच्य ही है, न युक्तियोंसे वाच्य हैं न आगमसे उनके कथनमें अपने आपके वचनमे विरोध आता है। जैसे कोई कहे कि मैं वन्ध्यापुत्र हूं अथवा मैं मौनव्रती हूं, तो उसकी ये सब बातें स्ववचन बाधित हैं। इसी प्रकार कोई कहे कि तत्त्व सर्वथा अवक्तव्य है, तो उसकी ऐसी अवक्तव्यपनेकी बात कहना स्ववचन बाधित है और इस अवाच्यताके एकान्तके निराकरणमे विस्तारपूर्वक पहिलेके प्रकरणमे कहा ही गया है। निष्कर्ष यह समझना कि युक्तिवाद और आगमवादके सम्बन्धमे अवाच्यताका एकान्त भी ठीक नहीं है। इस तरह चार एकान्तोका निराकरण करनेसे कि हेतुसे पदार्थ सिद्ध है, आगमसे पदार्थ सिद्ध है, दोनो एकान्तोंसे पदार्थ सिद्ध है व अवक्तव्यका एकान्त है, इन चार एकान्तोका निराकरण करनेसे यद्यपि यह बात सामर्थ्यसे सिद्ध हो जाती है, युक्तिवाद और आगमवादके सम्बन्धमें स्याद्वाद नीति ही स्पष्ट और पुष्ट है अर्थात् कथञ्चित् अनुमान तत्त्व साधक है, कथञ्चित् आगम तत्त्व साधक है, यह सब सामर्थ्यसे सिद्ध होनेपर भी उसके सम्बन्धमे कुछ भी कोई आशंका रखे तो उस आशंकाको दूर करनेके लिये आचार्यदेव कहते है।

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥७८॥

हेतुसाधित साध्य व आगमसाधित साध्यकी परिस्थितियां—वक्ता यदि अनाप्त है अर्थात् आप्त नहीं हैं तो जो कुछ हेतुसे साध्य होता है याने जो उपेय तत्त्व हेतुसे साध्य करने योग्य है वह हेतुसे साधित हुआ करता है और वक्ताके आप्त होने पर याने सर्वज्ञ आप्त वक्ता हो तब ही तो उनके वाक्यसे जो उपेय तत्त्व साध्य होता है वह आगम साधित होता है। यहां प्रश्न होता है कि वे आप्त और अनाप्त क्या होते हैं कि जिनके होनेपर वचनोंसे साधित साध्य अथवा अर्थ तत्त्व आगमसे साधित होता है और आप्तके न होनेपर हेतुसे जो साध्य होता है वह हेतु साधित होता है, यह विभाग बन सके। इसके लिए आप्त और अनाप्तका स्वरूप समझना आवश्यक है। ऐसा प्रश्न होनेपर उत्तर देते हैं कि जो पुरुष जिस प्रकरणमें अविसम्वादी है वह वहाँ आप्त कहलाता है और उससे भिन्न अर्थात् जो जिस सम्बन्धमे अविसम्वादी नहीं है वह अनाप्त कहलाता है। जो समस्त तत्त्वोके सम्बन्धमे अविसम्वादी है वह सर्वदेशतया आप्त कहलाता है। इस लक्षणके सुननेके पश्चात् यह प्रश्न सामने आता है कि उस अविसम्वादका अर्थ क्या है जिस अविसम्वादसे अविसम्वादकका स्वरूप समझा ... इस प्रश्नका उत्तर यह है कि तत्त्वका प्रतिपादन होनेका नाम अविसम्वाद ... अविसम्वादमें शास्त्रके उपदेशके अर्थका ज्ञान हो रहा है। शास्त्रोपदेश ...न हो रहा है जो कि अबाधित निश्चयरूप है वह साक्षात् अथवा

असाक्षात् रूपसे निर्णीत किया जाता है। साक्षात् ज्ञान तो प्रत्यक्षज्ञान है और असाक्षात्ज्ञान स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ५ प्रकारका है। तो ये सब ज्ञान अर्थज्ञानसे होते है। वास्तवमे तो उन समस्त ज्ञानोका फल है सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय दोषका निराकरण करना। सच्चा ज्ञान जब उदित होता है तो वह इस दोषको दूर करता हुआ ही उदित होता है। जैसे जब सूर्य उदित होता है तो अंधकारको नष्ट करता हुआ ही उदित होता है। परिज्ञानका यह कार्य है कि वह सशय विपर्यय और अनध्यवसाय न रहने दे। ऐसा अविसम्वाद लक्षण जहाँ पाया जाय ऐसा पुरुष अविसम्वादक है और वह ही आप्त कहलाता है, परन्तु जो अनाप्त होता है वह किसी समय विसम्वादक भी कहा जाता है। जो यथार्थ ज्ञानादिक गुण वाला पुरुष है उसके विसम्वादकपना नही बनता है।

आप्त अनाप्तका अनुमान प्रयोग द्वारा निर्णय—आप्त वही कहलाता है जो अविसम्वादक है इसी कारण धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोमे जैमिनी या अन्य कोई वेदान्त कर्ता कोई भी आगम मात्रका आलम्बन रखने वाला आप्त नही कहला सकता, क्योकि धर्मादिक उनके अतीन्द्रिय अर्थोका परिज्ञान नही है, तथागतकी तरह। इस अनुमान प्रयोगमे जो उदाहरण दिया है वह उदाहरण साधन धर्मसे रहित नही है। क्योकि मीमांसक सिद्धान्तमे यह कहा गया है कि तथागतका श्रुतिके अर्थधर्मोका परिज्ञान नही होता तो उन बुद्धादिकका जो धर्मादिक उपदेश है वह केवल व्यामोहसे होता है, ऐसा स्वयं मीमासकोने कहा है। और यह भी हेतु असिद्ध नही है क्योकि जैमिनी अथवा ब्रह्मा आदिककी श्रुत्यर्थका परिज्ञान सर्वथा असम्भव है, ऐसा स्वय स्वीकार करना पडता है शकाकारको क्योकि वह श्रुत्यर्थ परिज्ञान क्या प्रत्यक्ष है या स्रोत्रइन्द्रियजन्य है। याने आगम सम्बन्धित है श्रुतिसे आया हुआ है ये दो विकल्प किए गए है। इनमे प्रथम विकल्प यदि मानते है कि वह प्रत्यक्ष है तो यह बात युक्त नही है, क्योकि वे जैमिनी आदिक सर्वज्ञ नही हैं। क्योकि आगम मात्रका उन्होने आलम्बन किया है। ऐसा असर्वज्ञ जैमिनी आदिकके अतीन्द्रियार्थ ज्ञान नही है। इसका हेतु यह है कि उनके दोष और आवरणके क्षयका अतिशय नही पाया जाता। केवल प्रतिनियत कोई दोषका क्षय हो जाय तो इतने मात्रसे ही धर्म अधर्म आदिक परोक्षभूत अर्थोका साक्षात्कार करना नही बनता। सूक्ष्म आदिक अर्थोका साक्षात्कार करना तो दोष और आवरणके क्षयका अतिशय करनेसे होता है अर्थात् सर्वरूपसे दोष और आवरणका क्षय होता है तो उससे सर्वज्ञता प्रकट होती है। तब प्रतिनियत्त दोष और आवरणके क्षय वाले अर्थात् कुछ साधारण जनोसे विशिष्ट बुद्धि रखने वाले पुरुषोके धर्म अधर्म आदिकका परिज्ञान श्रुतिके अर्थका परिज्ञान साक्षात् नही है, प्रत्यक्ष नही है। तब कोई ऐसा मनमे सोचे कि श्रुतिमे अविसम्वाद होनेसे उन सूक्ष्म आदिक पदार्थोका परिज्ञान हो जायगा सो भी न कहा जा सकेगा। श्रुतिमें

अविसम्वाद है इसमे आगम सम्बन्धी ज्ञानका परिज्ञान कर देना, उन सूक्ष्म आगमिक अर्थोंका परिज्ञान कर देना यह बात यो युक्त नही है कि पहिले श्रुतिकी या अर्थज्ञान की ही बात असिद्ध है।

श्रुतिसे सर्वज्ञताकी अनुपपत्ति—यदि कोई यह माने कि श्रुतिमें सर्वज्ञता प्रकट होती है और सर्वज्ञतामे फिर श्रुतिमे अविसम्वाद सिद्ध होता है तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष उपस्थित होता है। जब श्रुतिका अविसम्वाद सिद्ध हो तब श्रुतिमे सर्वज्ञता प्रकट हो। जब सर्वज्ञता प्रकट हो तो यह श्रुतिका अविसम्वाद समझा जाय। देखिये जिसका सम्वाद प्रसिद्ध नही होता है स्पष्ट परिचय प्रमाणीक परिचय जिसमे सिद्ध न हो ऐसे श्रुतिमे जैमिनी आदिक किसीको भी परमार्थमे परिज्ञान सम्भव नही हो सकता। यदि श्रुतिका सम्वाद सिद्ध न होनेपर भी परमार्थ ज्ञान मान लिया जाय तो जो लोग ऐसा कहते कि एक अगुलीके अग्रभागपर सैकडो हाथी बैठे हैं तो वचनसे भी अपने विषयका ज्ञान सही बन जाना चाहिए। जो जिसका सम्वाद प्रसिद्ध नहीं है ऐसी श्रुतिसे परमार्थका परिज्ञान मानना सगत नही है और परमार्थ वेदीके बिना अर्थात् सर्वज्ञपनेके बिना तत्त्वका प्रतिपादनरूप अविसम्वाद भी नही बनता। सब अन्योन्याश्रय दोष सही ही तो हुआ। इस कारणसे सर्वथा यह एकान्त ग्रहण न किया जा सकेगा कि आगमसे ही सर्व पदार्थोंकी सिद्धि होती है। वहाँ यह ही निर्णय करना होगा कि यदि वक्ता आप्त है तब तो उसके वाक्यसे ही पदार्थ सिद्ध मान लेना चाहिए और यदि वक्ता अनाप्त है तब जो बात हेतुसे साध्य होती है उसे हेतुसे ही साधना चाहिए। इस विषयमे स्याद्वादकी यह तथ्यभूत नीति है और ऐसा देखा ही जा रहा है। जो आगम प्रमाणकी बुद्धिमे अनेक तत्त्वोका निर्णय करते हैं और आगम प्रमाणकी बात पेश करके विरुद्ध तत्त्वोंसे मुख मोडनेका एक पुष्ट उपाय बनाते हैं। इससे सिद्ध है कि आगम भी प्रमाणीक है और हेतु और अनुमान भी प्रमाणीक है और उनकी सिद्धि इन अपेक्षाओंमे अपने अपने विषयमें घटित कर लेना चाहिए। यों एकान्त यह न रहा कि केवल हेतुसे ही अर्थ सिद्धि है अथवा आगमसे ही अर्थ सिद्धि है।

५. श्रुतिके प्रामाण्यकी असिद्धि—यहाँ शंकाकार मीमांसक कहता है कि श्रुतिकी प्रमाणता अविसम्वाद होनेके कारण नही है किन्तु स्वतः ही है अर्थात् आगम स्वयं आगमके द्वारा प्रमाण है। उसमे यह तर्क करना कि विसम्वाद है या नहीं। इसकी आवश्यकता नही है। श्रुतिकी प्रमाणता अविसम्वादसे नही मानी गई है किन्तु स्वतः मानी गई है इसी कारणसे इतरेतराश्रय आदिक दोष यहाँ सम्भव नहीं हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि श्रुतिमे प्रमाणता स्वतः नही हो सकती, क्योंकि श्रुति अचेतन है। जो अचेतन हो उससे प्रमाणता स्वतः नही हुआ करती है घटकी

तरह । जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये स्वय प्रमाणरूप नही हैं क्योकि अचेतन हैं जब घट पर आदिक अचेतन है इसी प्रकार श्रुति भी अचेतन है । अत वह स्वतः प्रमाणभूत नही है शकाकार कहता है कि सन्निकर्ष तो अचेतन है लेकिन उनकी प्रमाणता मानी गई है। नैयायिक सिद्धान्तमे सन्निकर्ष आदिक अचेतन हैं। इसपर भी प्रमाणता मानी गई है तब इस हेतुमे अनेकान्तिक दोष आता है । जो जो अचेतन हो वह स्वत प्रमाण नही होता यह व्याप्ति घटित नही होती । देखिये सन्निकर्ष आदिक अचेतन हैं फिर भी ये प्रमाणभूत माने गए हैं । इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि इस अनुमानमे दिए गए हेतुको सदोष कहना अयुक्त है । सन्निकर्ष आदिकको प्रमाणरूप माना ही नही है, और कदाचित सन्निकर्षकी प्रमाणता मान भी ली जाय क्योकि वह कुछ अविसम्वादी ज्ञानको मानना पडता है तिसपर भी उपचारसे ही प्रमाणता कही जा सकती है। मुख्यरूपसे तो सन्निकर्षमे प्रमाणता नहीं कही जा सकती सन्निकर्ष आदिक अविसम्वादी ज्ञानके कारणभूत है इस कारणसे उपचारसे सन्निकर्षमे प्रमाणताकी सिद्धि मान सकते है फिर भी श्रुतिमे तो उपचारसे भी प्रमाणता माननेमे गुंजाइस नही है, क्योकि श्रुति अविसम्वादी ज्ञानका कारण नही है। अतएव श्रुति उपचार मात्रसे भी प्रमाणभूत नही है । श्रुतिके अर्थज्ञानकी प्रमाणता असिद्ध है । श्रुति अविसम्वादी ज्ञानका कारण नही है, जिससे उपचारसे भी प्रमाण माना जाय यह बात चौथी कारिकाके इस प्रकरणमे विस्तारपूर्वक बतायी गई है ।

आप्तवचनका प्रामाण्यसे सम्बन्ध—आप्तका वचन प्रमाणताके योग्य है, क्योकि आप्त वचन प्रमाणका कारण है और प्रमाणका कार्य है । आप्त वचन प्रमाणकारणका तो यो है कि वह अतीन्द्रिय अर्थके प्रत्यक्षसे आप्त वचनकी उत्पत्ति हुई है । अतएव वह प्रमाण कारणक है अर्थात् प्रमाण है कारण जिसका उसे कहते हैं प्रमाण प्रकारणक । चू कि सर्वज्ञ देवके अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न हुआ अतएव वह प्रमाण कारण है आप्त वचनमे अतएव आप्तवचन प्रमाणरूप है और आप्तवचन प्रमाण कार्यक है अर्थात् आप्त वचनसे प्रमाणकी निष्पत्ति होती है क्योकि वह अतीन्द्रियार्थ विषयक सिद्धान्तकी उत्पत्ति वहीसे हुई है और अतीन्द्रियार्थ विषयक बुद्धिका उत्पादन आप्तवचनसे हुआ है स्वर्ग नरक परमाणु आदिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान इस सर्वज्ञकी परम्परासे हुआ है अतएव आप्तवचन प्रमाण कार्यक है परन्तु यह बात श्रुतिमे सम्भव नही है क्योकि श्रुतिको सर्वथा ही आप्तके द्वारा नही कहा गया माना गया है । स्वयं श्रुतिको प्रमाण मानने वाले मीमासक भी श्रुतिको किसीके द्वारा रचा गया है ऐसा नही मानते । तो सर्वथा आप्तके द्वारा नही कहा गया अतएव श्रुतिमे न प्रमाण कारणकता है न प्रमाण कार्यकपना है ।

उदाहरणपूर्वक श्रुतिके प्रामाण्यका अनिर्णय—जैसे पिटकत्रयमे न प्रमाण

कारणकता है न प्रमाण कार्यकता है। बौद्ध सिद्धान्तमे जो मुख्य विभाग है वह तीन पिकटके रूपमे है—ध्यान, अध्ययन, अनुष्ठान आदिकका प्रतिपादन करने वाले शास्त्र पिकटत्रय कहलाते है। तो पिकटत्रय आदिकमे पौरुषेयता स्वय सौगत आदिकने माना है और वेदवादियोने श्रुतिको अपौरुषेय माना है। उस ही पिटकत्रयकी बात उदाहरण से कही जा रही है। यहाँ शकाकार कहता है कि पिकटत्रयमे तो वक्ताका दोष है; उसके रचने वाले सदोष हैं अतएव उसमे प्रमाणता नही कही जा सकती। पर श्रुतिमे भी वक्ताका दोष नहीं आता, क्योंकि श्रुतिका हम किसीको वक्ता ही नहीं मानते। तो वक्ताका दोष न आनेके कारण श्रुतिमे प्रमाणता हो जाती है। इस कारण पिटकत्रयका दृष्टान्त देकर श्रुतिको अप्रमाण बताना युक्त नही है। इस शङ्काके उत्तरमें पूछते है कि यह शङ्काकार ये विभाग किस तरहसे सिद्ध करेगा कि पिटकत्रयके वक्तामे दोष है इस लिए वह अप्रमाण है और श्रुतिमे वक्ताका दोष नहीं है इस कारण वह प्रमाण है। यदि शङ्काकार यह बात कहे कि पिटकत्रय आदिक पौरुषेय हैं, किसी पुरुषने उन्हे बनाया है, ऐसा स्वय उनके अनुयायी मानते हैं और वेदवादी श्रुतिको अपौरुषेय मानते हैं। इससे यह विभाग बन जायगा कि पिटकत्रयमे तो वक्ताके दोष हैं और श्रुतिमे वक्ताके दोष नही हैं। इस आशङ्काका समाधान करते हुए कहते हैं कि वाह रे शकाकार, अब यह दूसरोके द्वारा माना गया और खुदके द्वारा नहीं माना गया कारण बताकर किसीको पौरुषेय सिद्ध करना, किसीको अपौरुषेय सिद्ध करना, यह व्यवस्था जो बना रहे हैं वह तो हास्यास्पद व्यवस्था है। युक्तियोसे ही व्यवस्था कायम की जा सकती है। केवल मानने मात्रसे व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती। इस ही मानने और न मानने आदिकके द्वारा यह बात कहना कि कर्ताका स्मरण नही हो रहा, दूसरी जगह कर्ताका स्मरण हो सकता है ये सब बातें भी निराकृत हो जाती हैं।

वेदादिमे भी अपने अनुयायियो द्वारा अपनी मान्यताका प्रसङ्ग—यहाँ मीमासक शंकाकार ऐसी व्यवस्था जो बना रहा है कि कर्ताका स्मरण आदिक होना और जिनका कर्ता नही देखा गया उनकी समानता जैसी न होना यह केवल एक मानने मात्रसे व्यवस्था बनायी और पिकटत्रयका स्मरण होना देखे गये कर्ताके समान मानी गई यह बात अपने आपके मानने और न माननेसे न बन जायगी। इस तरह तत्त्वकी व्यवस्था नही बनती है क्योंकि वेद हो अथवा पिकटत्रय हो सभीमें अपने अपने अनुयायियो द्वारा अपनी अपनी मान्यता पडी हुई है। कोई शंकाकार अपनी मानी हुई बातसे तो दूसरेके सिद्धान्तका निराकरण नहीं कर सकता। यदि शंकाकार यह कहे कि पिटकत्रयके तो बुद्ध वक्ता हैं तो यहाँ भी समझ लीजिये कि वेदके ब्रह्मा वक्ता हैं तो प्रश्न और उत्तर कैसे समान न होते जायेंगे ? जैसे पिकटत्रयमे बुद्ध वक्ता है ऐसा सौगत भक्त मानते है, उसी प्रकार वेदमे भी ये काणाद ऋषि अष्टकोका कर्ता

माना है। पौराणिक लोग ब्रह्माको कर्ता मानते हैं। अन्य दार्शनिक कालासुरको वक्ता मानते हैं। तो जैसे पिटकत्रयके बुद्ध वक्ता हैं इसी प्रकार वेदके भी अनेक वक्ता है, ऐसा स्वयं अनुयायिओंने माना है। तब उनमें यह निर्णय करना कि पिटकत्रय आदिक के तो कर्ताका स्मरण हो जाता है, इनका कर्ता और श्रुतिमे कर्ताका स्मरण नही हो सकता, यह विभाग नही किया जा सकता। बहुत बहुत विचार करनेके बाद भी पिटकत्रयको वक्तृत्व अङ्गीकार करनेमे और वेदके अङ्गीकार न करनेसे यह मीमांसक शंकाकार व्यवस्थित होगा, यह कैसे माना जा सकता है? प्रमाणबलसे ही तो कुछ सिद्ध करना चाहिये। श्रुतिके कोई वक्ता नही है यह बात प्रमाणबलसे सिद्ध नही की जा सकती।

श्रुतिके अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि श्रुतिका कोई रचयिता नहीं है यह बात प्रमाणसिद्ध है। प्रमाण है कि वेदका अध्ययन सारा वेदके अध्ययन पूर्वक होता है। अर्थात् जो आज अध्ययन चल रहा है वह परम्परासे अध्ययनपूर्वक अध्ययन आ रहा है, क्योंकि वह वेदाध्ययन शब्दसे वाच्य है। जैसे आजका अध्ययन है तो वह पहिलेसे अध्ययनपूर्वक चला आ रहा है इस कारणसे वेदमे वक्ताका अभाव है यह बात प्रमाणसे सिद्ध होती है। वेदका अध्ययन पुरातन अध्ययन पूर्वक चला आ रहा है, उसका कर्ता कोई नही है। तो देखिये! अब वेदके वक्ताका प्रमाणसे अभाव बना। केवल माननेमात्रसे न मान लो। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि इसी हेतुको देकर तो पिटकत्रय आदिकमे भी वक्ताका अभाव बताया जा सकता है। वहाँ भी यह कहा जा सकता है कि पिटकत्रयका भी अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला आरहा है उसका भी कोई रचयिता नही है, वेदाध्ययनकी तरह। यो सभी लोगोंने अपने अपने सिद्धान्तको अध्ययनपूर्वक बताया और इस शंकाकारको भी अध्ययनपूर्वक ही कहनेको मजबूर करे तो ऐसा बोलनेमे कहीं मुख टेढा न हो जायगा। जैसे अन्य लोग कहते हैं कि वेदका अध्ययन वेदाध्ययन पूर्वक है। उसका रचयिता कोई नही है। इसी तरह सभीके लिए भी यह कहा जा सकता है कि आगमका अध्ययन अध्ययनपूर्वक है। उसका भी रचयिता कोई नही है। उसकी भी प्रमाणता स्वतः ही है। दूसरी बात यह है कि यह कहना कि अध्ययन शब्द द्वारा वाच्य है इसलिए यह अध्ययन पहिले अध्ययनपूर्वक है तो इस हेतुमे अनेकांतिक दोष आता है। देखो पिटकत्रय और भी आधुनिक कार्य है, इसका वक्ता विद्यमान है, फिर भी यह अध्ययन शब्द द्वारा वाच्य कहलाता है। इस कारण यह भी अकर्तृक बन जायगा। यो अनेकान्तिक दोष आता है। शंकाकार कहता है कि हम अध्ययनके साथ वेद विशेषण और लगाये हुए हैं कि वेदाध्ययन शब्दसे वाच्य है। यो लगा देंगे, तो यहाँ वेदाध्ययन वाच्यपना पिटकत्रयमे सम्भव है नही, इस कारण अनेकान्तिक दोष न होगा। इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि यो तो हम अध्ययनके साथ पिटकत्रय

आदिक दोष लगा लेंगे, जिसका यह अर्थ होगा कि इस पिटकत्रयका अध्ययन अध्ययन पूर्वक है। पिटकत्रयका अध्ययन होनेसे जब इस हेतुका वेदादिकमें भी अभाव है अतएव यह अनुमान भी हो जायगा इसमे कोई व्यभिचार दोष न आयगा और इस तरह जब यह अनुमान भी दोषरहित हो गया कि वेदकी तरह जो अवेद हैं, पिटकत्रयादिक हैं उनमे भी अपौरुषेयपन और प्रमेयका कारणपना होना मीमांसकोंके यहाँ प्रवर्तक बन जायगा अर्थात् पिटकत्रयके अनुष्ठानमें ज्ञानके अनुष्ठानमें अथवा ज्ञानमूर्तिकी वदनारूपमे सभीमे फिर अवेदको भी प्रमाणता आ जायगी। और, यदि नहीं आती है तो वेदमें भी प्रमाणता न रहेगी, क्योंकि सर्व कुछ प्रश्न समाधान दोनों जगह एक समान होते हैं।

सर्व आगमोंमे रचनाशैली व मंत्रादिशक्तिकी समानता हो सकनेसे श्रुतिकी अविशेषता—यदि शंकाकार यह कहे कि वेदमें तो कठिन कठिन बोलना, कठिन सुनना ये अतिशय पाये जाते हैं इस कारण अन्य ग्रन्थोंको व वेदको एक समान कैसे कहा जा रहा है? तो इसका समाधान यह है कि कठिन बोलना, कठिन सुनना यह सब जगह किया जा सकता है। इन अतिशयोंसे यदि प्रमाणता मानी जाती है तो यह अतिशय सभी जगह किया जा सकता है। परोक्ष मंत्र शक्ति भी अन्य सब जगह देखी जाती है। शंकाकार यह कहता कि वेदमें परोक्ष मंत्र शक्ति है, इसमे भी अतिशय विशेष है। तो यह बात भी सब जगह पायी जा सकती है। केवल वेदोंके मन्त्रोंमें शक्ति नहीं होती यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस प्रकारका निर्णय रखनेमें प्रमाणसे बाधा आती है। शंकाकार कहता है कि वैदिक ही मंत्र दूसरी जगह उपयुक्त हुए हैं, सो वैदिक मंत्र ही शक्तिमान हैं। इस शंकाके समाधानमे, कहते हैं कि, जितने भी वेदमें प्रयुक्त मंत्र हैं वे सब जैन आगममें पाये हुए हैं और जैन आगममें विद्यानुवाद नामक दशम पूर्वमे बहुत प्रकारके मन्त्रोंकी उपलब्धि है। जैसे कि समुद्र आदिक स्थानोंमें रत्नोंकी उत्पत्ति होती है फिर चाहे वे कितने ही रत्न राज घरानेमें पहुंच जायें लेकिन राज घरानेमे जो पहुंचे हैं वे कहीं राज घराने मे उत्पन्न हुए तो नहीं हैं। उत्पत्ति तो उन रत्नोंकी समुद्र या किसी विशिष्ट खानमे होती है। जितने भी ये रत्न लाये गए वे समुद्र अथवा खान आदिकसे ही तो लाये गए हैं। उन खान अथवा समुद्रादिकमे ही अनेक रत्नोंकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार समस्त आगमका एक देश है विद्यानुवाद पूर्व तो उस दशम पूर्वसे मन्त्रकी उत्पत्ति हुई है और उस विद्यानुवादसे ही सरल मंत्र उद्भूत हुए हैं, और विस्तारको प्राप्त हुए हैं। वेद और उस आगमका एक देश कथन है। तो विद्यानुवादका एक देश मन्त्रोंका जो वेद है उससे रत्नोंका उद्भव नहीं है किन्तु विद्यानुवाद नामक दशम पूर्वमे उन समस्त मंत्रोंका उद्भव है।

अनादि और पौरुषेयत्वकी अप्रामाण्यमें अकारणता—शंकाकार

कहता है कि वेद अनादि है और अपौरुषेय है इस कारणसे वेद प्रयुक्त मंत्रमे ही अविसम्वादकपना हो सकता है। अन्य जगह जो मंत्र है वे अविसम्वादक नहीं है। इस शकाके उत्तरमें कहते है कि ऐसा भाव रखना अयुक्त है, क्योंकि वेद प्रयुक्त मंत्रोमे ही अविसम्वादकपना है यह बात असिद्ध है और वेद अनादि है अपौरुषेय है, यह भी असिद्ध है और मानो वेदकी अनादिता सिद्ध हो जाय अथवा वह पौरुषेय नही है यह बात सिद्ध हो जाय फिर भी वह अविसम्वादक है यह बात कैसे निश्चयमे लायी जा सकेगी? म्लेच्छ जो द्वीपान्तरके निवास हैं उनका व्यवहार है, कोई अटपट, जैसे मानो विवाह कर देना आदिक नास्तिकपनेका व्यवहार है। तो म्लेच्छ व्यवहार भी अनादि ही तो है याते नीच पुरुषोमे कुल क्रमसे खोटी बात चली आ रही है तो अनादि हीसे आई हुई कोई प्रमाणभूत हो जाय सो तो बात नही बनती। अथवा वह व्यवहार अपौरुषेय भी है। किसीने किसी दिन रचा हो कानून बनाया हो, फिर फैलाया हो ऐसा तो नही है। तो नास्तिक आदिकका व्यवहार अनादि भी है अपौरुषेय भी है वह अविसम्वादक नही है। सत्य नही है, तो कोई अपनी श्रुतिको अनादि मान ले, अपौरुषेय मान ले तो इन दोनो बातोसे अविसम्वादकता नही आती। इससे वेदका एक देशरूप कुछ भी मंत्र जैसा कि बताया गया हो जो कि स्वयं अप्रमाण रूप से माना गया है अनादि और अपौरुषेय होनेसे वह प्रमाणभूत नही हो जाता अतएव अनादिपना और अपौरुषेयपना यह हेतु अनेकान्तिक दोषसे युक्त है।

निर्दोष कारणसे उत्पन्न आगममे प्रामाण्यकी चर्चा—और भी सुनो। ये मीमासक जन मानते हैं कि वेद निर्दोष कारणसे उत्पन्न हुए हैं। तो जब कारणमे दोष निवृत्त हो गए तब कार्यमे दोष भी न रहे यही तो उनकी एक कल्पना बनी। तो इस कल्पनासे पौरुषेय वचनमे दोषनिवृत्ति हो जाती है। कोई आगम पौरुषेय हो, उसके द्वारा प्रणीत हो तो उसमे फिर दोष काहेका रहा? जो कोई आगमका प्रणेता है वह निर्दोष भी तो हो सकता है, फिर आगमकी प्रमाणता मनानेके लिए अपौरुषेयपनेपर जोर देना यह युक्त नही। अपौरुषेय होकर प्रमाण भी हो सकता और अप्रमाण भी। आगमका कर्ता निर्दोष है तो उससे प्रमाणता आती है। इस बातको पहिली कारिकाओमे सिद्ध किया गया है कि कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि जिनमे दोष और आवरण रंचमात्र भी नही रहते। उस आगमके अध्ययन करने वाले, व्याख्यान करने वाले और सुनने वाले तो रागादिमान हो सकते हैं। मीमासकोने भी किसी वीतराग को माना नही है। मीमासक जनोके सिद्धान्तमे, कोई भी आत्मा वीतराग नही हो सकता। तो लो वेदके अध्ययन करने वाले व्याख्यान करने वाले तथा श्रवण करने वाले जब वीतराग हैं ही नही, रागादिमान हैं तो रागादिमान होनेसे उनकी व्याख्यायें, उनके आशयमे मिथ्यापन तो आ सकता है। वीतरागके आगममे सर्वथा अपौरुषेयत्व का विरोध होनेसे जो पौरुषेय वचन है, जो वीतरागके द्वारा कहे गये हैं, उनमे

विरोध नहीं होता। और कथञ्चित् पौरुषेय है मायने साधारण जनोंके द्वारा बनाए नहीं हैं इसलिये तो अपौरुषेय है और वीतराग सर्वज्ञ महा आत्माके द्वारा प्रणीत हैं इस कारण पौरुषेय हैं। तो कथञ्चित् पौरुषेय उस वीतरागके द्वारा प्रणीत हो इसका विरोध नहीं आता, इस कारण स्याद्वाद नीतिका अनुसरण करने वालोंका चित्त निःशंक रहता है। कोई यह भी शंका नहीं कर सकता कि देशकाल स्वभाव इन तीनोंसे जो दूर है ऐसा जो वीतराग है, अर्थात् जो इस प्रदेशमें नहीं, इस कालमें नहीं और हम जैसे आत्माओंके स्वभावमें नहीं, ऐसे वीतरागका निर्णय कैसे हो और उसका निर्णय न होनेसे यह कैसे कहा जा सकेगा कि आगममें वीतरागके द्वारा कहा गया है। ऐसी आशंका न रखना चाहिए जो देश, काल, स्वभावसे दूर भी हो उसके भी निर्णयका उपाय बताया गया है। वचनोंमें जो अविसम्वादकता है, ये वचन सत्य हैं, उनमें जो सत्यताकी झलक है वह वक्ताके गुणोंकी अपेक्षासे है। जैसे चक्षु इंद्रियजन्य ज्ञानमें जो अविसम्वादकता है तो नेत्रमें गुण है उसकी अपेक्षासे है और जितने जो विसम्वाद होते हैं वे वक्ताके दोषके संसर्गसे होते हैं। जैसे कि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानका जो अविसम्वादपना है तो ज्ञाताके गुणकी अपेक्षा रख कर है। ज्ञाता सम्यग्दृष्टि है, समवेग वैराग्यवान है तो उसके ज्ञानमें अविसम्वादकता है। और, ज्ञाता पुरुषका दोष मिथ्यादर्शन आदिककी अपेक्षा की जाय तो ज्ञानमें विसम्वादकता उत्पन्न होती है। इसी तरह वक्ताके गुण हैं यथार्थज्ञान करना आदिक। उसकी अपेक्षासे तो ज्ञानमें सम्वादकता है, सच्चाई है, निर्णयकपना है और यदि दोष मिथ्याज्ञान आदिक की अपेक्षा किया जाय तो उसमें विसम्वादकता है। यह बात भली प्रकारसे महाशास्त्र में वर्णित की गई है।

आप्तवचनोंमें सम्वादकताका निर्णय—जब वक्ताके गुणकी अपेक्षासे सम्वादकपना निश्चित होता है तो अनाप्त वचनका अर्थज्ञान नहीं हो सकता है। अधरूपके दर्शनकी तरह। जैसे कि जो जन्मसे ही अंधपुरुष हो वह दूसरेके लिए रूप दिखानेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार जो पुरुष आप्त नहीं है वह भी अर्थको तथ्यको जनानेके लिए समर्थ नहीं है। यदि अनाप्त पुरुष सत्य पदार्थोंको रहस्यको जनानेके लिए समर्थ हो जाय तो प्रो गलीमें फिरने वाला कोई पुरुष भी सत्य और यथार्थका जनाने वाला हो बैठेगा। तो सम्वादकवचन वही कहलाते हैं जो वक्ताके गुणकी अपेक्षासे हुए हों। यह बात सिद्ध होनेपर अपौरुषेय वचन हो, गुणवान वक्ताके द्वारा रचित हो तो उनमें कारण दोष न होनेसे निर्दोषता है। अपौरुषेय वचन हो या पौरुषेय वचन हो दोनोंमें अन्य कोई और विशेषता सम्भव नहीं हो सकती। यह कहना होगा कि कारणमें दोष न हो तो उनका निर्दोष वचन कहलायगा। यद्यपि पौरुषेय वचन और अपौरुषेय वचन दोनों ही शब्द निर्मित हैं, उन वचनोंकी समानता है फिर भी जो वचन युक्तिसे युक्त हैं, नय प्रमाणात्मक नीतिसे परखे जा चुके हैं, प्रमाणित हुए हैं ऐसे

ही वचन समझनेके लिए अथवा दूसरोको समझानेके लिए शक्य हो सकते हैं। सो वे वचन कथञ्चित् पौरुषेय ही है, सर्वथा अपौरुषेय नहीं हैं। सर्वथा अपौरुषेय वचनोमे युक्तिसगतता न होनेसे उन युक्तियोमे प्रमाणाभास माना गया है। तो उनमें अपौरुषेय पना होनेसे वेदमे जो युक्तियुक्त वचन हैं वे ठीक समझने और समझानेके लिए शक्य हैं। जैसे अनेक वचन ऐसे हैं कि एक वर्ष १२ माह होता है अथवा शीतका औषधि अग्नि है आदिक जो वेदके वचन युक्तिसगत हो वे तो मान लिए जायेगे, पर अग्नि होत्रादिक वाक्य यहाँ बोलने और समझने वालेको समझानेमे समर्थ नही हैं, क्योकि उन वाक्योंका युक्तिसे युक्तिपना नही घटित होता।

आप्तवचनमें हेतुवाद व आज्ञा वाद दोनो विधियोंमें प्रामाण्य—यह आप्त पुरुषका वचन है ऐसा सिद्ध होनेपर वहाँ जैसे हेतुवाद होना प्रमाण है उसी प्रकार आज्ञावादभी प्रमाण है, किन्तु उस हेतुवाद और आज्ञावाद दोनों ही वचनोमे आप्त वचनका अविरोध हो सकता है। शास्त्रमे आगममे जो सिद्धान्त लिखा है वह युक्तिसे समर्थित है यह भी सम्भव है। तो वहाँ हेतुवाद और आज्ञावाद दोनों प्रकारके वचनोका विरोध नही हो सकता है। यहाँ कोई यह शङ्का चित्तमे न रखे कि अपौरुषेय की तरह आप्तका शासन भी व्यवस्थासे परे है। यह आशङ्का भी न हो सकेगी कि यहाँ आप्त कौन है? यही तो जाननेमे आना कठिन हो रहा है। वीतराग, पुरुषोकी तरह सराग लोग भी चेष्टा करते हुए पाये जाते हैं फिर यह ही आप्त है अर्थात् यह ही कुशल पुरुष है, जिसकी प्रत्येक बात सत्य हो इस बातके जाननेका कोई उपाय न होनेसे आप्तका शासन ही सत्य है ऐसी व्यवस्था की जाना अशक्य है, ऐसी मीमासक जन आशङ्का करते हैं। उत्तरमे केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि सर्वथा एकान्तवाद स्याद्वादके द्वारा निराकृत हो जाता है। युक्ति और शास्त्र अविरोधी वाक्य होनेसे ही कोई पुरुष निर्दोष कहला सकता है और युक्तिशास्त्रका विरोध होनेसे जहाँ आगम प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध वचन हो वहाँ यह निर्णय बनता है कि यह वक्ता दोषवान है। दोषरहित वक्ताके वचन युक्तिमे भी प्रमाणित हैं और आज्ञासे भी प्रमाणित हैं।

वीतराग सर्वज्ञदेवके वचनोसे सन्मार्गदर्शन—जिसका वचन विशेष निश्चित नही है, वह आप्त हो अथवा अनाप्त हो और जिस किसीके वीतरागपनेका या सरागपनेका सदेह हो उतनेपर भी यह तो मानना ही होगा कि जिसका वचन विशेष निश्चित है उसको ही आप्त बनना व्यवस्थापित किया जा सकता है। अर्थात् जिसका वचन विशेष निश्चित नही है उसमें ही यह सदेह हो सकता है कि यह वीतराग है अथवा नही? पर जिसका वचन निर्दोष है उसमे वीतरागपना सभी कुछ बताया जाना शक्य है। आप्त शब्दका अर्थ क्या है? जिसकी आप्ति हो उसे आप्त कहते हैं। आप्तका अर्थ है साक्षात्कार करना, वीतरागता होना। जिसने समस्त

पदार्थोंका प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा साक्षात्कार कर लिया है उसके ही आप्ति कही जाती है। जैसे पहिली कारिकामें सिद्ध किया गया है कि सूक्ष्म दूरवर्ती पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। उस कारिकामें सर्वज्ञताका बडे विस्तारपूर्वक समर्थन किया गया है। जहाँ सर्वज्ञ हो, वीतरागता हो, हितोपदेश हो उसे आप्त कहते हैं अथवा सम्प्रदायका विच्छेद न होना इसको आप्त कहते हैं। सम्प्रदायका अर्थ है परम्परा। जिस सर्वज्ञके आगमकी उत्पत्ति होती है और आगममें बताये गए अर्थका अनुष्ठान करनेसे जो उसमें विधि बताई गई है, परिज्ञान बताया है उसके अनुसार अपनेको ढालनेसे सर्वज्ञ बनता है। इस तरह प्रवचनार्थकी सिद्धि होती है जिसका कोई बाधक प्रमाण सम्भव नहीं है। अन्यथा अंधपरम्पराका प्रसंग आ जायगा। किसी अंधेके द्वारा खींचा गया अंधा अपने इष्ट मार्गको प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् कोई भी अंधा किसी दूसरे अंधेको ले जाकर मार्ग नहीं दिखा सकता। तब जो सम्प्रदाय परम्परामें विधि है उससे ही मार्गदर्शन होता है।

सर्वज्ञता, आगमानुसरण व आगम रचनाकी सत्य परम्परा—सर्वज्ञसे तो आगमकी उत्पत्ति हुई और आगमके अर्थके अनुष्ठानसे सर्वज्ञ बना ऐसा माननेमें कोई यह संदेह न करे कि इसमें इतरेतराश्रय दोष होगा। यहाँ इतरेतराश्रय दोष नहीं है, किन्तु इसको यदि कारक पक्षमें लिया जाय तो बीज और अंकुरकी तरह इनमें अनादिपना है इस कारण इतरेतराश्रय दोषका अवकाश नहीं है। जैसे कि प्रथम अंकुर बीजसे हुआ और वह बीज अंकुरसे हुआ, वह अंकुर बीजसे हुआ, इस तरह बढते चले जायें तो अनादिताकी बात भी आयगी, पर इतरेतराश्रय दोष न होगा। जब यह अंकुर बीजसे हुआ और वह बीज अंकुरसे हुआ तो अब कैसे क्या बना ऐसा इतरेतराश्रय दोष यहाँ नहीं है। इसी तरह जो आज सर्वज्ञ है वह आगमके अर्थका अनुष्ठानसे हुआ है और जिस आगमका अनुष्ठान किया है वह आगम पहिलेके सर्वज्ञसे उत्पन्न हुआ है। और वह सर्वज्ञ आगमके अर्थके अनुष्ठानसे हुआ है। इस तरह यह परम्परा अनादि मानी जायगी। यहाँ इतरेतराश्रय दोष नहीं है। अब यदि सम्प्रदाय-अविच्छेदको ज्ञापक पक्षमें लिया जाय तो ज्ञापक पक्षमें भी किसीकी ज्ञप्ति परसे है, किसीके स्वतः है। जो कार्यभूत आगम है उससे पूर्वकी ज्ञप्ति है और स्वयमेव निस्पन्न स्नान, ध्यान आदिकके अनुभवरूप अथवा स्वयं बुद्धताके रूपसे स्वतः भी ज्ञप्ति है इस कारण इतरेतराश्रय दोष नहीं होता। प्रसिद्धके द्वारा अप्रसिद्धकी साधना मानी ही गई है। जब दृष्टिमें सर्वज्ञ प्रसिद्ध है तो उससे आगमकी सिद्धि की जायगी। जिसकी दृष्टिमें आगम प्रसिद्ध है उससे सर्वज्ञकी सिद्धि की जायगी।

अपेक्षाबलसे हेतु सिद्धता व आगम सिद्धताका उपसंहार—सर्व कुछ हेतुसे सिद्ध है, क्योंकि वह करण अर्थात् इन्द्रिय और आप्त वचनकी अपेक्षा नहीं करता। इसी तरह सर्व कुछ कथञ्चित हेतुसे सिद्ध है और कथञ्चित सर्व आगमसे

सिद्ध है, क्योंकि इन्द्रिय और साधनकी अपेक्षा न करनेसे। यहां दृष्टियाँ दो कही गई है आप्त वचनकी अपेक्षा न करना और इन्द्रिय साधनकी अपेक्षा न करना इन दोनो दृष्टियोसे ये उक्त दो बातें सिद्ध हुई। अब क्रमसे अर्पित इन दोनो दृष्टियोसे उभयसे सिद्धि सिद्ध होती है। अर्थात् हेतुसे भी सिद्ध है और आगमसे भी सिद्ध है। जब एक साथ दोनो दृष्टियोको लिया जाता है तो वहाँ अवक्तव्यपना सिद्ध होता है। शेष ३ भङ्ग पूर्वकी तरह समझना चाहिएं। इस तरह सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया युक्त कर लेना चाहिए। इस परिच्छेदमे यह बताया गया है कि जो उभय तत्त्व इस ग्रन्थमे वर्णित किया गया है उसको समझनेका उपाय तत्त्व क्या है? किस उपायसे उन प्रमेय तत्त्वो के स्वरूपकी समझ आये? उस सम्बन्धमे बताया गया है कि सर्वतत्त्व कथञ्चित् हेतुसे सिद्ध होता है और कथञ्चित् आगमसे सिद्ध होता है।

आप्तमीमांसा प्रवचन

[दशम भाग]

प्रवक्ता :

(अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु. मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज)

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाखिलम् ।
प्रमाणाभासमेवातस्तत् प्रमाणादृते कथम् ॥ ७९ ॥

विज्ञानमात्र अन्तरङ्ग अर्थके एकान्तमें दोषापत्ति—अब इस परिच्छेदमें दो बातोंकी मीमांसा चलेगी। कोई दार्शनिक मानता है कि सारा विश्व केवल एक विज्ञान मात्र है तो कोई दार्शनिक कहता है कि यह सारा विश्व पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक सर्व बाह्य पदार्थ मात्र हैं। इन दो प्रसंगोंमें सर्वप्रथम विज्ञानवादी यह कहते हैं कि जो अन्तरङ्ग स्वसंविदित ज्ञान है, अर्थात् ज्ञान है और अपने ही द्वारा अपने आपकी ज्ञान परिणति हो रही है, स्वयं अपने ज्ञानको समझ भी रहा है ऐसा स्वसंवेदित ज्ञान ही वास्तविक पदार्थ है और वह है अन्तरङ्ग। तो अन्तरङ्गकी वास्तविकताके एकान्तको अन्तरंङ्गार्थतैकान्त कहते हैं। विज्ञानवादीका कहना है कि बहिरङ्ग जो जड़ पदार्थ हैं, जो कि प्रतिभासमें आते हैं, प्रतिभासनके योग्य हैं वे वास्तविक नहीं हैं किन्तु अन्तरङ्ग विज्ञानवाद ही वास्तविक है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि केवल विज्ञानको ही वास्तविक माननेपर फिर तो ये सारे अनुमान और आगम आदि प्रमाण जो हेतुवाद और अहेतुवादके बलपर टिके हुए हैं वह सारा उभय तत्त्व फिर मिथ्या हो जायगा और जब अनुमान एवं आगम मिथ्या हो जायेंगे तो फिर यह प्रमाणाभास ही कहलायगा। अनुमान और आगम ये मिथ्या हो जायेंगे, क्योंकि प्रमाण तो सत्यताके साथ व्याप्त हुआ करता है, प्रमाणाभास मिथ्यापनके साथ लगा हुआ होता है। तो अब केवल एक विज्ञान मात्रको ही वास्तविक माना तो अनुमान और आगम जिनका विषय अन्य अन्य है वे सब प्रमाणाभास हो जायेंगे, मगर एक बात तो और समझिये प्रमाणाभास प्रमाणके बिना हो कैसे आयगा? तो जब प्रमाणके बिना प्रमाणाभास होना सम्भव नहीं है फिर तो प्रमाणाभास है इसका व्यवहार

करना ही अवास्तविक हो जायगा तब वह शङ्काकार विज्ञानवादी स्वप्न व्यवहारकी तरह कल्पनासे भी उस व्यवहारको कैसे जान सकेगा ? यह प्रमाणाभास है यह व्यवहार भी न बन सकेगा, क्योकि प्रमाणाभास प्रमाणके बिना सम्भव नही है । प्रमाण माननेपर बुद्धि वाक्य अनुमान आदिक सब स्वीकार करने होगे फिर अन्तरङ्ग अर्थ अर्थात् विज्ञान मात्रका एकान्त कैसे रहेगा ?

अन्तरङ्गार्थैकान्त (विज्ञानमात्र) के आशयका निराकरण— अब यहाँ शङ्काकार विज्ञानवादी कहता है कि देखिये ! उस अर्थसे ज्ञानका जन्म होता है इस कारणसे व्यवहार बन जाता है कि यह इस पदार्थका ज्ञान है, यह मिथ्या है आदिक और उनमे कार्यप्रभवता भी है अर्थात् निमित्तकारणता है । तो ये ही सब वेद्य वेदकके लक्षण हैं । तो वहाँ अनैकान्तिकपनेको दिखाकर सम्वेदन ही जो खण्ड खण्ड रूपसे प्रतिभासमान हो रहा है वेद्य वेदकके विभागरूपसे वही एक विज्ञान प्रतिभासित हो रहा है, सो वह व्यवहारके लिए कल्पित कर लिया जायगा । इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा अभिप्राय कर लेनेपर भी प्रमाणकी खोज तो करनी ही होगी । देखिये ! दोनो के अभावमे तज्जन्मता और तद्रूपता और प्रत्येकका वेद्यवेदक लक्षण इन सबका व्यभिचार बताया जाना अशक्य है । जैसे कि चक्षु इन्द्रियसे तज्जन्मता और तद्रूपताका जो वेदन कर रहा हो उससे जो कि सीपमे चाँदीका अध्यवसाय कर रहा हो उसके साथ व्यभिचार दिया जाना जैसे अशक्य है उसी प्रकार प्रमाणके अभावमे तज्जन्मता आदिकका व्यभिचार बताया जाना अशक्य है । शङ्काकारका यह अभिप्राय था कि तज्जन्मता आदिकका जब व्यभिचार देखा जाता है तब वास्तविक तो विज्ञानमात्र ही रहा । बाह्य पदार्थके विषयका सम्वेदन केवल एक व्यवहारके लिए ही कल्पित किया गया है । तो यह सब बात प्रमाणके अभावमे नही बतायी जा सकती है अथवा प्रमाणके अभावमे एक साथ समान अर्थका समनन्तर ज्ञानके द्वारा अर्थात् उत्तरपूर्ववर्ती अनन्तर ज्ञानके द्वारा तदुत्पत्ति और तद्रूपताका व्यभिचार नही बताया जा सकता । कामला आदिक रोगोसे जिसकी आँखे सदोष हुई है, उनका जो शुक्ल शङ्खमे पीताकार ज्ञान होता है उस समनन्तर ज्ञानके द्वारा भी व्यभिचार प्रमाणके अभावमे नही दिखाया जा सकता अर्थात् प्रमाण न माननेपर अनुमान आगम आदिक न माननेपर विज्ञानाद्वैतवादी इन सब दूषणोको दिखानेमे समर्थ नही हो सकते अथवा ज्ञानका निमित्तकारणपना पदार्थमे रहता है और वेद्यवेदकका जो कुछ लक्षण कहा गया है सो उस सबका चक्षुके साथ अनैकान्तिकपना और चक्षुनिमित्तक ज्ञान-कार्यकी व्यवस्था भी कैसे कर सकेगा ? प्रमाणके अभावमे यह सब व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती । और कैसे कार्यकारणभावरूप प्रभवका किन्ही सख्या आदिकके प्रति अथवा योग्यताका वेद्यवेदक लक्षणरूपसे व्यभिचार दे सकेगे ये शङ्काकार । प्रमाण न माननेपर शङ्काकार कुछ भी दूषण देनेमे समर्थ नही हो सकता । अथवा सम्वेदन ही खंड

ज्ञान प्रतिभासित नही होते। वह सब ज्ञान क्षणिक आदिक रूपसे विपरीत ही अर्थात् नित्यादिक रूपसे ही प्रतिभासमे आता है और उनका ऐसे ही प्रतिभासका अभ्यास सिद्ध है तो प्रत्यक्षसे तो विज्ञानमात्र-तत्त्वकी व्यवस्था नही बनती और न अनुमानसे भी क्षणिकत्व आदिककी सिद्धि होती है अर्थात् वह विज्ञानमात्र तत्त्व है और और क्षणिक हो यह बात सिद्ध नहीं होती, क्योकि साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान विज्ञान मात्र तत्त्व मानने वालेके सिद्धान्तमे नही बन सकता है। कोई विसम्वादी यह सोचे कि क्षणिकत्वके साथ सत्त्वादिक लिङ्गकी व्याप्ति बन जायगी। जो जो सत् है वह सब क्षणिक है, इस तरह की व्याप्तिके द्वारा सम्वन्धका ज्ञान होजायगा सो यह बात प्रत्यक्षसे तो जानी नही जाती अर्थात् सत्त्वका क्षणिकपनेके साथ सम्बन्ध हो इसको व्याप्तिके द्वारा सम्बन्धका ज्ञान हो जायगा सो यह बात प्रत्यक्षसे तो जाती नही जाती अर्थात सत्त्वका क्षणिकपनेके साथ सम्बन्ध हो इसको प्रत्यक्ष प्रमाण नही जान रहा है क्योकि प्रत्यक्ष तो सामने रहने वाले पदार्थके बलपर ही उत्पन्न होता है और साथ ही प्रत्यक्ष ज्ञान विचारक नही होते, किन्तु जो सामने हैं उनका प्रतिभास हो जाय इतना ही मात्र प्रत्यक्षका काम है। अब विचार करना कि जहा जहा सत्त्व पाया जाय वहाँ वहा क्षणिकपना होता है तो यह विचारकी बात प्रत्यक्ष ज्ञानमे नही पडी हुई है। तो क्षणिकत्व साध्यके साथ सत्त्वादिक साधन सम्बन्ध ज्ञान प्रत्यक्षसे न बना और क्षणिकत्वके साथ सत्त्वका सम्बन्ध ज्ञान अनुमानसे भी नही बन सकता। यदि साध्य साधन के सम्बन्धका ज्ञान अनुमानमे किया जायगा यो अनवस्था दोष आयगा, क्योकि अब उस सम्बन्ध प्रतिपत्तिके ज्ञानके लिए जो कुछ कहा जायगा वह अनुमानसे ही कहेंगे तो उस अनुमानमे भी साध्य साधनकी व्याप्ति दिखानी पडेगी, उसके सम्बन्धका ज्ञान करनेके लिए अन्य अनुमान मानेगे तो उसमे भी साध्य साधनकी व्याप्तिका व्यवहार बताना पडेगा। तो यो उत्तरोत्तर इसी तरह मानते चले जाये तो कही भी विराम न होगा और न प्रकृत अनुमानकी बात सिद्ध हो सकेगी। यह बात पहिली ही कारिकाओ मे सिद्ध कर दी गई है। अब यदि शङ्काकार स्वांशमात्रका आलम्बन लेने वाले मिथ्या विकल्पोके द्वारा प्रकृत तत्त्वकी व्यवस्था बनाये अर्थात् वासनाके निमित्तसे जो सामान्याकार प्रतिभासमे आता है उसे माना है, मिथ्या विकल्प, वही हुआ स्वांश अर्थात् मैं हू इस प्रकारका जो बोध है वह एक विज्ञानका अंश है तो उस स्वांश मात्रका आलम्बन लेने वाले इन मिथ्या विकल्पोके द्वारा मैं हू इस प्रकारकी बुद्धिके द्वारा क्षणिकत्व आदिककी व्यवस्था बनाये तो देखिये! बाह्य पदार्थोंमे भी क्षणिकपनेका विरोध न किया जा सकेगा। बाह्य अर्थ भी क्षणिक है उसकी भी व्यवस्था माननी पडेगी। तब केवल विज्ञानमात्र ही है यह सिद्धान्त तो कायम न रह सकेगा। लो अब इस माध्यमिक क्षणिकवादियोके सिद्धान्तमे भी बाह्य पदार्थोके क्षणिकत्व आदिककी व्यवस्था बन गयी। अब विज्ञानमात्र ही तत्त्व न रहा, क्योकि बाह्य तत्त्व मानने वाले

युक्त नही है कि स्वरूपमे तो वेद्य वेदक लक्षण मानने ही पडे अर्थात् वह विज्ञानमात्र स्वरूप वेदक भी है, जानने वाला भी है और वेद्य भी है, वह जाना जाता भी है। यो वेद्य-वेदक लक्षण स्वरूपमे न माना जायगा तो ज्ञान स्वरूपका बोध स्वत: ही होता है यह बात घटित न हो सकेगी। जैसे कि ब्रह्माद्वैतवादियोके सिद्धान्तमे दूषण दिया जाता है, केवल वही ब्रह्माद्वैत है पुरुषाद्वैत है तो वहाँ वेद्य वेदक लक्षणका द्वैत ही न बन सकेगा ? यही आपत्ति इन विज्ञानवादियोके यहाँ भी आती है। विज्ञानमात्र तत्त्व माननेपर उस विज्ञानका भी ज्ञान नही हो सकता, क्योकि ज्ञानमात्र ही तत्त्व माना है वेद्य भाव वेदक भाव ऐसा द्वैत न घटित कर सकेंगे। अन्यथा अद्वैत न रहेगा। तो वहाँ भी ज्ञान नही बन सकता।

ग्राह्याकार ग्राहकाकारको भी शंकाकार द्वारा भ्रम बताये जानेका मिथ्यापन — उक्त प्रकरणसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो विज्ञानवादियोने यह कहा है कि ग्राह्याकार और ग्राहकाकार ये सब भी भ्रम है। जैसे स्वप्नमे या इन्द्रजाल के प्रसगमे जो कुछ ज्ञान होता है वह भ्रान्त ज्ञान है इसी प्रकार जो कुछ भी ग्राह्याकार ग्राहकाकाररूपमे प्रत्यक्ष आदिकरूपसे ज्ञान हो रहा है वह सब भ्रम है; ऐसा विज्ञानवादियोका कहना निराकृत हो जाता है। भला वे यह ही बतलाये कि जिस अनुमानसे ये विज्ञानवादी इन सब आकारोको भ्रान्त सिद्ध कर रहे है, तो, भ्रान्तपना और प्रकृत अनुमानका ज्ञान इन दोनोमे विभ्रम है या नही ? अगर विभ्रम है तो सब कुछ भ्रान्त है यह भी भ्रम हो गया। तो अब सब भ्रान्त न रहे, वास्तविक हो गए और यदि कहें कि भ्रान्तत्व और प्रकृत अनुमानका ज्ञान ये दोनो अभ्रान्त है, तो लो यहाँ ही हेतुका व्यभिचार हो गया। जो इस बात पर तुले हुए थे ये विज्ञानवादी कि ग्राह्याकार ग्राहकाकार आदिक सारे तत्त्व भ्रमरूप है सो अब यहाँ भ्रान्तपनेको और प्रकृत अनुमान ज्ञानको तो भ्रान्त नही मान रहे फिर सब कुछ भ्रान्ति है यह प्रतिज्ञा रही ? इस प्रकार जो यह बोध हो रहा है कि यह ग्राह्याकार है यह ग्राहकाकार है तो यह विषय ज्ञानमे प्रतिभासित होता है और यह ज्ञान उन विषयोका प्रतिभास करने वाला है, इस तरह जो ये दो आकार विदित हो रहे हैं वह भ्रान्त है कि अभ्रान्त, याने विज्ञान ही जो ग्रहणमे आ रहा, विज्ञान ही ग्रहण कर रहा, जिसे इन शब्दोमे कहा है शङ्काकारने कि स्वरूपका परिचय स्वत ही होता है। तो यहाँ ग्राह्याकार और ग्राहकाकार जो हो रहे है, जिनसे स्वरूप परिज्ञानकी बात निभा रहे हैं ये दोनो भ्रान्त हैं कि अभ्रान्त ? यदि भ्रान्त हैं तो ज्ञानने ज्ञानके अपने स्वरूपको भी नही जान पाया और जाने तो वह भी भ्रान्त है। यदि कहो कि ग्राह्याकार ग्राहकाकार अभ्रान्त है तो लो इसीसे ही हेतुमें व्यभिचार दोष आता है। यह जो हेतु बनाया जा सकता था शङ्काकार द्वारा कि सर्व कुछ भ्रान्त है ग्राह्याकार होनेसे तो अब यहाँ देखो ग्राह्य ग्राहकाकाकारको अभ्रान्त मान लिया तो अब कहाँ रही सब कुछ भ्रान्त माननेकी

प्रतिज्ञा ? तो इन सबको अभ्रान्त भी न कह सके और भ्रान्त भी न कह सके। यदि ग्राह्याकार ग्राहकाकार ये भ्रान्त बन जायें जिसमे कि विज्ञानवादी विज्ञान स्वरूपका स्वतः परिचय कराना चाहता था वही भ्रान्त बन गया तब इस ही अनुमानसे इनकी भ्रान्तता सिद्ध होगी। और जब सब कुछ भ्रान्त सिद्ध हो गया तब साध्य साधनका ज्ञान होना असम्भव हो गया। जैसे कि उनकी व्याप्तिका ज्ञान असम्भव हो गया है। साध्य साधनकी व्याप्तिका विज्ञान नहीं किया जा सकता है इसी प्रकार यहाँ भी व्याप्ति न बनी, साध्य साधन न बना तो इष्ट तत्त्वकी सिद्धि नही कर सकते। और यदि व्याप्ति बना लेते हैं तब जो सर्व तत्त्वोंका भ्रम सिद्ध करना चाहते हैं विज्ञानवादी वह सिद्ध न हो सकेगा।

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः ॥८०॥

साध्यसाधन प्रयोग द्वारा विज्ञानमात्रकी सिद्धि करनेपर प्रतिज्ञाभङ्ग व हेतुदोषका प्रसङ्ग—विज्ञानवादी यदि ऐसा कहें कि साध्य साधनका ज्ञान भी क्या है ? केवल विज्ञानमात्र है। मात्रज्ञानको छोडकर वह भी कुछ चीज नही है। तब देखिये कि न तो साध्य बना और न कोई हेतु बन सका। न दृष्टान्त आदिक बन सके। तब प्रकृत इष्ट बात भी विज्ञानवादी सिद्ध कैसे कर सकेंगे ? और, यदि करना चाहेंगे तो उनकी प्रतिज्ञामे दोष आ जायगा और हेतुमें दोष आ जायगा। प्रतिज्ञादोष तो स्ववचन विरुद्धकी बातसे स्पष्ट है जो लोग साध्य साधनके ज्ञानको केवल विज्ञप्तिमात्र कह रहे हो अर्थात् ये भी कुछ अलग-अलग नही है कि यह साध्य है यह साधन है। वह सब भी ज्ञानमात्र है तो तुम्हारा यह प्रतिज्ञा दोष स्ववचन विरुद्ध स्पष्ट ही आ रहा है। ये विज्ञानवादी नील पदार्थ और नील ज्ञान इन मे अभेद सिद्ध कर रहे हैं अर्थात् नील पदार्थ अपना सत्त्व अलग रहता हो और नील ज्ञान अपना सत्त्व अलग रखता हो ऐसी बात नही है, उनमे अभेद है। वे दोनो एक हैं, क्योकि दोनो एक साथ पाये जा रहे हैं। जैसे किसीको दो चन्द्रमाओंके दर्शन हो जायें तो वहा दो चन्द्र हैं तो नही, एक ही हैं। क्यो नही हैं दो चन्द्र कि उनका एक साथ पाया जाना देखा गया है। तो जैसे दो चन्द्रकी उपलब्धि एक साथ है इस कारण वहा कल्पनासे दो नहीं है, किन्तु एक है इसी प्रकार नील आदिक पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान ये कोई दो नही हैं; एक ही है, विज्ञानमात्र है क्योकि इनका एक साथ उपलम्भ पाया जा रहा है। इस प्रकारका मतव्य बनाकर ये विज्ञानवादी पदार्थ और ज्ञानमे एक साथ दर्शन और उपालम्भ बताकर एकत्वके एकान्तको साध रहे हैं तो मात्र ज्ञानमात्र ही तत्त्व है ऐसे एकान्तकी सिद्धि करना चाह रहे हैं। तो अब बतलाओ कि कैसे नही स्ववचनका विरोध होगा ? खुद ही तो धर्म धर्मीके भेदको

वचन कह रहे है और हेतु दृष्टान्तका भेद बता रहे है। तो अद्वैत वचनके द्वारा कह रहे हैं तो उन वचनोका जो यो ज्ञानाद्वैतके वचनका साध्य और धर्मादिकका भेद बताना यह विरुद्ध पडता है।

प्रमेयोंका निषेध करके ज्ञानमात्रके व्यवस्थापनमे स्ववचन विरोध— इस परिच्छेदमे यह प्रकरण चल रहा है कि एक दार्शनिक कहता है कि लोक केवल एक विज्ञानमात्र है। ज्ञान तत्त्वके सिवाय बाह्य अन्य कुछ है ही नही। जैसे कि लोगोको घट, पट, मकान, पुरुष, पशु पक्षी आदिक दिखते हैं सो यह सब भ्रम है। है सब केवल एक ज्ञानमात्र। तब दूसरा दार्शनिक कहता है कि सब कुछ यह बाह्य पदार्थमात्र ही है। इन दो पक्षोमेसे पहिले एकान्तकी मीमासा चल रही है। विज्ञान मात्र माननेपर उस विज्ञानमात्रकी सिद्धि कैसे हुई। इसके लिये अनुमान प्रयोगकी आवश्यकता हुई। उस आवश्यकताके प्रसगमे यहा यह कहा जा रहा कि देखो अपने ही मुखसे साध्य है, साधन है, हेतु है, दृष्टान्त है आदिक भेदरूप वचन तो बोल रहे हो और सिद्ध करना यह चाहते हो कि केवल एक विज्ञानमात्र ही है। तो ज्ञानाद्वैत की बात साध्य साधन हेतु दृष्टान्त आदिकके भेदसे खण्डित हो जाता है। यदि यह कहे शकाकार कि नील पीत आदिक पदार्थोका वचन और नीलज्ञान. इनमे भेद है इसी प्रकार साध्य साधन है, दृष्टान्त आदिकका भेद है तब एकत्वकी साधना करने की वार्ता खण्डित हो जाती है और यदि एकत्वकी रटन अब भी लगाया तो नील पीत आदिक पदार्थोंका भेद नही सिद्ध होता उसमे फिर विरोध है। इस प्रकार अपने अभेदरूप और भेदरूप दोनो ही वचनोके विरोधसे डरता हुआ कोई अपने ही वचनका अभाव अपने ही वचनसे दिखाये तो भला कौन कहेगा कि यह पुरुष स्वस्थ है उन्मत्त नही है? जैसे कोई यह कहे कि मैं सदा मौनव्रती हू तो यह कहना जैसे स्ववचन विरुद्ध है उसी प्रकार विज्ञानवादका अद्वैत कहना और उसमे प्रतिनियत होते हैं सर्व पदार्थ, उनकी चर्चा करना यह भी स्ववचन विरुद्ध है और भी सुनो। विज्ञानवादियोके यहाँ विशेष्य और विशेषणपना सिद्ध नही होता है। और यो प्रतिज्ञा दोष होता है। नील पदार्थ और नील पदार्थका ज्ञान यह हुआ विशेष्य है और उनमे है अभेद तो पदार्थ और पदार्थके ज्ञानमे अभेद हैं। यही तो विज्ञानवादी कहता है। तो पदार्थ और पदार्थका ज्ञान विशेष्य हुआ और उनमे अभेद बताना यह विशेषण हुआ ऐसा तो ये विज्ञानवादी स्वय नहीं मानते। तो जो केवल यही बात मानते कि लोकमे सिर्फ ज्ञान ज्ञान ही तत्त्व है और दिखने वाले ये सारे पदार्थ भ्रम है, इनका अस्तित्व नही है ऐसा मानने वालोके कुछ भी तत्त्व सिद्ध नही हो सकता है।

पराभ्युपगमके सहारे अनभिमत उपायसे अभिमतसाधनकी असंभवता— यदि शङ्काकार यह कहे कि दूसरे लोगोंने तो माना है विशेष्य विशेषण तो उनके माने

ग्रयेसे हम प्रसङ्गकी सिद्धि बना लेंगे, फिर कोई दोष नही है। जैसे हम विज्ञानवादी ज्ञानको छोडकर अन्य कुछ नही मानते और फिर हमे विशेष्य विशेषण साध्य साधन आदिक बतानेकी आवश्यकता हुई तो यह सब भेदकी बात बताना दूसरेके मतव्यसे हो जायगा। तब तो कोई दोष नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि दूसरेकी मानी हुई बातं तो असिद्ध है दूसरेके लिये। जैसे यहा विज्ञानवादी बौद्ध जो कुछ मानते हैं सो जो उनके सिद्धान्तमे है सो ही तो मानेंगे। अब कोई शासन जैन आदि की मान्यतासे सिद्ध करके अपना काम बनाना चाहे तो उनकी बात तो इनको सिद्ध है ही नही, तो उनके मानने मात्रसे तो प्रसगकी सिद्धि नहीं बन सकती। प्रसगका साधन कब बनता है कि साधन और साध्यका व्याप्य व्यापक भाव सिद्ध होनेपर फिर दूसरोके द्वारा माने गए व्याप्यका मानना हो, उससे फिर कोई व्यापकके माननेकी सिद्धि करे याने व्याप्यका मानना व्यापकके माने बिना नही होता तो व्यापकका मानना जहा दिखाया तब तो प्रसंग साधन है और यह बात केवल ज्ञानमात्र तत्त्व मानने वालोंके सम्भव नही है। क्योकि इनमें विरोध है। अनेक बातें स्वीकार करनी पडेंगी तब ज्ञानमात्र ही है सब कुछ इसकी सिद्धि करनेका कुछ प्रयास बन सकता है।

सर्वज्ञ विसवादकोंके यहा पराभ्युपगमसे स्वेष्ट साधनकी अशक्यता— यहाँ शकाकार कहता है कि स्याद्वादियोके यहाँ भी तो प्रतिज्ञा हेतु दोषकी बात कहना न बन सकेगा, विज्ञानवादियोके प्रति। क्योकि विज्ञानवादियोकी दूसरी कुछ चीज मानी ही नहीं गई है। वह दोष माना ही नही गया है। तो दूसरेके मानने मात्रसे जब दूसरेकी सिद्धि नही है तो जैनियोके मानने मात्रसे बौद्धोको क्यों मानना पडेगा? विज्ञानवादी तो ज्ञानमात्रको छोडकर अन्य कुछ नहीं मानते, गुण भी नहीं मानते, दोष भी नही मानते। दोष गुण आदिकका होना तो अपने माननेसे सिद्ध होगा, या जो लोग दोष गुण मानते हैं वह उनके माननेसे ही बनेगा। ज्ञानाद्वैतवादियोके ज्ञानमात्र साधनसे पहिले प्रतीतिके अनुसार वस्तुकी व्यवस्था की है और जैन आदिकने दोषके होनेकी व्यवस्था बनायी है। ऐसा यदि कोई समाधान दे तो फिर प्रतीतिके ही अनुसार वस्तुकी व्यवस्था होती है यह बात दिखाकर विज्ञानवादी बौद्धोके लिए क्यो न वह समाधान बनेगा? जैसे कि जैन आदिकके लिए गुण दोष की सत्ता है तो हम सौगतोंके लिए गुण दोषकी सत्ता है तो हम सौगतोंके लिए ज्ञान मात्रकी सत्ता बन जाय। विचारसे पहिले तो सभी वादियोंके यहाँ वे अविचारत रमणीय रूपसे अर्थात् बिना विचारे ही सुन्दर जचे इस रूपसे प्रतीतिके अनुसार साध्य साधन व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है, अन्यथा तो किसी भी सम्बन्धमें विचार ही नहीं बन सकता है। और जब विज्ञानमात्र सिद्ध हो गया तब फिर कोई भी साध्य साधन व्यवहारको फैला नहीं सकता। और 'विज्ञप्तिमात्र' सिद्ध होनेपर जैन आदिकको उस सम्बन्धमे दोष प्रकट करनेका अवकाश भी नही हो सकता। इस

प्रकार विज्ञानवादी स्याद्वादियोके प्रति दूषण दे रहे हैं। अब इस उपालम्भके समाधानमे कहते है कि इस तरहका उपालम्भ देने वाले दार्शनिक विचारमें चतुरचित्त वाले नही हैं। कुछ भी निर्णीत बातका आश्रय करके अन्य अनिर्णीत रूपसे जो कि उस निर्णीतका अविनाभावी हो उसमे विचार चलता है, पर जिसके लिए सभी पदार्थो मे विवाद है, साध्य साधन आदिक सभीमे संदेह है उसका तो कहीं भी विचार चल ही नही सकता। विचार तो उनके बना करता है जो किसी एक निर्णयमे तो हो। फिर उसके आधारमे अन्य जिसका निर्णय न बन सका ऐसे विषयोमे विचार चले। पर जिसका निर्णय ही कुछ न हो, सभी साध्य साधन आदिकमे विवाद है तो उनका तो कही भी विचार नही बन सकता। इस तरह विचारसे पहिले भी अन्य विचारसे निर्णीत किए गए विषयमे ही साध्य साधनका व्यवहार बनता है और साध्य साधन आदिकके गुण और दोषका स्वभाव है वह भी निश्चित हो जाता है। यहां कोई ऐसा न सोचे कि जब अन्य विचारसे निर्णय बना तो अनवस्था दोष होगा। सो अनवस्था दोष नही आता, क्योकि ससार तो अनादि है। कही किसी पुरुषकी रागादि न रहने से आकाक्षा दूर हो ही जाती है तो विचारान्तरकी अपेक्षा नही रखी जाती। कोई मनुष्य किसी भी विषयमे विचार चला रहा है तो वह चीज अभी निर्णीत नही हुई। पूर्णरूपसे सामने नही है तभी तो विचार चलता है और उन विचारोकी फिर परम्परा बनती है, तो यह परम्परा बनती ही जाय और प्रकृत बातमे कुछ प्रवृत्ति न बने ऐसी अवस्था नही कह सकते, क्योकि विचार चलता ही रहता है और जहां फिर राग नही रहता विचार रुक जाया करता है तो सिद्ध यही है कि कुछ निर्णय तो हो पहिले फिर उसके माध्यमसे उन पदार्थोंका भी विचार चले जिसके सम्बन्धमे कुछ भी निर्णय न हुआ हो। इससे स्याद्वादियोका विज्ञानवादीके प्रति प्रतिज्ञादोष का प्रकट करना और हेतुके दोषको प्रकट करना यह युक्त ही है अर्थात् स्याद्वादीजनो ने विज्ञानवादियोके प्रति जो प्रतिज्ञा दोषकी और हेतु दोषकी बात प्रकट की है वह युक्त ही है।

पृथगनुपलम्भ व भेदाभावमे सम्बन्ध व्याप्ति सिद्ध न किये जा सकने की स्थितिमे विज्ञानमात्रकी सिद्धिकी अशक्यता—यह विज्ञानवादी शकाकार पदार्थमे और पदार्थ विषयक ज्ञानमे जो भेदका अभाव सिद्ध कर रहा है वह इस ही बलपर तो कह रहा है कि वे दो पृथक उपलब्ध नही हो रहे हैं। लेकिन यह बात असिद्ध है। सम्बन्धकी जब तक सिद्धि न हो पृथक पाये जानेका अभाव और भेदका अभाव इन दोनो अभावोमे जब तक सम्बन्ध सिद्ध न हो तब तक भेदका अभाव है यह सिद्ध नही किया जा सकता। याने पदार्थ और पदार्थ विषयक ज्ञान इनका पृथक कहीं दर्शन नही है, अतएव भेदका अभाव है। यो जो कह रहे हैं तो क्या इन दोनो मे व्याप्ति है कि पृथक कोई चीज न पायी जाय तो वहां भेदका अभाव मानना

चाहिए। ये तो गायोंके सींगकी तरह अमन् पदार्थ हैं, उनमें क्या सम्बन्ध सिद्ध होगा ? जैसे धुवां और अग्निके जब कार्यकारणभाव सम्बन्ध सिद्ध है कि अग्नि तो कारण है धुवां कार्य है। अग्निसे ही तो धुवांकी उत्पत्ति है। तो जब अग्नि और धुवांमें कार्यकारणभाव सम्बन्ध सिद्ध है तब कारणके अभावमें कार्यका अभाव सिद्ध करना युक्त है। जहां अग्नि न हो वहां धूम नहीं है यह बात निःशङ्कासे कही जा सकती है। और जैसे सीसमपना और वृक्षपना इन दोनोंमें व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है। वृक्षपना तो व्यापक है सीसमका वृक्ष यह व्याप्य है। तो यह सीसम है ऐसा कहनेमें यह तो सिद्ध हो ही जाता कि यह वृक्ष है। तो जब इन दोनोंमें व्याप्य व्यापक भाव सिद्ध है तब ही तो व्यापकके अभावमें व्याप्यका अभाव सिद्ध होता है। अर्थात् वृक्ष ही न हो तो सीसम कहांसे आयगा ? तो कार्य कारणभाव, व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध सिद्ध होनेपर ही एकके अभावसे दूसरेके अभावकी सिद्धि होती है अन्यथा नहीं, इस प्रकार भेदका होना और पृथक चीजका पाया जाना इन दो सम्बन्ध कहीं भी सिद्ध नहीं है। तब विरुद्ध होनेसे विज्ञानमात्र मानने वालेके सिद्धान्तमें पृथक चीज को पाये जानेका अभाव भेदके अभावको सिद्ध करे ऐसा नहीं हो सकता। तब विज्ञान वादी जो यह कहता है कि सारा तत्त्व केवल विज्ञान मात्र है। क्योंकि वहां सबकी एक साथ उपलब्धि है अथवा पृथक-पृथक किसीकी उपलब्धि नहीं है, यह सिद्धान्त निराकृत हो जाता है। उक्त हेतुवोंसे जब विज्ञानवादकी पुष्टि न हो सका तब विज्ञान-वादी जो यह कहते हैं कि क्रमसे उपलब्धि नहीं है इस कारण पदार्थ और पदार्थके ज्ञानमें अभेद है यह बात भी खण्डित हो जाती है क्योंकि भाव और अभावमें सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। अभेदका होना और पृथक् पृथक न पाया जाना इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध असिद्ध है। कोई पूछे कि क्यों असिद्ध है ? भाव और अभावकी समानता क्यों है ? तो सुनो तादात्म्य सम्बन्ध तो अर्थ स्वभावके साथ नियमित होते हैं। तो इन सम्बन्धोंसे भेद सिद्ध नहीं किया जा सकता किन्तु पदार्थका अस्तित्व और स्वभाव निश्चित् किया जाता है। रही अन्यापोहकी बात। जैसे घट कहना तो उसका अर्थ लगाना अघटव्यावृत्ति, तो ऐसा अन्यापोह पदार्थका स्वभाव नहीं है, वह तो तर्क वितर्कसे परखी जाने वाली बात है। अतः एकत्व साध्यके साथ, भावस्वभावके साथ अन्यापोहका सम्बन्ध नहीं जुड सकता है। अतः केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व है ऐसा कहना युक्तिहीन है। पदार्थ अनन्त है, विज्ञान भी एक पदार्थ है, वह समस्त ज्ञेयोंके जाननेकी व्यवस्था बनाया करता है।

असहानुपलम्भका अन्यापोहरूप अर्थ करके विज्ञान मात्र तत्त्वकी सिद्धि का विफल प्रयास विज्ञानवादी यहां असहानुपलम्भका अन्यापोहरूप अर्थ करके विज्ञानमात्र तत्त्वकी सिद्धि करना चाहते हैं लेकिन यह प्रतिषेध (अन्यापोह) एकान्त सिद्ध भी हो जाय यद्यपि अन्यापोह अर्थका स्वभावरूप नहीं है इस कारण भाव स्व-

भाव एकत्वके साथ अन्यापोह वाले असहानुपलम्भका सम्बन्ध नहीं बनता। कदाचित ऐसा प्रतिषेध-एकान्त सिद्ध भी कर लिया जाय तो भी विज्ञानमात्रकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि "पृथक न पाया जाय" इस हेतुसे ज्ञानमात्रकी सिद्धि होती नहीं है। नील पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान-ये दो तो पृथक नहीं पाये जाते, इसमें विज्ञानमात्र ही है यह कैसे अर्थ लगाया ? कोई यह कह देगा कि नील पदार्थ मात्र ही है तो उसको क्या रोका जा सकेगा ! और यदि विज्ञप्तिकी सिद्धि ही करते हो इस उपायसे तो वह हेतु सिद्ध हो ही जाता है, क्योंकि वहाँ ग्राह्य ग्राहक भाव सिद्ध हो गया। ग्राहक हुआ विज्ञान जिसमें कि ग्राह्य हो गये नीलादिक पदार्थ जो कि जाने गए और इसी प्रकार जैसे कि ज्ञान सिद्ध हुआ तो ग्राह्य-अर्थ भी सिद्ध हो गए। वह ग्राह्य है यह ग्राहक है इस तरह पृथक उपलब्धि नहीं है नील पदार्थ और विज्ञानकी, इसमें केवल विज्ञानकी सिद्धि नहीं की जा सकती।

सहोपलम्भमें प्रयुक्त सह शब्दका 'एक' अर्थ करनेपर हेतुकी साध्य-समदोष दूषितता—विज्ञानवादी विज्ञानमात्र तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए यदि यह साधन-वचन कहे कि एककी उपलब्धि पायी जाती है इस कारण विज्ञानमात्र है सो यह हेतु भी असिद्ध है। क्योंकि यह हेतु तो साध्यसम हो गया। साध्य भी यहाँ क्या कि विज्ञानमात्र एक ही तत्त्व है और साधन भी यही बना कि सिर्फ एककी उपलब्धि होती है। तो साध्य साधन दोनो समान हो गए तब साध्यकी सिद्धि कैसे होगी? साध्य तो यह बनाया जा रहा है कि नीलादिक पदार्थ और तद् विषयक ज्ञान इनमे एकत्व है और हेतु यह कहा जा रहा कि उनमे एककी उपलब्धि है तो बात तो वही रही। ज्ञानके उस एककी उपलब्धि होनेसे यही तो हेतु के अर्थका व्याख्यान है और सह शब्द जो है वह एकका पर्यायवाची है। जैसे कहा भ्राता और सहोदर तो सहोदरका अर्थ क्या है ? एक ही पेटमे उत्पन्न हुए याने जिस मांके उदरसे एक भाई उत्पन्न हुआ उसी उदरसे दूसरा भाई हुआ तो उसे कहते हैं सहोदर। तो सहका भी अर्थ एक है। तो इस तरह यह साध्यसम हेतु हो गया। जो साध्य सिद्ध करना था वही हेतुमे दिया जा रहा है। जैसे कोई कहे कि इस पर्वतमे अग्नि है अग्नि होनेसे तो क्या यह समीचीन हेतु है ? नहीं है। तो इसी प्रकार एककी उपलब्धि होनेसे एक विज्ञान ही है यह प्रयोग समीचीन नहीं है।

विज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करनेके लिये प्रयुक्त एकज्ञान ग्राह्यत्व हेतुकी अनैकान्तिकता अब और भी सुनिये विज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करनेके लिये यह हेतु बनाना कि एक ज्ञानके द्वारा ग्राह्य है इस कारण एक है तो यह हेतु अनेकान्ति दोषसे दूषित है। द्रव्य पर्याय और परमाणु ये सब एक ज्ञानके द्वारा ग्राह्य है पर एक तो नहीं हो गए। कथञ्चित इनमे नानापन है। द्रव्य और पर्याय ये एक मतिज्ञानके

द्वारा ग्राह्य है, पर इनमे सर्वथा एकत्व नहीं माना गया है। यह तो है जैनोंके दृष्टांत की बात। अब इन ही माध्यमिक क्षणिकवादियोंकी बात देखो ये लोग मानते हैं कि चक्षु आदिक एक ज्ञानके द्वारा सचित हुए रूपादिक परमाणु ग्राह्य होते हैं और इनके वचन भी है ऐसे कि जो सचित ही हैं। जिनका विषय ऐसा ५ विज्ञान स्वरूप होता है तो एक ज्ञानके द्वारा सचित अनेक रूपादिक परमाणु जाने गए हैं लेकिन उन सबमे एकता तो नही मानी गई। इस प्रकार उन सचित रूपादिक परमाणुओंके साथ अनेकान्तिक दोष इस साधनमे आते हैं जो साधन अभी बताये हैं कि एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य है। तो विज्ञानमात्र एक तत्त्व है एक ज्ञान द्वारा ग्राह्य होनेसे इस हेतुमें। अभी दो प्रकारका अनेकान्तिक दोष बताया है। अब विज्ञानवादी योगाचारके यहाँ भी यही अनेकान्तिक दोष देखिये —ये मानते हैं कि एक सुगतज्ञानके द्वारा समस्त ज्ञान परमाणु ग्राह्य हो जाते हैं तो देखिये ! सारे ज्ञान परमाणु एक सुगत ज्ञानके द्वारा जाने गए लेकिन वे ज्ञान परमाणु क्या एक बन गए। वे तो नाना ही हैं, इस प्रकार विज्ञान उन विज्ञानवादियोंके साथ यह एक ज्ञान ग्राह्यत्व हेतु अनैकान्तिक दोपसे दूषित होता है।

सहोपलम्भका अनन्यवेद्यपना व एकलोभावोपलम्भ अर्थ करनेपर दोषमुक्तिका अभाव— अब यदि शंकाकार यह कहे कि हम तो सहोपलम्भ नियम का अर्थ करते है अनन्यवेद्यपना और यह अनुमान प्रयोग बनता है कि नील पदार्थ और नील पदार्थ विषयक ज्ञान इनमें एकता है, क्योंकि अनन्यवेद्य होनेसे। अनन्य-वेद्यका अर्थ है नील पदार्थके ज्ञानसे अन्य कुछ भी नहीं है स्व सम्वेदनकी तरह। जैसे स्वसम्वेदन ज्ञान अनन्यवेद्य है, स्वयके द्वारा ही जाना गया है। वहाँ अन्य कोई दूसरा नहीं है, इसी तरह नील पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान इनमे भी एकता है। उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा सोचना यो संगत नहीं है कि अन्य लोग जैनादिक जनोंके यहाँ अनन्यवेद्यपना असिद्ध है, क्योंकि नीलज्ञानसे जाना जा रहा है। अतः अनन्य वेद्य-पना हेतु देकर भी नीलादिक पदार्थ और नीलज्ञानमे एकता नही बतायी जा सकती है। अब शंकाकार कहता है कि सहोपलम्भका यह अर्थ किया जायगा कि एकमेक रूप होनेके ढंगसे उपलब्धि हो रही है। जैसे चित्रज्ञान और चित्रज्ञानाकारमे एकमेक रूपसे उपलब्धि हो रही है और इसीलिए वहाँ चित्रज्ञान और वे नानाकार भिन्न भिन्न रूप से नही किए जा सकते। उनमे अशक्य विवेचनपना है। तो इस तरह एकमेक रूपसे उपलब्धि होनेसे नीलादिक पदार्थ और तद्विषयक ज्ञानमे एकता सिद्ध हो जायगी। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि यह साधन तो असिद्ध है क्योंकि नीलादिक पदार्थ और तद्विषयक ज्ञानमें अशक्य विवेचनता सिद्ध नहीं है। ये स्पष्ट रूपसे भिन्न-भिन्न रूपसे जाने जा रहे हैं। नील पदार्थ विषयक ज्ञान तो अन्तर देशमें जाना जा रहा है वह भीतरमें समझ बुद्धि है और नीलादिक पदार्थ बाह्यदेश रूपसे जाने जा रहे हैं, इस कारण इनमें अशक्य विवेचनता है ये एकमेक रूपसे उपलब्ध होते हैं यह बात

प्रसिद्ध है।

सहोपलम्भका एकदोलम्भ अर्थ करनेपर भी दोषमुक्तिका अभाव— यदि शङ्काकार सहोपलम्भकी यह व्याख्या करे कि एक समयकी उपलब्धि होनेसे इसका नाम है सहोपलम्भ। मायने तत्त्व एक समयमे ही पाये जायें उसे कहते है सहोपलम्भ हेतुमे एक विज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करें तो यह प्रयास भी उनका व्यर्थ है, क्योकि एक समयकी उपलब्धि होनेसे यदि एकता मान ली जाती है तो एक क्षणमे रहने वाले जो अनेक ज्ञान हैं वे भी तो एक साथ ही पाये जा रहे हैं तब वे भी एक बन बैठे। तो एक साथ पाए जाने वाले अनेक ज्ञानोमे यह हेतु अनैकान्तिक दोषमे दूषित है। क्योकि वे सब ज्ञान एक ही समयमे उत्पन्न हो रहे ऐसा बराबर समझा जा रहा है। शङ्काकारने जो सहोपलम्भ हेतुसे विज्ञानमात्र एक तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए जो दो चन्द्रका दृष्टान्त दिया था और उससे यह सिद्ध करना चाहा था कि जैसे दो चन्द्रका दर्शन भ्रमरूप है, सहोपलम्भ है। एक साथ दो चन्द्र दिख रहे हैं तो वहाँ यह सिद्ध होता है कि दो चन्द्र नही हैं, किन्तु एक है इसी तरह नील पदार्थ और तद्विषयक ज्ञान ये एक साथ पाये जा रहे इस कारण ये भी भिन्न भिन्न नही है किन्तु एक हैं। सो यहा दो चन्द्रका दृष्टान्त देना साध्य साधनसे विकल है अर्थात् इसने न साध्य पाया जा रहा न साधन पाया जा रहा। जहाँ साध्य और साधन न पाये जायें, वह दृष्टान्त दृष्टान्त ही नही हो सकता। यहाँ साध्य तो है भेद सिद्ध करना और साधन बनाया है सहोपलम्भ। तो दो चन्द्र दिख रहे हैं उनमे भेद भी नही है और उस प्रकारकी उपलब्धि भी नही है। वस्तु स्वरूपमे स्वलक्षण की ये बाते निश्चित होती हैं। पर जो भ्रान्ति हैं, दो चन्द्र हैं, भ्रम है उनमे न तथोपलम्भ और न भेद दोनो ही सम्भव नही हो सकते। और, यदि दो चन्द्रोमे अभेद भी सत्य माना जाय और तथोपलम्भ भी सत्य माना जाय तो भ्रम न कहलायगा। फिर यो दो चन्द्र सही ही मानने पड़ेंगे।

एक साथ उपलब्धि व अनुपलब्धिकी भी अभेदमाध्यके साथ व्याप्तिका अनियम—शङ्काकार कहता है कि असहानुपलम्भ अर्थात् एक साथ नही पाये जा रहे इस हेतुसे अभेदमात्र सिद्ध हो जायगा याने भ्रान्त भी साधन हो उस साधनसे भी साध्यरूप अभेद सिद्ध हो जायगा, क्योकि अभावमें दोनो अभावोका होना सम्भव नही है, यहाँ प्राकृतिक अभाव है दो चन्द्र। दो चन्द्र तो नही हैं इसलिए वह अभावरूप है और उसमे सहानुपलम्भका अभाव और अभेदका अभाव ये साध्य साधन भी अभावरूप है। तो अभावके अभावका होना सम्भव नही है, इस कारण दृष्टान्तको साध्य और साधनसे रहित बताना युक्त नही है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि इस तरह यदि भ्रान्तिको भी साध्य साधन वाला बना लोगे तो अर्थके स्वभाव का कभी परिचय ही न हो सकेगा। सभी विज्ञान स्वलक्षण हैं, उनके क्षणक्षयका, विविक्त जितनी भी

संततिका भ्रम है उसका भी अनुमान ज्ञानमे परिचय हो जायगा फिर तो सभी विज्ञान केवल एकमात्र हो जायेंगे। उनकी सिद्धि अगर अन्यापोहके द्वारा सिद्ध करना चाहोगे तो अन्यापोहमात्र हेतुसे तो अन्य पोह ही सिद्ध होगा। उससे अर्थस्वभावका ज्ञान नही हो सकता। और भी देखिये। एक साथ उपलब्धि हो रही है, यही तो इस हेतुका अर्थ कर रहे हो याने दो चन्द्र एक साथ दिख रहे, ऐसा ही तो दृष्टान्त दे रहे और ऐसी ही प्रकृत सिद्धि करना चाहते हो तो यहाँ हेतु असिद्ध है। जैसे कभी एक पदार्थ मे जिन्होने दृष्टि लगाई है ऐसे अनेक पुरुष बैठे हो, जैसे कि राजदरबारमे बहुत दर्शक जन हैं - राजा भी बैठा है और कोई एक नर्तकी नृत्य कर रही है तो सभी लोग उस नर्तकीपर दृष्टि लगाये हैं। अथवा जो दूसरेके चित्तकी बात जानने वाले हो वे सब अर्थात् एक पदार्थकी ओर जिन्होने दृष्टि लगाई है ऐसे पुरुष एक अर्थमे लगी हुई पुरुषबुद्धिको और दूसरेके चित्तमे आये हुए अर्थको तो नही जानते हैं। तब हेतु असिद्ध हो गया क्योकि वहाँ व्याप्ति न बन सकी। एक साथ उपलब्धि हो रही है फिर भी वे एक नही है अनेक हैं, और स्पष्ट बात तो यह है कि एक साथ उपलब्धि भी बनी रहे और भेद भी बना रहे उसका निषेध नही है, क्योकि प्रत्येक पदार्थकी उत्पत्ति अपने अपने कारणोके नियमसे होती हैं। सारे पदार्थ एक साथ पाये जा रहे किन्तु हैं वे अपने स्वरूपमे भिन्न-भिन्न। सबका उपादान निज निजका अलग-अलग है। तो एक साथ पाये जाये इनसे पदार्थोमे अभेद सिद्ध करना यह नही बनता, क्योकि एक साथ पाये जानेका अभेदके साथ व्याप्ति नहीं है। तो यह हेतु संदिग्ध व्यतिरेक है अर्थात् यहाँ व्यतिरेक व्याप्ति निश्चित नहीं, किन्तु उसमें संदेह है। एक साथ पाये जानेसे कही अभेद भी सिद्ध हो सकता है पर प्रायः भेद ही सिद्ध हो रहा है।

विज्ञानातिरिक्त पदार्थका उपयोग करते हुए भी अतिरिक्त अर्थके न माननेका आश्चर्य – यह एकान्त विज्ञानवादी जिसकी दृष्टि विपरीत हो रही दूसरो को समझानेके लिए शास्त्रको रचता हुआ या परमार्थसे शास्त्रको जानता हुआ उन दोनोको और उस तत्त्वज्ञानको निराकृत करता है कि यह कुछ नही है, विज्ञानमात्रकी बात कह रहा और शास्त्र समझ रहा, दूसरेको समझा रहा, अनेकतत्त्वज्ञान कर रहा और फिर भी अन्य चीज कुछ नही मानता तो कितने आश्चर्यकी बात है ?

विज्ञानमात्रके आग्रहमे कहे गये वचनोकी निग्रहार्हता – विज्ञानमात्रके आग्रहमे उत्पन्न वचन हैं याने अपने इष्टको सिद्ध कर सकने लायक वचन नही है, और अपने पक्षसे विपरीत पक्षमे दोष भी नही दे सकते, इस कारण यह तो निग्रहके योग्य है। इसका वचन न कुछ सिद्धि कर सकता है न किसीकी बातमें दूषण दे सकता है, क्योकि यह तो विज्ञानमात्र सिद्ध करनेपर तुला हुआ है। तो इसका कोई भी ज्ञान समीचीन नही है, इस कारण इसकी दृष्टि मिथ्या ही है। शङ्काकार कहता है कि यह

कैसे कह दिया कि विज्ञानवादियोके यहाँ कोई भी सम्वेदन सच्चा नहीं है । देखिये ! ज्ञानाद्वैत तो सच्चा है, केवल एक विज्ञानमात्र है। अन्य बाह्य पदार्थ कुछ नही है । इस प्रकारका जो सम्वेदन है वह तो सही बनता है । इसके उत्तरमे कहते हैं कि विज्ञानवादियोका विज्ञानाद्वैत समीचीन नही है। जब उस विज्ञानाद्वैतसे यह प्रश्न किया जायगा कि उसकी जानकारी स्वतः होती है या परसे होती है ? तो दोनो ही प्रकारमे जानकारी सम्भव न बनेगी । जैसे एक ब्रह्माद्वैतवादियोका भी यह प्रश्न जब किया जाता है कि उसका परिचय स्वत है या परत ? तो वहाँ ब्रह्माद्वैतका सिद्धान्त निराकृत हो जाता है । इसी प्रकार विज्ञानाद्वैतमे भी पूछा कि जानकारी स्वत. है या परत ? किसी प्रकार प्रतिपत्ति सम्भव नही है। बात वहाँ यह है कि जो सांश विज्ञान है अर्थात अशसहित जो विज्ञान है वह कथञ्चित् क्षणिक है ऐसी प्रतीति उसके सम्बंध मे है । परन्तु जो निरश विज्ञान है उसका सम्वेदन किसी भी प्रकार नही होता और सम्वेदनके अनुसार ही प्रतीति माननी चाहिए ऐसी प्रतीतिके अनुसार जब निरीक्षण करते है तो विज्ञानवादियोका यह विज्ञानाद्वैत मिथ्या सिद्ध होता है ।

विज्ञानमात्रकी सीमाका प्रश्न अन्तिम उपसहार—विज्ञानाद्वैतवादियो का यह विज्ञान अनन्त है और वह चित्तक्षणरूप है याने जो विचार उठा, जो ज्ञान बना ऐसा एक एक निरश निरशज्ञान विज्ञान कहलाता है तो विज्ञानवादियोने भी निरशज्ञान माना, जिस ज्ञानके और अंश नहीं किए जा सकते । अंश होते होते ऐसा परम अश जिसका आगे अश न हो, यो है विज्ञान क्षण विज्ञानवादियोका तत्त्व और ब्रह्माद्वैतवादी भी ब्रह्मको ज्ञानस्वरूप मानते हैं । वे ऐसा निरश मानते हैं कि सर्वलोक मे एक ही विज्ञान फैला हुआ है । ब्रह्म भी निरश है, उसका अवसर नही मानते । तो जिस निरश व्यापक एक ज्ञानकी स्वत प्रतिपत्ति हो तो ग्राह्याकार ग्राहकाकारका भेद मानना ही होगा । परत प्रतिपत्ति हो तो वह पर मानना ही होगा फिर अद्वैत कहाँ रहा ? इसी प्रकार विज्ञानवादियोके विज्ञानकी स्वत प्रतिपत्ति है तो वहा ग्राह्याकार और ग्राहकाकार मानना ही होगा । यदि परत. प्रतिपत्ति है, विज्ञानवादीने जो पर माना है वह द्वैत हो गया, अद्वैत कहा रहा ? तो इस प्रकार अन्तरङ्ग अर्थका एकान्त करनेपर केवल ज्ञान ज्ञानमात्र ही है, ऐसा एकान्त करनेपर अनुमान आगम आदिक जो भले उपाय तत्त्व है वे सम्भव नही हो सकते ।

वहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभास निह्नवात् ।
सर्वेषा कार्यसिद्धि स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥ ८१ ॥

वहिरङ्गार्थताका एकान्त करनेपर प्रमाणाभासका लोप हो जानेसे विरुद्धार्थ कथनकी भी सिद्धिका प्रसङ्ग—वहिरङ्ग पदार्थका एकान्त माननेपर प्रमाणाभास सिद्ध न होगा और तब सभी दार्शनिकके या सभी पदार्थोके अपने अपने

कार्यकी सिद्धि हो जायगी। चाहे कोई विरुद्ध अर्थ भी कह रहे हों, पर जब अन्तरङ्ग अर्थ नहीं मानते, केवल बहिरङ्ग अर्थ याने ये सब बाह्य पदार्थ ही जाने जाते हैं तब प्रमाणाभास रहेगा नहीं, सभी प्रमाण हो जायेंगे। तो सबकी अपने अपने इष्टकी सिद्धि हो जायगी। पूर्व कारिकामें बताया गया था कि अन्तरङ्ग अर्थ अर्थात् केवल विज्ञानमात्र तत्त्वका एकान्त करनेपर याने विज्ञानके अतिरिक्त अन्य कुछ न माननेपर विज्ञानकी सिद्धि नहीं की जा सकती। और है भी नहीं ऐसा कि पदार्थोंमें कोई तत्त्व न हो। अब इस कारिकामें कह रहे हैं कि जो लोग ज्ञान प्रमाणको नहीं मानते केवल बहिरङ्ग अर्थज्ञानको छोड़कर अन्य पदार्थ यही मात्र मानते तो उनके यहा प्रमाणाभास बननेसे सभीके कार्योंकी सिद्धि हो जायगी। फिर यह निर्णय देना कठिन है कि यह बात सही है, यह बात गलत है।

बहिरङ्गार्थतावादपक्षका वर्णन-- अब यहाँ बहिरङ्ग अर्थके एकान्त माननेवाले समर्थन करते हैं कि जो कुछ भी ज्ञान हो रहा है वह सब साक्षात् अथवा परम्परासे बाह्यपदार्थमें प्रतिबद्ध ही है। जैसे किसीको अग्निका प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है तो वह प्रत्यक्ष ज्ञान अग्नि पदार्थसे प्रतिबद्ध है। प्रतिबद्धका अर्थ है विषयभूत। अथवा वही विषय है जो ज्ञानने जाना। और, जैसे अग्निका किसीने अनुमानसे ज्ञान किया इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो वहाँ भी जो अग्निका परोक्षज्ञान हुआ वह भी अग्नि पदार्थसे प्रतिबद्ध है। स्वप्नमें कोई चीज दिखती है तो स्वप्नमें भी जो विचार चलता है, ज्ञान चलता है वह भी बाह्य पदार्थसे प्रतिबद्ध है। सभी ज्ञान विषयाकारसे प्रतिभासित होते हैं। कोई ज्ञान स्वतः अपना क्या स्वरूप रखेगा? बाह्य पदार्थोंका आकाररूपसे वह ज्ञान बनता है उससे यदि शून्य है ज्ञान तो और स्वयंज्ञानमें क्या रखा है? ज्ञानका जो निर्माण हुआ, ज्ञानका जो आकार बना, विकल्प बना वह बाह्य पदार्थ विषयोंके आकाररूप बना। तब वास्तविक तो बाह्य पदार्थ हैं ही इस बातको अनुमान प्रयोगसे समझ लीजिए कि यह विवादापन्न विज्ञान साक्षात् अथवा परम्परासे बाह्य पदार्थोंसे प्रतिबद्ध है, क्योंकि यहाँ पदार्थोंके आकारका ही प्रतिभास है। जैसे अग्निका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ तो उस प्रत्यक्षज्ञानमें भी अग्नि ही आयी और अग्निका परोक्षज्ञान हुआ अनुमान आदिकके ढंगसे तो वहाँ भी विषयमें अग्नि ही आयी। तो यो सर्व कुछ प्रतिभास बाह्य पदार्थोंसे प्रतिबद्ध है उसी प्रकार स्वप्न दर्शन भी बाह्य विषयाकारका ही निर्माण है याने ज्ञान स्वयं कुछ नहीं है, किन्तु बाह्य पदार्थोंका ही वह प्रकाश है इस तरह बहिरङ्ग अर्थ ही वास्तविक है ऐसा एकान्तः मानना ही चाहिए, क्योंकि सर्वज्ञान बाह्य पदार्थोंके विषयपनेका ही अभिनिवेश है। एक अभिप्राय है पदार्थ तो बाह्य ही सब कुछ है ऐसे बहिरङ्ग अर्थकी वास्तविकता माननेवालोंने अपना मन्तव्य रखा।

बहिरङ्गार्थताके एकान्तमें परस्पर विरुद्ध शब्द ज्ञानोका भी प्रमा-

र्थनः स्वार्थसम्बन्धकी प्रसक्ति अब बहिरङ्गार्थतैकान्तके समाधानमें कहते हैं कि देखिये मनुष्योंके जो संकेत हैं और उन संकेतोंसे प्रतिबद्ध जो पदार्थ हैं, शब्द हैं सो वहाँ परस्पर विरुद्ध शब्द और ज्ञानोंमें भी अपने अर्थका सम्बन्ध बन जायगा, ऐसा प्रसंग आ बैठेगा। यदि केवल बाह्य अर्थको ही माना जाता है और फिर उसका प्रतिभास मानकर बाह्य पदार्थोंकी मुख्यता दी जाती है। ज्ञान स्वयं अपने आपमें कोई सत्त्व नहीं रखता ऐसी बात कहनेपर जितने भी शब्द हैं, जितनी भी बुद्धियाँ हैं, चाहे वे परस्पर विरुद्ध हों लेकिन परमार्थसे उन सबका स्व अर्थसे सम्बन्ध मानना पड़ेगा। परन्तु है तो नहीं ऐसा। जैसे कोई बोले कि एक तृणके अग्र भागपर १०० हाथी बैठे हैं तो अब शब्द तो हो गए, कुछ प्रतिभास भी हुआ, मगर क्या वहाँ इस प्रकारका पदार्थ भी है? इस पद्धतिसे इन वचनोंका अपने विषयभूत अर्थमें सम्बन्ध नहीं है। या स्वप्नादिकमें जो कुछ भी ज्ञान चलते हैं उन ज्ञानोंका भी उनके विषयभूत पदार्थमें सम्बन्ध नहीं है। जैसे सो तो रहे हैं कमरेमें और स्वप्न आया कि बहुत बड़ा तालाब है मगर है, मगरने मुझे पकड़ लिया, आदि जो नाना स्वप्नज्ञान होते हैं वहाँ ज्ञान तो हुआ पर न तालाब है, न मगर है, न कोई घटना ऐसी हुई है, लेकिन अब यहाँ बहिरङ्ग पदार्थोंका ही एकान्त किया जा रहा हो और प्रतिभास माना जाता हो औपचारिक चीज तो वहाँ ये सब चीजें आ जानी चाहिए। पर न तो तृणके अग्रभागपर १०० हाथी हैं और न स्वप्नमें समझा गया कोई पदार्थ है क्योंकि इस प्रकारका वहाँ सम्भव ही नहीं है, इस कारण बहिरङ्ग पदार्थका एकान्त मानना, अन्तरङ्ग ज्ञान कुछ भी नहीं है, ऐसा आग्रह संगत नहीं है।

शंकाकार द्वारा लौकिक व अलौकिक दो अर्थ करके दोषोपलम्भके निराकरणका प्रयास अब शंकाकार कहता है कि देखिये पदार्थ दो प्रकारके होते हैं, लौकिक और अलौकिक। लौकिकका अर्थ है जिसके विषयसे लोकको, साधारण जनोंको संतोष हो जाय वह तो लौकिक है सो वह उन लौकिक जनोंके लिये सत्यपनेसे माना गया, ज्ञानका विषयभूत है जिस विषयमें साधारण लौकिक जनोंको संतोष न हो, किन्तु शास्त्रके जानने वाले महान आत्माओंको संतोष हो वह अलौकिक अर्थ कहलाता है। सो अलौकिक अर्थमें स्वर्ग नरक आदिक आते हैं और स्वप्नमें होने वाले ज्ञानके विषयमें आते हैं और स्वप्नमें होने वाले ज्ञानके विषयमें आते हैं तो ये पदार्थ सब हैं। स्वप्नमें भी जो माने गए वे भी हैं। क्योंकि जो सर्वथा अविद्यमान हो ऐसे अविद्यमान पदार्थोंके प्रतिभास और वचन हो ही नहीं सकते। जो बात कभी भी न हो, ऐसा ही सत्त्व न हो उसका नाम संज्ञा वचन भी नहीं हुआ करता। अब रही खरविषाण जैसी बात तो भावान्तर स्वभाव रूपसे खरविषाण आदिकका प्रतिभास तो होता है। जैसे खरका भी प्रतिभास है, विषाणका भी प्रतिभास है। अन्य जगह सींग दिखती है यहाँ नहीं। तो भावान्तर स्वभावरूपसे खर विषाण आदिकका प्रति-

भाग होता है तब उसका सम्भव होना बन जायगा और परविषाण शब्दका वचन भी बन बैठेगा, क्योंकि वह अलौकिक पदार्थ है साधारण लोग के ज्ञानसे बहिर्भूत है।

अन्तरङ्ग अर्थ (विज्ञान) न मानकर मात्र बहिरङ्गार्थ माननेपर इष्ट सिद्धिकी अशक्यता—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह सब बात कहना भी एक अलौकिक विचित्र सी है। जाग्रत समयमें जो ज्ञान होता है वह निरालम्बन ही है, क्योंकि ज्ञान होनेसे स्वप्न प्रत्ययकी तरह। इस प्रकार परार्थानुमानके ज्ञान का जो बोध है सो परार्थानुमान ज्ञान अपने अर्थसे प्रतिबद्ध है या अपना नहीं, ऐसे अर्थसे प्रतिबद्ध है? यदि कहो कि वह परार्थानुमानका ज्ञान अपने अर्थसे नहीं किन्तु अन्य अर्थसे प्रतिबद्ध है तब फिर उस हीके द्वारा विचारका और विषयाकार प्रतिभास का हेतुमें व्यभिचार आता है। परार्थानुमान ज्ञान अगर विचार रूप है तो भी अपने अर्थसे प्रतिबद्ध नहीं है। तो किया गया ना व्यभिचार! अभी तो यह कहा जा रहा था कि जो कुछ भी ज्ञान होता है वह अपने विषयभूत अर्थमें प्रतिबद्ध होता है लेकिन यहां परार्थानुमान वाले ज्ञानको अपने अर्थमें प्रतिबद्ध नहीं माना जा रहा। यदि कहो कि परार्थानुमानका ज्ञान अपने विषयभूत अर्थसे प्रतिबद्ध है तो जितने और सम्वेदन हैं ज्ञान हैं उन सबका सविषय रूपसे विरोध हो जायगा, उनका आलम्बन सहितपना सिद्ध नहीं होता। परार्थानुमान ज्ञान अलौकिक अर्थका आलम्बन करनेसे लौकिक अर्थके आलम्बन करने रूप साध्यमें हेतुका व्यभिचार व विरोध न होगा। इस शङ्कापर कहते हैं कि लौकिक अर्थ और अलौकिक अर्थ इनके आलम्बन से रहित अनुमानके द्वारा हेतुका व्यभिचार और विरोध ज्योंके त्यों अवस्थित हैं। लोक और अलोक अर्थका जो कि परस्पर विरुद्ध हैं एक ही बार एक ही अनुमानमें उनका सम्भव नहीं हो सकता। इस तरह बहिरङ्ग अर्थका एकान्तपना भी समीचीन नहीं है जिस अन्तरङ्ग अर्थका एकान्तपना सही नहीं है। इस परिच्छेदमें दो विचारोंकी मीमांसा चल रही है। कोई लोग मानते हैं कि सिर्फ ज्ञान ही सत्य है, बाह्य पदार्थ मिथ्या हैं, तो कोई कहते हैं कि बाह्य पदार्थ ही सत्य हैं, ज्ञान तो उनका एक प्रतिभासमात्र है। सो यहां तक उन दोनों एकान्तोंकी मीमांसा करके यह सिद्ध किया कि केवल अन्तरंग अर्थका एकान्त करना भी समीचीन नहीं है और बाह्य पदार्थोंका एकान्त करना भी समीचीन नहीं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥८२॥

अन्तरङ्गार्थ व बहिरङ्गार्थ मानने विषयमें उभयैकान्त व अवाच्यतैकान्त का निराकरण—अन्तर्ज्ञानका एकान्त और बहिर्ज्ञानका एकान्त युक्तिसिद्ध न रहा। अर्थात् जो दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि एक विज्ञान ही तत्त्व है, बाह्य पदार्थ कुछ भी

तत्त्व नही है और कोई दार्शनिक ऐसा मानते कि ज्ञान क्या है ? वह तो पदार्थोंका एक प्रकाश है। तत्त्व तो बाह्य पदार्थ ही है। यो दोनो दार्शनिकोंके एकान्त जब निराकृत हो गए तब तृतीय दार्शनिक कहता है कि अन्तर्ज्ञेय एकान्त बहिर्ज्ञेय एकान्त का एक साथ मानना स्वीकार कर लीजिए। जब दोनो एकान्तोमे विरोध है और एकान्त सही नही बनता तब दोनो ही मान लीजिए। इसके उत्तरमे कहते हैं कि जो लोग स्याद्वाद नीतिसे विद्वेष रखते है अर्थात् अपेक्षा और दृष्टि बनाकर धर्मका निर्णय नही करते है उनके यहाँ इन दोनो एकान्तोका एक साथ मानना विरोध है। अत उभय एकान्त भी सही तत्त्व नही है। तब चतुर्थ दार्शनिक कहता है कि तब तो अतरग एकान्त और बहिरग एकान्त दोनोंकी अवाच्यता स्वीकार कर लीजिए अर्थात् यह तत्त्व अवक्तव्य ही है। इसके समाधानमे कहते है कि यह बात तो स्ववचनबाधित है और इस स्ववचनबाधितताका वर्णन पहिले अनेक बार किया जा चुका है। तत्त्व अवक्तव्य है तो गुण भी कैसे अवक्तव्य बन गया ? अत स्याद्वादका आश्रय करनेपर कहा जाय तो कोई दोष नहीं है और स्याद्वादके आश्रयमे यह बात सिद्ध होती है कि कथञ्चित् अन्तरङ्ग तत्त्व है परमार्थ, कथञ्चित् बहिरङ्ग तत्त्व है परमार्थ। और क्रम विवक्षामे दोनो ही बातें है और एक साथ कहा नही जा सकता इस कारण अवक्तव्य है। अब इस ही बातको विवरण सहित बताते हैं कि किस दृष्टिमे किस प्रकारसे यह तत्त्व सिद्ध होता है ?

भावप्रमेयापेक्षाया प्रमाणाभासनिह्नव ।
बहि प्रमेयापेक्षाया प्रमाणं तन्निभ च ते ॥ ८३ ॥

स्याद्वादका आश्रय करनेपर अन्तर्बाह्य अर्थका यथार्थ निर्णय— भावप्रमेयकी अपेक्षामे तो प्रमाणाभासका अपलाप निराकरण होता है। तो जब भाव प्रमेयकी दृष्टि रखते हैं, भावप्रमेय है ज्ञानतत्त्व, जो जान रहा है जो दिखता है उसकी मुख्यतासे देखते है तब प्रमाणाभास कुछ नही रहता और जब बाह्यप्रमेयकी अपेक्षासे देखते हैं तो प्रमाण भी है कोई और कोई प्रमाणाभास भी है ऐसा हे प्रभो ! आपके सिद्धान्तमे सही बताया गया है। जितने भी सम्वेदन है सभी सम्वेदन स्वसम्विदित होते है। जो भी ज्ञान होता है चाहे बाह्यपदार्थ विषयक भी ज्ञान हो तो चाहे बाह्य पदार्थके निर्णयमे थोडा समझना भी पडेगा, युक्तिका सहारा भी लेना पडेगा, किंतु जो ज्ञान जान रहा है वह ज्ञान चेतन है। 'है' और कोई कार्य कर रहा है ये बातें तो जानने वालेके ज्ञानमे स्पष्ट रहा करती हैं। तो स्वसम्वेदन कथञ्चित् प्रमाण है। उसकी अपेक्षासे सर्व प्रत्यक्ष है, सम्वेदनकी स्थितिमे इस सम्वेदन करने वालेके दो प्रकारके अनुभव चलते है, चाहे उसपर कोई उपयोग दे अथवा न दे। एक तो यह है — मै हूँ, इस तरहका प्रत्यक्ष रहता है। दूसरे समझदार हू, चेतन हू तो सत्त्व और चेतनत्वकी दृष्टिसे सभी ज्ञानोंमे स्वसम्वेदनकी प्रमाणता है, उसकी अपेक्षासे देखा

जाय तो सभी सम्वेदन प्रत्यक्ष है । इस दृष्टिमें कुछ भी प्रमाणाभास नहीं है । यहाँ यह बात समझनी चाहिए कि जैसे किसी पुरुषने सीपको चाँदी समझा याने वहाँ सीप है, चाँदी नहीं है और उस सीपको चाँदी समझा तो बाह्य पदार्थोंके निर्णयमें तो युक्ति और भ्रम होगा मगर उस समझमें भी चाहे चाँदी ही समझा पर जो ज्ञान बन रहा है जो प्रतिभास हो रहा है वह उसको स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है, उसकी दृष्टिसे प्रमाणाभास कुछ नहीं है । यहाँ तो ज्ञान है और उसका परिणमन चला करता है, वहाँ प्रमाणाभास कुछ नहीं है । स्वसम्वेदनकी अपेक्षासे सभी सम्वेदन प्रत्यक्ष हैं । इस बातमें क्षणिकवादी भी विवाद नहीं करते । उनके यहाँ भी ऐसा सिद्धान्त माना है कि समस्त चित्तोंके चेता अर्थात् ज्ञानक्षण आत्मसम्वेदन रूप होते हैं और प्रत्यक्ष होते हैं याने प्रत्येक ज्ञानक्षण अपने स्वरूपका सम्वेदन करता है अतएव प्रत्यक्ष है । हाँ, यह बात अवश्य है कि उनका यह स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष निर्विकल्प है । ऐसा जो क्षणिकवादी कहते हैं वह अयुक्त है, क्योंकि स्वका और पदार्थका निश्चय किए बिना प्रत्यक्षपनेकी उपपत्ति नहीं होती है । जिस किसी भी वस्तुको प्रत्यक्षसे जाना तो उस जाननेके सम्बन्धमें दो बातोंका निश्चय है । एक तो जो पदार्थ जाना जा रहा है उस पदार्थका जानन हो रहा है, दूसरे जो स्वयं जानन बन रहा है वह सम्वेदन अपने आपमें प्रत्यक्ष हो रहा है । तो जैसे किसी भी पदार्थको हम समझते हैं वहाँ दो निर्णय पड़े हुए हैं— एक निर्णय तो यह है कि यह पदार्थ ऐसा ही है, अमुक यह ही है । दूसरा निर्णय यह कि यह मैं जो जान रहा हूँ यह ज्ञान मेरा सही है । तो प्रत्येक ज्ञानोंमें अपने आपका और बाह्य पदार्थका निर्णय बसा हुआ ही रहता है, इस कारण किसी भी सम्वेदनको निर्विकल्प नहीं कह सकते । प्रत्येक ज्ञानमें विकल्प है, साकार है, प्रतिभास है, वस्तु-विषयक परिच्छेदन है । हाँ, रागद्वेष विकल्प न रहें ऐसा भी ज्ञान होता है, यह कहा जाय तो यह युक्तिसङ्गत बात है ।

सम्वेदनपद्धतिसे सवेदनोंको प्रत्यक्ष न माननेमें दोषापत्तिका दिग्दर्शन सर्व सम्वेदनके प्रकारसे प्रत्यक्ष है, ऐसा न माननेपर अर्थ यह होगा कि उस ज्ञानका किसी अन्य हेतु आदिकसे अनुमान किया जायगा । जिस सम्वेदनने किसी पदार्थको जाना, पदार्थको तो जान लिया । अब उस ही सम्वेदनको यदि प्रत्यक्ष स्वयं न माना जाय, अन्यसे उसको प्रमाण माना जाय तो इसका अर्थ है कि जितनी भी बुद्धियाँ होती हैं उन सबका अन्य चिन्हसे प्रमाण बनेगा । और कोई यह कहे कि अन्य चिन्हसे प्रमाण बनना आदिक हमें इष्ट है तो ऐसा इष्ट हो सकना युक्त नहीं हो सकता । क्योंकि उस परोक्ष ज्ञानका ग्रहण करने वाला कोई साधन नहीं है । मीमांसकका सिद्धान्त है ऐसा कि जितने भी ज्ञान होते हैं वे सब बाह्य पदार्थोंको जाना करते हैं । पर ज्ञान खुदका ज्ञान नहीं कर पाता । तो इसके मायने यह हुआ कि ज्ञान परोक्ष रह गया तो ऐसे परोक्ष ज्ञानको जता देवे ऐसा कोई साधन नहीं है । उस बुद्धिके प्रकट

करनेके लिए कोई कहे कि पदार्थका ज्ञान हुआ यही लिङ्ग बन जायगा। ज्ञान किसी पदार्थका ज्ञान तो करता ही है। तो वही ज्ञान चिन्ह बन जायगा। जिससे कि इस सम्वेदनका पता हो जाय तो यह बात भी युक्त नही है। क्योकि वह साधनके विशेषण रूप सिद्ध नही हो सकता। वे तो सब समान है। किसी चिन्हसे जाना तो चिन्हका ही ज्ञान हुआ, सम्वेदनको कैसे जाने ? वहा भी अन्य अनुमान बनाना पडेगा और फिर समझिये – जो ज्ञान स्वय अप्रत्यक्ष हुआ वह पदार्थके ज्ञानसे अनुमानसे लगाया जाय, इस प्रकारका जो अर्थ ज्ञान है सो क्या वह कर्मरूप होकर अर्थको प्रकट करे ऐसा क्या उस परोक्ष ज्ञानका साधन माना जायगा ? पदार्थ तो असिद्ध है तो प्रकट-पना भी असिद्ध हो जायगा। सो ऐसी बात नही कह सकते, वह बाह्य देशसे सम्बन्ध रखता हुआ प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है। कोई ऐसी मनमे शका न रखे कि पदार्थ तो दूर है ज्ञान दूर है। तो पदार्थकी असिद्धता होनेसे पदार्थकी प्रकटता भी असिद्ध हो जायगी सो बात नही।

ज्ञानके अस्वसवेदित्वकी विकल्पासहता—अच्छा बताओ ! वह अर्थको प्रकट करने वाला जो भाव है उसे पदार्थका धर्म मानते हो कि ज्ञानका धर्म मानते हो ? यदि कहो कि पदार्थका जो प्रकाश होता है, पदार्थकी जो समझ बनती है वह पदार्थका धर्म है। तो पदार्थका परिज्ञान करने वाले ज्ञानमे फिर इसकी कोई विशेषता न रही, क्योकि ज्ञान भी पदार्थका परिच्छेद करने वाला है और परिच्छेदन धर्म अर्थ मे भी आ गया तब पदार्थको जानने वाले ज्ञानसे कोई विशेपना न रही। अर्थ प्राकट्य मे तो उसकी असिद्धि है। वह साधन बन ही नही सकता है। अर्थ परिच्छेदक ज्ञानसे जो समानता है तो इसके मायने यह हैं कि जैसे अर्थ परीक्षक हैं अनुमानकी अपेक्षा रखना है इसी प्रकार अर्थ प्राकट्य सम्वेदन सभी अनुमानकी अपेक्षा रखने लगेंगे या जिस ज्ञानको स्वसम्वेदी नही माना है तो वह अन्य अनुमान आदिककी अपेक्षा करता है इसी प्रकार अर्थ प्राकट्य नामका अर्थ धर्म भी अन्य अनुमानकी अपेक्षा करने लगेगा। ज्ञान जो कि परिच्छेदक किया गया वह बन जाय प्रत्यक्ष यह बात ठीक नही कही जा सकती। जैसे कि अन्य सतानके द्वारा जो अर्थका परिच्छेद किया गया याने अन्य पुरुषमें उत्पन्न होने वाले ज्ञान क्षणोसे जो पदार्थ परिज्ञान होता है उससे दूसरे अर्थका परिचय तो न हो जायगा। इस कारणसे मानना होगा कि सम्वेदन प्रत्येक अपनी दृष्टिमे प्रत्यक्षरूपसे ही है तभी बाह्य पदार्थका वह प्रत्यक्ष कर सकता है, ऐसा नही हो सकता कि ज्ञान तो स्वय प्रत्यक्ष न रहा करे और बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष बन जाया करें। शङ्काकार कहता है कि बाह्य पदार्थ तो प्रत्यक्षरूप हैं इस कारणसे उन बाह्य पदार्थोंका धर्म जो अर्थ प्राकट्य है वह भी प्रत्यक्ष सिद्ध हो जायगा। सो यह शङ्का बिल्कुल असगत है यदि अर्थ धर्म प्रत्यक्षभूत हो जाता तो इसके माने यह है कि पदार्थ स्वत प्रत्यक्ष बन गया पर ऐसा है कहाँ ? पदार्थ स्वत. प्रत्यक्ष बनता

कहते हैं ? जो ज्ञान जान रहा है वह ज्ञान परोक्ष है और पदार्थमें यदि प्राकट्यमें आता जा रहा सो प्रत्यक्ष है यह प्रकट हो [illegible] जा रहा है वह परोक्ष है। यदि ऐसी आशङ्का करो कि पदार्थ स्वयं, प्रत्यक्ष बन रहे हैं, [illegible] ज्ञानमें प्रतिभासमान जो पदार्थ है वह पदार्थ भी प्रत्यक्ष हो जायगा। ऐसी आशङ्का भी सही नहीं है क्योंकि ज्ञानमें प्रतिभासमान हुए पदार्थोंको यदि प्रत्यक्ष मान लोगे तो फिर संशय अर्थात् [illegible] पुरुषके उत्पन्न होने वाले ज्ञानमें भी जो कि यथावत् प्रतिभासमान होते हैं वह भी उस पदार्थका प्रकाशक हो जायगा अर्थात् ज्ञान का और कोई और प्रत्यक्ष भी [illegible] किसी प्रकट हुआ है, [illegible] क्योंकि सब ही ज्ञान संशयमें होने वाले ज्ञानको भी प्रत्यक्ष मानना होगा।

अर्थप्राकट्यको स्वसंवेदी माननेपर विडम्बना— यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो प्राकट्य है वह तो प्रमाता पुरुषके स्वसम्विदित हो रहा है, तब उसी प्राकट्यके दृष्टिकोणसे उस प्राकट्यमें विशेषता हो जायगी सो भी नहीं कह सकते क्योंकि प्राकट्यमें जो अर्थका प्रकाश हुआ है वह ज्ञाता पुरुषके स्वसम्विदित है और इस कारणसे उसका फिर हो जानने प्रसिद्ध है, ऐसा माननेपर यह बतलावें कि पदार्थका धर्म स्वसम्विदित हो कैसे जायगा ? ये घट पट आदिक पदार्थ ये क्या स्वयं स्वसम्विदित हैं ? ये अपने आपको खुद जान लेते हैं क्या ? जब ये अचेतन घटादिक पदार्थ अपने आपको खुद जान नहीं सकते हैं तो फिर ये पदार्थके धर्म स्वसम्विदित कैसे बन जायेंगे ? सो ये शङ्काकार मीमांसक ज्ञानको तो अस्वसम्विदित मान रहे और अर्थ स्वरूपको, अर्थ प्रकाशको स्वसम्विदित मान रहे तो भला अब सोचो कि कैसे ये विपरीत बुद्धि वाले न कहे जायें ? सभी लोग जानते हैं कि घट आदिक पदार्थ स्वयं अपने आपको नहीं जानते और जानने वाला यह पुरुषका ज्ञान प्रकाश, यह खुदको जान सकता है। लेकिन यह तो विपरीत बात ही बनी जा रही है कि ज्ञान तो होता है अस्वसम्विदित और अर्थ स्वरूप होता है स्वसम्विदित, इस कारणसे जो परिच्छिद्यमान भाव है, मायने अर्थका प्रकाश है यह ज्ञानसे उत्पन्न हुआ पदार्थका धर्म है तो ऐसे अर्थ ज्ञानका उस परोक्षज्ञानसे भेद कैसे रहेगा जिससे कि अर्थप्रकाशका वह ज्ञान साधन बन सके। अन्ततोगत्वा अर्थात् सब कुछ हैरान होनेके बाद यह ही मानना पड़ेगा कि प्रत्येक सम्वेदन सम्वेदनकी अपेक्षासे प्रत्यक्ष है, यहाँ प्रमाणाभासकी गुन्जाइश नहीं होती।

अर्थप्राकट्यको स्वसंविदित माननेपर परोक्षज्ञान माननेकी निष्प्रयोजनताका प्रसङ्ग— इस प्रसंगमें यह बड़े आश्चर्यकी बात चल रही है कि यह शङ्काकार ज्ञानको तो अस्वसंविदित मान रहा है याने ज्ञान अपने आपको खुद जानता नहीं है, और जो पदार्थका प्रकाश है उसे स्वसम्विदित मान रहा है कि पदार्थका यह प्राक-

ट्य अपने आप ही समझा जा रहा है, तो कैसे कहा जा सकता है कि ऐसा कहने वाले की बुद्धि विपरीत नहीं है। और इस ही कारण जो अर्थ प्रकाश है, जिसे अर्थ धर्म कहा, पदार्थका ज्ञान कहो, हुआ तो ज्ञानसे ही उत्पन्न मगर माना जा रहा है पदार्थका धर्म, तब उसमे परोक्षज्ञानसे विशेषता क्या आयी ? जिस कारणसे वह अर्थ प्रकाश उस ज्ञानके परिचयका साधन बन सके। अब जैसा पुरुष आत्मा और यह अर्थ प्राकट्य इनमे यदि यह कहेगे कि आत्मा तो स्वसम्विदित है इस कारणसे अर्थ प्राकट्यसे अन्तर आ जायगा। तब देखिये ! कि परोक्ष ज्ञान और स्वसम्विदित पुरुष इन दोनोंमे से और परोक्षज्ञान और स्वसम्विदित अर्थ प्रकाशसे किसी भी एक से पदार्थकी परिसमाप्ति हो जायगी। अर्थात् परिचय बन जायगा तब परोक्षज्ञान माननेसे फायदा क्या रहा ? स्वसम्विदित अर्थ परिच्छेदमे ही अर्थात् उस अर्थज्ञानसे ही अपने अर्थका ज्ञान सिद्ध हो जाता है। तब परोक्षज्ञान अकिञ्चित्कर हो जाता है। ये शङ्काकार मीमासक ज्ञानको परोक्ष मानते है याने ज्ञान पदार्थको तो जानता है, पदार्थका जो ज्ञान हुआ वह तो स्पष्ट है स्वसम्विदित है। समझमे आ गया कि यह अमुक पदार्थ है, अब उस पदार्थको जाननेवाले ज्ञानको समझनेके लिए अन्य उपायकी जरूरत पडती है। तो यहाँ ज्ञानको स्वसम्विदित नही माना, परोक्ष माना है, और जो अर्थ प्रकाश है वह स्वसम्विदित माना गया है। तो ऐसी स्थितिमे जब अर्थज्ञानसे ही अर्थका बोध हो गया तो परोक्षज्ञान माननेकी आवश्यकता क्या रही ? अथवा पुरुष स्वसम्विदित पदार्थ है उससे ही पदार्थका ज्ञान बन गया तो परोक्षज्ञान माननेका क्या प्रयोजन रहा? क्योंकि अब तो वही पुरुष अथवा पदार्थ करण बन गया। और आत्मा कर्ता है, पदार्थ कर्म है, इस कारण अब परोक्षज्ञानकी आवश्यकता क्या है ?

प्रमितिक्रियाके कर्ता कर्म करणकी कल्पनामे भी अनन्यता व स्वसविदितताकी सिद्धि यदि शङ्काकार कहे कि करणके बिना क्रिया सम्भव नहीं होती याने आत्माके स्वरूपकी क्रिया है पदार्थका जानना और वह क्रिया करणके बिना सम्भव नही है। और करणकेरूपमें ही हम परोक्षज्ञानको स्वीकार कर लेते हैं तो सुनो ! जब पुरुष अपने आपका सम्वेदन करता है तो आत्माकी उस सम्वेदन क्रियामे क्या करण होता है ? याने वहाँपर किसके द्वारा यह आत्मा अपने आपका ज्ञान लेता है ? यदि कहो कि स्वय आत्मा ही करण है। अर्थात् आत्मा अपने आपके द्वारा अपने आपका सम्वेदन कर लेता है तब ठीक ही है। वह ही आत्मा पदार्थके परिचय मे करण बन जाय। जो कर्ता है उससे ही अभिन्न वही करण बन जाय, इसमें किसी प्रकारका विरोध नही है। जो कर्तृक है याने जिसके कर्ताका विभाग नही किया जा सकता है वह भी करण बन जाता है। जैसे भिन्न-भिन्न चीजोंमे भिन्न-भिन्न कर्ता कर्म करण देखे जाते हैं ऐसे ही कूदनी कूदमे जो क्रिया हो रही है उसमे अभिन्न कर्तृपना भी देखा जाता है। तो कर्तासे अभिन्न भी करण होता है इस कारण अब

अर्थ परिज्ञान यदि पदार्थका ही धर्म है और उसके स्वसम्वेदनमे स्वयं वही करण बन जाता है तो लो। पुरुषकी भी क्या जरूरत रही ? परोक्षज्ञानकी भी क्या जरूरत रही ? वही पदार्थ अपने ही द्वारा अपना परिज्ञान कर लेगा तब पुरुष और पदार्थका परिज्ञान इनमे जब एक ही स्वात्माके द्वारा अर्थका परिचय बन गया तब द्वितीय परोक्षज्ञान करण माननेसे क्या फायदा है ? और, भी सुनो ! यदि अर्थज्ञानमे दिया गया हेतु व्यभिचारी है इसलिए हेतु नही रह सकता। क्योंकि अब तो ज्ञानके अभावमे भी दूर और व्यवहित पदार्थोंका सद्भाव सिद्ध हो गया याने पदार्थका लक्षण माना है पदार्थका परिज्ञान याने पदार्थका प्रकाश हो तब समझा जायगा कि पदार्थ है लेकिन दुनियामे अनेक पदार्थ ऐसे हैं कि ज्ञान नही होता और पदार्थ मौजूद है। और, जहाँ परोक्षज्ञान साध्य बनाया है वहाँ उस परोक्षज्ञानके अभावमे भी अर्थ स्वरूपका सद्भाव पाया जाता है। यदि परोक्षज्ञानके अभावमे भी अर्थका प्रकाशका भी अभाव बन जाय तब तो पदार्थका अभाव ही बन बैठेगा, परन्तु ज्ञानके अभावमे अर्थका अभाव तो नही होता, इस कारणसे अब यह सिद्ध न हो सकेगा कि अर्थका प्रकाश अर्थका धर्म है और अर्थका स्वरूप है।

ज्ञानको स्वरूपत: परोक्ष माननेका एकान्त करनेपर परिच्छिद्यमानत्व धर्मसे विशिष्ट या अविशिष्ट विशेषणकी अप्रतिपत्तिका प्रसग—शकाकार कहता है कि जाना जा रहा है इस रूपसे विशिष्ट अर्थका अभाव हो जायगा, तो होने दो यान जिस पदार्थका ज्ञान नही है उस पदार्थका ज्ञान नही है उस 'पदार्थका' अभाव है यह सिद्ध करना है। तो सिद्ध है याने वह पदार्थ ज्ञेयपनेसे विशिष्ट नही है तो जाननपनेसे युक्त पदार्थका अभाव है सो सही भी बात है कि जिस पदार्थका ज्ञान नही हो रहा वह पदार्थ जाननपनेसे विशिष्ट नही है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि जब परोक्षज्ञानकी ही सिद्धि नही है अथवा ज्ञानकी ही सिद्धि नही है, क्योंकि वह परोक्ष है। तब पदार्थकी या किसी भी तत्त्वकी प्रतिपत्ति हो ही नही सकती। विशेषणकी अप्रतीति होनेपर उस विशेषणसे विशिष्टपना कही सिद्ध नही हो सकता। जैसे कि अभी बताया गया कि जाननपनेके धर्मसे विशिष्ट पदार्थका अभाव है तो जाननपने धर्मसे विशिष्ट इतना भी कह सकते ? क्योंकि जब ज्ञानकी सिद्धि ही नही है। ज्ञानके अभावमें जाननपनेसे विशिष्ट पदार्थका अभाव है, यह बात बनेगी कैसे ! जब ज्ञान नही है और पदार्थ जाना जा रहा नही तो जाननपनेसे विशिष्ट विशेषण लग ही नही सकते तो 'पदार्थका स्वलक्षण अर्थज्ञानको माननेमे जो व्यभिचारपना दिखाया था वह सही रहता है, उसमें हेतुपना नही रह सकता।

ज्ञानको स्वरूपत: परोक्ष ही माननेपर उक्त विडम्बनाओंका फलित स्पष्टीकरण—प्रकरण यह चल रहा है कि यदि ज्ञान परोक्ष है, तो ऐसे उस परोक्ष

ज्ञानके समझनेमें चिन्ह क्या है ? याने किस उपायसे हम उस परोक्ष ज्ञानको समझ सकते हैं ? शंकाकारका सिद्धान्त यह है कि ज्ञानने पदार्थका परिज्ञान कर लिया। लेकिन ज्ञान खुदको नही जानता। जैसा कि जैन आदिक मानते है कि ज्ञान स्वयंको भी समझता है और ज्ञानमे जो विषय आया उस पदार्थका भी परिचय रखता है। किन्तु यह शकाकार ज्ञानको स्वसम्वेदी नही मानता, परोक्ष मानता है। तो यह प्रश्न होना प्राकृतिक है कि ज्ञानने तो पदार्थको जान लिया, अब ज्ञानको जाननेका क्या उपाय है कि इस ज्ञानने पदार्थको जाना और यह ज्ञान समीचीन है। इसके उत्तरमे शंकाकारने यह कहा कि पदार्थका जो परिचय होता है वही साधन है कि वह इस परोक्षज्ञानका अनुमान करा दे। तो इस सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर होते-होते यह सिद्ध हुआ कि पदार्थका जो ज्ञान है वह यदि पदार्थका धर्म है तो इस परोक्षज्ञानके परिचयका साधन नही बन सकता। तो इस ही समर्थनसे यह भी खण्डित हो जाता है कि कोई यह सोचे कि अर्थका धर्म बनकर अर्थज्ञान यदि परोक्षज्ञानके परिचयका साधन न बना तो ज्ञानका धर्म बनकर यह पदार्थ ज्ञान उस परोक्षज्ञानकी सिद्धिका साधक बन जायगा। सो यह भी खण्डित हो जाता है। मैं पदार्थको जानता हू ऐसी प्रतीति होनेसे आत्माके जो अर्थज्ञान जगा, जो अर्थ प्रकाश बना वह ज्ञानका धर्म है। और, वह परोक्षज्ञानके परिचयका साधन है। ऐसा माननेमे सीधा विरोध तो यों है कि आत्मा की जो वह बुद्धि है, जिसे कारण ज्ञान कहते हैं वह ज्ञान जब परोक्ष है तो वहाँ इस प्रकारकी प्रतीति ही नही जग सकती है कि मै पदार्थको जानता हू। इसी बलपर ही तो शंकाकार ज्ञानका धर्म कह रहा है कि मै पदार्थको जानता हू। ऐसी प्रतीति बन रही है किन्तु जिनके सिद्धान्तमे ज्ञान सर्वथा परोक्ष है उनके यहाँ यह प्रतीति बनना भी असम्भव है कि मैं पदार्थको जानता हू। तब जाननपनेके धर्म विशेषणसे रहित ही अर्थ बना और जो ज्ञानकी अपेक्षा रखनेका स्वभाव वाला बना उसे मान रहे हो परोक्षज्ञानका हेतु तो यह हेतु व्यभिचारी ही सिद्ध होता है। जहाँ जहाँ परोक्षज्ञान है वहाँ वहाँ अर्थका परिज्ञान है ऐसी व्याप्ति न बन सकनेसे और परोक्षज्ञानके अभावमें भी अर्थ स्वरूपके देखे जानेसे यह हेतु व्यभिचारित हो जाता है और पदार्थका निज-स्वरूप पदार्थका ज्ञान मानना खण्डित हो जाता है। तो यहाँ तो यह बात सिद्ध की गई कि परोक्षज्ञानके परिचयका साधन पदार्थ परिज्ञान नही है। शंकाकार जो यह समझाना चाहता था कि पदार्थका जो ज्ञान बना है यही सिद्ध कर देगा कि किसी ज्ञानके द्वारा यह ज्ञान बना है यो वह अर्थपरिज्ञान ज्ञायक उस ज्ञानका अनुमान करा देगा सो यह अर्थ प्रकाश परोक्षज्ञानका साधन नही बन सकता है।

अस्वसविदितताके सिद्धान्तमे इन्द्रिय प्रत्यक्षत्वकी अनुपपत्तिका प्रसग—अर्थप्रकाशकी परोक्षज्ञानसाधकताके निराकरणसे इन्द्रिय मन आदिकका प्रत्यक्ष भी खण्डित हो जाता है। मुझमें चक्षु आदिक इन्द्रिय है, रूपादिकका ज्ञान

अन्यथा न बन सकता था। इस अनुमानसे जो इन्द्रिय आदिकको प्रत्यक्ष माना जाता था वह भी निराकृत हो जाता है। शंकाकारसे किसी प्रसंगमे यह पूछा गया कभी कि यह बताओ कि चक्षु खुदको तो नही देखते। आँखें खुदकी आँखोको जानती नही हैं तो इन आँखोका भी स्पष्ट परिचय होगा कैसे कि मेरेमें आँख है। उसका उत्तर यो देता है शंकाकार कि इस अनुमानसे अपनी आँखोका अस्तित्व सिद्ध होता है कि मुझ मे चक्षु आदिक इन्द्रियाँ हैं, रूपादिकका ज्ञान होनेसे। यदि चक्षु आदिक इन्द्रियाँ न होती तो रूपादिकका ज्ञान नही बन सकता था। यह कहना भी इस निराकरणके प्रकरणसे खण्डित हो जाता है, क्योकि यह ज्ञान ये इन्द्रियाँ ये सभी अतीन्द्रिय होने के कारण परोक्ष ज्ञानसे कोई विशेषता नहीं रखती अर्थात् जैसे परोक्षज्ञानमे आसक्ति है इसी प्रकार इन सब ज्ञानोमे भी आसक्ति है। यदि कुछ विशेषता मानी जा रही हो इन्द्रिय और परोक्ष ज्ञान इनसे किसी भी एक भावेन्द्रिय आदिकके द्वारा जो कि सुसम्विदित है, पदार्थका परिचय हो गया। फिर दूसरा परोक्षज्ञान माननेसे फायदा क्या ? अरे वे भावेन्द्रिय ही तो ज्ञानस्वरूप हैं। और, भी देखिये ! कि द्रव्येन्द्रिय आदिक जो हेतु बताये गए हैं वे व्यभिचारी भी हैं। क्योकि ज्ञान नहीं भी हो रहा तो भी इन्द्रिय आदिक मौजूद ही हैं। जो ज्ञान उत्पत्तिके प्रति कारण है ऐसे इन्द्रिय अथवा मन इनमे अवश्य ही निरन्तर कार्यवत्ता रहे याने पदार्थका यह परिच्छेदन करता रहे ऐसा तो है नही। तो जिस समय इन्द्रिय और मन अपना कार्य नही कर रहे हैं अर्थात् पदार्थका परिज्ञान नही कर रहे हैं उस समय क्या इन्द्रिय और मन है नही ? हैं। तब ज्ञानके अभावमे भी जब इन्द्रिय और मन बन गए तो हेतु व्यभिचारी हो गया। तब सर्वथा परोक्षज्ञानवादी अपनी इन्द्रियको भी प्रत्यक्ष सिद्ध नही कर सकता है। इन्द्रिय आदिकका भी जो ज्ञान है वह भी परोक्ष ही रहता है। तो जब इन्द्रिय ज्ञान भी परोक्ष सिद्ध हो गया तो प्रत्यक्षसे भिन्नका जो अवभास है उसका स्वसम्वेदन होनेसे वह कथन प्रत्यक्ष विरुद्ध होता है, याने जाना तो जा रहा, सबकी समझमे आ रहा कि ज्ञान खुदका भी ज्ञान करता है। ज्ञानका स्वरूप समझनेके लिए किसी अन्य ज्ञानकी आवश्यकता नही है। लेकिन ये परोक्षज्ञानका ही आग्रह करने वाले शंकाकार ज्ञानकी परोक्षता मानते हैं सो वह अप्रत्यक्ष है और अनुमान विरुद्ध है। यदि सुखका ज्ञान, दुःखका ज्ञान परोक्ष हो जाय तो किसी भी जीवको हर्ष और विषाद उत्पन्न हो ही नहीं सकता। जैसे दूसरे आत्माका सुख दुःख दूसरेको प्रत्यक्ष नहीं है तो दूसरा अन्य हर्ष विषाद तो नही कर लेता। इससे मानना होगा कि ज्ञान स्वसम्वेदी ही होता।

प्रतिक्षण निरंश संवेदन प्रत्यक्षकी असिद्धि—जो दार्शनिक प्रतिक्षणवर्ती भिन्न भिन्न निरंश सम्वेदनको प्रत्यक्ष मानते हैं उनका यह मंतव्य युक्त नहीं बैठता, क्योकि जैसे अभी इस प्रकार प्रतिज्ञा की गई है कि समस्त सम्वेदन निरंश है, क्षण-

वर्ती हैं वह अनुभवमे नही आ रहा है वैसा शङ्काकारने माना नहीं। अनुभवमे आरहा है सम्वेदन स्थिर और तादात्म्यसे सुख दुःख आदिक बुद्धिस्वरूप स्थिर आत्माके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है हर्ष और विषाद। जिस किसी भी पुरुषमे हर्ष अथवा विषाद उत्पन्न होता है उसे वह प्रत्यक्ष अनुभवमे आता है और स्थिर आत्माके, जो द्रव्यापेक्षा शाश्वत है आत्मतत्त्वमे ही उस ही पर्यायका अनुभव हो रहा है। इसपर शङ्काकार कहता है कि यह अनुभव तो भ्रमपूर्ण है और हर्ष विषाद आदिकका अनुभव होता है और स्थिर आत्मामे अनुभव बताया है वह तो भ्रान्त है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते है कि हर्ष विषाद आदिकका अनुभव भ्रान्त नही है क्योंकि इस अनुभवमे बाधक कोई प्रमाण नहीं है और फिर यह बताये शङ्काकार कि सुख दुःख आदिक बुद्धिस्वरूप आत्माके जो हर्ष विषाद आदिक प्रत्यक्ष अनुभवमें आ रहे हैं और उनका भ्रान्त अनुभव उठता हो तो यह भ्रान्तपना सर्वथा है या कथञ्चित्? यदि कहोगे कि सर्वथा सब जगह सब समय यह भ्रान्ति चलती रहती है तब तो इसने परोक्ष ज्ञानसे कोई विशेषता नही आई, जो बात परोक्षज्ञानमे चल रही थी वही बात अब सब ज्ञानोमे मान ली गई है। तो इस प्रत्यक्षको क्षणिकवादी मान रहे थे तो उनके भी परोक्षज्ञानवादका प्रसङ्ग आ जाता है। तो सुख दुःख बुध्यात्मक अनुभवमे आने वाले इस स्थिर आत्माके हर्ष विषाद आदिकको भ्रान्त माना जाय तो सर्वथा भ्रान्ति माननेपर तो सदा वह परोक्षज्ञान बन जायगा और कथञ्चित् भ्रान्त माननेपर इतना तो स्पष्ट ही हो गया कि एकान्त नहीं रहा। स्वरूपमें भ्रान्त नहीं है पदार्थमे ही भ्रान्त है। यही तो कथञ्चित्का अर्थ है, सो यहाँ एकान्तकी हानि हो गई है और स्याद्वाद न्यायका प्रवेश हो गया है।

स्याद्वादन्यायके विरुद्ध भ्रान्ति अभ्रान्त, प्रत्यक्षत्व, अप्रत्यक्षत्व आदि के निर्णयकी असगतता ' सर्वत्र सर्वदा भ्रान्तिकी अप्रत्यक्षताकी समानता होनेसे केवल निर्विकल्प पदार्थ दर्शनमे ही परोक्षज्ञानसे समानता नही है किन्तु उसकी व्यवस्था करनेके कारणभूत विकल्प स्वसम्वेदनमे भी परोक्षज्ञानसे कोई अन्तर नही रहता, क्यो कि यहाँ भी यह विकल्प उठाया जायगा कि वह विकल्प सम्वेदन सर्वथा भ्रान्त है या कथञ्चित? यदि कहो कि वह विकल्प सर्वथा भ्रान्त है और भ्रान्त होनेपर भी प्रत्यक्ष है सो देखिये सर्वथा विकल्पने भ्रान्तपना माननेपर बाहरकी तरह स्वरूपमे भी भ्रान्ति की परोक्षता आ जायगी। तब प्रत्यक्ष अभ्रान्त होता है यह बात बाधित हो गयी। सो अब सम्वेदन स्वरूप भी भ्रान्त बन गया। यदि कहो कि विकल्प सम्वेदन कथंचित् भ्रान्त है तो इसमे स्याद्वादकी सिद्धि हो गई और स्याद्वादका निवारण करके यह दार्शनिक ठहर नहीं सका, सो इस कारण याने जिस कारण सर्वथा विकल्प भ्रान्त है या कथञ्चित्के विकल्प भ्रान्त है इन दोनों पक्षोमे परोक्षज्ञानसे कोई अन्तर न रहनेके कारण अनेकान्तकी सिद्धि अनिवार्यरूपसे हो गई।

स्वसंवेदनकी अपेक्षासे सब वेदनोंमें प्रमाणताका प्रमाण तथा बाह्यार्थ परिचयकी अपेक्षासे प्रमाण और प्रमाणाभासका निर्णय — इस प्रकरणसे यह सिद्धान्त मान लेना चाहिए कि ज्ञानकी अपेक्षासे कोई ज्ञान सर्वथा अप्रमाण नहीं होता। अर्थात् ज्ञान अपने स्वरूपके संवेदनमें प्रत्यक्ष है और प्रमाणभूत है। हाँ बाह्य अर्थकी अपेक्षासे प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था की गई है क्योंकि बाह्य अर्थकी अपेक्षासे ज्ञानको सम्वादक और विसम्वादक कह सकते हैं। जैसे कहीं सीपको जाना चाँदी तो यह विपरीत ज्ञान हो गया ना, तो इतना विपरीत ज्ञान होकर भी जो चाँदी जान रहा है वह अपने बोधकी ओरसे निर्भ्रान्त है। चाँदीको जानता हुआ भी यह चित्तमें यह समझ रहा है कि यह सही ज्ञान है। तो ज्ञानकी अपेक्षासे तो यह सम्वेदन प्रमाणभूत रहा। अब बाह्य अर्थकी अपेक्षासे देखा जाय तो वहाँ विसम्वाद है, वहाँ पदार्थ तो चाँदी नहीं है पर जान रहा है चाँदीका। तो बाह्य अर्थकी दृष्टिसे यह विपर्ययज्ञान कहलाता और ज्ञानकी दृष्टिसे कोई ज्ञान विपर्यय नहीं कहलाता। जिस समय जिस ही ढंगमें परिणति हो रही है अन्तरङ्गज्ञानमें वह तो सम्वादक है, सही समझ रहा है। जैसे कोई आकाशका केश और मच्छरका ज्ञान करे, यों भी आकाशमें किसी जगह ऐसा लगने लगता कि यहाँ बहुत लम्बे केश पड़ रहे हैं या यहाँ छोटे छोटे मच्छर उड़ रहे हैं अथवा कहीं केशका झुंड पड़ा हो वहाँ समझा कि ये सब मच्छर मँडरा रहे हैं तो इस स्वरूपमें भी ज्ञान करने वालेको सम्वाद नहीं है, संदेह आदिक नहीं है। तो आकाशमें केश आदिकका ज्ञान होना यह बाह्यमें विसम्वादक है ऐसा प्रमाणाभास है याने केश वहाँ नहीं हैं फिर भी जाना जा रहा है तो प्रमाणाभास हुआ, पर निजस्वरूपमें वह सम्वादक है तब वह केश या मच्छर समझ रहा है तो वहाँ सम्वाद है और प्रमाणभूत है। और ऐसे एक ही ज्ञानमें प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्थाका विरोध भी नहीं है। जैसे सीपको चाँदी जाना जा रहा है तो ज्ञान तो एक है मगर स्वरूप सम्वेदनकी अपेक्षा प्रमाण है और बाह्य अर्थकी अपेक्षासे अप्रमाण है। तो एक ही ज्ञानमें प्रमाणपना और प्रमाणाभासपना ये विरुद्ध नहीं बैठते, क्योंकि जीव एक है और उसमें आवरणका दूर होना ये भिन्न भिन्न प्रकारके हैं। उससे सत्य आभासका सम्वेदन और असत्य आभासका सम्वेदन होनेकी परिणति सिद्ध होती है। जैसे कालिमा आदिक दोष स्वर्णसे दूर हो जायें तो स्वर्णकी उत्कृष्ट अवस्थाका परिणमन बन जाता है उस ही तरह जब जीवमें ज्ञानावरणका कुछ निराकरण हुआ तो उसके अनुसार सत्य और असत्य आभास सम्वेदन चलेगा, इस प्रसंगमें कोई यह नहीं कह सकता कि जीव ही नहीं है कुछ। क्योंकि जीवको ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। तो उसमें उत्तरमें स्वामी समन्तभद्राचार्य कहते हैं।

जीव शब्द सबाह्यार्थ संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत् ।

जीव पदार्थकी सयुक्तिक सिद्धि — जीव शब्द बाह्य अर्थ सहित है अर्थात् जब जीव यह शब्द बना हुआ है तो यह निश्चित् हो जाता है कि इस जीव शब्दका विषयभूत अर्थ होना ही चाहिए यानी कोई जीव शब्दका वाच्य पदार्थ है तब तो जीव शब्दकी उत्पत्ति बनी है। तो जीव शब्द बाह्य अर्थसे सहित वर्तता है क्योंकि संज्ञा है, जो जो संज्ञा है, नाम है वह सब अपना वाच्यभूत अर्थ रखता है हेतु शब्दकी तरह। जैसे कि हेतु है तो वह अपने पक्षको लिए हुए है। त्रैरूप्यस्वरूप हेतु माना है। कोई पाँचरूप हेतु मानते हैं। किसी भी प्रकार कोई माने, जब हेतु शब्द है तो उसका वाच्यभूत अर्थ भी है। और भी देखिये माया आदिकके भ्रममें संज्ञायें बना करती हैं, वे भी अपने अर्थके साथ रहा करती हैं। माया शब्द कहा तो कुछ माया होती ही है। जैसे प्रमा अथवा प्रमाण वचन बोला तो समझो कि प्रमा भी कोई वास्तविक है और प्रमाण भी वास्तविक है।

देहसे अतिरिक्त जीवके सद्भावमें शङ्का और उसका समाधान — यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि जीव शब्द अर्थवान तो है, मगर जीव शब्दका अर्थ है अपने शब्द-स्वरूपसे अतिरिक्त जो शरीर इन्द्रिय आदिकका पिण्ड है वह है जीव। इस कारण अनादि अनन्त अमूर्त ज्ञानमात्र कोई जीव निश्चित नहीं होता है। जो देहादिक हैं, इनका पिण्ड है बस वही जीव शब्दका अर्थ है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह तो विभ्रम और विह्वलताकी स्थितिमें कहना हुआ है शङ्काकारका इस शङ्काकारने लोकरूढ़िका आश्रय किया है। अलौकिकताका आलम्बन नहीं लिया है, लोकरूढ़िका है? किसीने जीवका जो व्यवहार बनाया वही लोकरूढ़ि है। जैसे कहते है कि जीव गया जीव खड़ा हुआ, जीव ठहर गया तो ये बातें लौकिकजनोंकी व्यवहारकी हैं। गया, चला, ठहरा यह व्यवहार शरीरमें तो रूढ़ किया नहीं जा सकता, क्योंकि वह अचेतन है और वह भोगका आधार है अर्थात् भोक्ता तो आत्मा है उसका आधार शरीर है इस कारणसे शरीरमें गया, चला, ठहरा आदिककी रूढ़ि हो जाती है। इन्द्रियमें भी गए, चलनेकी रूढ़ि नहीं बनती, क्योंकि इन्द्रियाँ तो उपभोगके साधनमात्र ही हैं। इसी प्रकार शब्दादिक विषयोंमें भी गया चला, ऐसा जीव जैसा व्यवहार नहीं होता। शब्दादिक विषय तो भोग्यरूप हैं इसलिए उनका व्यवहार उस ढगसे ही होगा। तब फिर गया चला यह व्यवहार कहाँ हुआ? तो कहते हैं कि भोक्ता आत्मामें ही जीव है यह रूढ़ि बनी। चलना, बैठना, ठहरना आदिककी रूढ़ि भोक्ता आत्मामें बनायी गई है। शरीरादिकके कार्यभूत या शरीरादिक जिसके कार्य हैं ऐसे चेतनमें भोक्तृत्व भाव प्रयुक्त है, भोग क्रियाकी तरह। जैसे भोगरूप क्रिया चेतनमें घटित नहीं होती, क्योंकि वह अचेतन शरीरके द्वारा किया गया कार्य है, अतः अचेतन है। तो यह रूढ़ि ही कहलायी। जो अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूप जीव है वह तो ज्ञानानन्दका परिणमन करता हुआ रहता है। वह चले, ठहरे, बोले ये सब व्यवहार

और रहेगी है । अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि सुख दुःख आदिकका जो अनुभवन है वही भोग क्रिया कहलाता है और वह भोग क्रिया याने सुख दुःख आदिकका अनुभवन इस अन्वय और गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त रहने वाले चेतन में जो सर्व चेतन विशेषमें व्यापी है वही भोग क्रिया मानी जाती है और उस ही में भोक्तृत्व भाव है, क्योंकि वह शरीरादिकसे विलक्षण है । शङ्काकारका यहाँ यह अभिप्राय है कि जो गर्भ से लेकर मरण पर्यन्त रहने वाला पदार्थ है और जो सर्व चेतना विशेषमें रह रहा है उसमें भोगक्रिया मानी गई है । तो शरीरमें भोक्तृत्व भाव बने ऐसा दूषण नहीं आता, इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ठीक ही कह रहे हो पर जो गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त अन्वयी चेतन कहा जा रहा है बस वही आत्मद्रव्य है । जन्मसे पहिले और मरणके पश्चात् भी उस चेतनका सद्भाव पाया जाता है । यदि पूर्वापर चेतनका सद्भाव न माना जाय तो पृथ्वी आदिकके पिण्ड रूप शरीर और इंद्रिय विषयोंमें इसके चैतन्यस्वरूप आत्मामें अन्तर न रह सकेगा ।

चेतनमें पृथ्व्यादिकार्यत्वका अभाव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिकका कार्य चेतन है वह पृथ्वी आदिकसे विलक्षण बन जायगा सो यहाँ इस चेतनसे पृथ्वी आदिकका कार्य ही सिद्ध न किया जा सकेगा । इस कारण हमारा (शंकाकारका) यह कहना युक्त है कि चेतन पृथ्वी आदिकका कार्य है तो कार्य होनेके कारण पृथ्वी आदिकसे विलक्षण चेतन बन जायेंगे । अब इसका समाधान सुनिये ! प्रथम बात यह है कि चेतन पृथ्वी आदिकका कार्य नहीं है और पृथ्वी आदिकका कार्य बताकर पृथ्वी आदिकसे विलक्षणताकी बात नहीं कह सकते, क्योंकि यों तो फिर पृथ्वी आदिक कार्योंमें रूपादिकका समन्वय देखा जा रहा है । जो भी पृथ्वीका कार्य होगा उसमें पृथ्वीपनेके धर्म पाये जायेंगे । पर चेतनमें रूपादिक कहाँ पाये जा रहे । इस कारण चेतनको पृथ्वी आदिकका कार्य कहा जा रहा है वह संगत नहीं है ।

चेतन और अचेतन पदार्थोंके अस्तित्वकी सिद्धि—इस प्रकरणमें यह सिद्ध किया जा रहा है कि जितने भी शब्द होते हैं उन शब्दोंके वाच्यभूत पदार्थ अवश्य हुआ करते हैं । अगर वाच्यभूत अर्थ न हो तो शब्दकी उपपत्ति भी नहीं बन सकती । अतः जितने भी शब्द हैं समझना चाहिए कि उन सबका वाच्यभूत कोई अर्थ अवश्य है । और जब शब्दोंका वाच्यभूत अर्थ बन गया तो वह अर्थ स्थिर है । उस अर्थका परिज्ञान करने वाला यह ज्ञानात्मक जीव है । सो अर्थ भी वास्तवमें है और यह ज्ञान भी वास्तवमें है । यह ज्ञान उन अर्थोंको जानता है तो यहाँ दो धारायें बनी हुई हैं कि ज्ञान अपने आपको भी समझ रहा है और बाह्य विषयभूत पदार्थोंके विषयमें भी समझ रहा है । तो यों यह एकान्त नहीं कर सकते कि केवल विज्ञानमात्र अन्तरङ्ग अर्थ ही परमार्थ है, पुद्गल आदिक बाह्य अर्थ परमार्थ नहीं हैं । अथवा

पुद्गल आदिक बाह्य अर्थ ही परमार्थ है, अन्तरङ्ग विज्ञान स्वरूप परमार्थ नही है। ये दोनो एकान्त घटित नही होते। अत यही मानना होगा कि ज्ञानकी अपेक्षासे तो ज्ञानमात्र तत्त्व है और वहाँ विपर्यय नही है। बाह्य अर्थकी दृष्टिसे ज्ञानमे विपर्ययपना और सम्यक्पनाका परिचय किया जाता है।

चेतन अचेतनोमे सत्त्वादिका समन्वय होनेपर भी असाधारण धर्मकी अपेक्षासे भेदकी सिद्धि, शकाकार कहता है कि जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि आदिकमे सत्त्व है उसी प्रकार चेतनमे भी सत्त्व है। तो ऐसे सत्त्व वस्तुत्व आदिककी दृष्टियोसे यदि समन्वय हो जाता है तब चेतन भी पृथ्वी आदिकसे अत्यन्त भिन्न पदार्थ न रहेगा। इस शकाके उत्तरमे कहते है कि पदार्थमे असाधारण धर्मकी दृष्टिसे तात्त्विक भेद होनेपर भी सत्त्वादिक सम्भव होता है इस कारण सत्त्वादिक सम्भव है, ऐसा कहकर उनमे अभेद सिद्ध नही किया जा सकता। अब यहाँ शकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिक जो तात्त्विक भेद वाले पदार्थ है उनमे एक विकारीपनका समन्वय नही है इस कारण पृथ्वी आदिकमे तो भेद ही है। पृथ्वी जैसे अपने आपमे विकार किया करती है वैसे विकार जल आदिकमे तो नही हैं। पृथ्वीके विकार और तरहके हैं, अग्नि वायु आदिके विकार अन्य तरहके हैं तो एक विकारीपनका समन्वय नही है इस कारण पृथ्वी आदिकमे भेद ही है। जैसे कि नैयायिकोके सिद्धान्तमे प्रागभाव आदिक चार अभावोमे भेद भी माना है, प्रागभाव आदिक भेदोमे परस्पर अभावरूप एक विकारका समन्वय होनेसे जैसे वहाँ सर्वथा भेद माना है इसी प्रकार पृथ्वी आदिक तत्त्वोमे एक विकारीपन न होनेसे भेद ही है। तो इस शकाके उत्तरमे पूछते हैं—तो फिर क्या चेतन और पृथ्वी आदिक भूतोमे एकविकारीपनका समन्वय है ? वह तो नही है। फिर चेतन पृथ्वी आदिकसे भिन्न हो ही तो गए। वहा भेद नही रह सकता, ऐसा कैसे कहा जा रहा है ? याने चेतन तत्त्व विलक्षण भिन्न चीज है और पृथ्वी जल आदिक भिन्न चीजें हैं। इस कारण एकविकारीपनके समन्वयका अभाव होना सो भिन्नता है और वही तत्त्वान्तर है। तब यह बात चैतन्यमे भिन्नताको सिद्ध करती है, और अनादि अनन्तपनेको सिद्ध करती है। याने चेतन पृथ्वी, जल आदिकसे भिन्न है और अनादि कालसे अनन्तकाल तक रहता है।

जीवका स्वतन्त्र अस्तित्व — यहाँ मुख्यतया चार्वाक शङ्काकार ऐसे हैं जो जीवको बिल्कुल नही मानते। उनका कहना है कि जैसे घडीके पेंच पुर्जे इकटठे कर दिए गए तो घड़ी चलने लगती है इसी तरह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि इकटठे हो गए तो वहाँ जानना, देखना, चलना आदिक बनता है, किन्तु उनका इस तरहका अभाव रखना मिथ्या है। घडीके पेंच पुर्जे मिल जायें तो जो क्रिया होगी वह घडीके ढगसे ही तो होगी। इसी प्रकार पृथ्वी जल आदिक मिल जायें तो उनमे जो क्रिया

होगी, उनके अनुरूप ही तो होगी। समझ ज्ञान यह कैसे आ जायगा ? तो यह चेतना ये ज्ञान दर्शन पृथ्वी आदिक भूतमे भिन्न हैं और जब जीव शब्द बोला जा रहा है तो समझना चाहिए कि जीव कोई अवश्य है अन्यथा यह शब्द आता कहांसे ? अनादि अनन्त चैतन्यसे सहित शरीरमे जीवका व्यवहार फिर क्यों हुआ ? कोई यदि ऐसी आशङ्का करे तो सुनो। उस प्रकारके चेतन विशिष्ट कार्यमे अर्थात् पशुपक्षी मनुष्य आदिकके जो ये शरीर दिख रहे हैं इन शरीरोमे अनादि अनन्त असाधारण धर्म वाला जीव रह रहा है तो ऐसे जीवसे युक्त शरीरमे जो जीवका व्यवहार किया जाता है वह चेतन और शरीरमे अभेदका उपचार करके ही व्यवहार है। पदार्थ तो भिन्न-भिन्न हैं, चेतन जुदा तत्त्व है, शरीर जुदा है, और, शरीरमे चूंकि चेतन है तब उन दोनोमे जब अभेदका उपचार किया गया तो शरीरमे भी जीव जीव इस प्रकारका व्यवहार चल उठा है।

क्षणिक चित्तसन्तानमें जीवत्वके व्यवहारका शंकाकारका आशय व उसका समाधान—अब यहाँ क्षणिकवादी बौद्ध कहते हैं कि पृथ्वी आदिकके पिण्ड शरीरमे तो जीवका व्यवहार ठीक नहीं, पर क्षणिक जो चित्तसतान हैं, ज्ञानक्षण हैं उनमे जीवका व्यवहार करना युक्त है। इस शङ्काके उत्तरमे केवल इतना ही ध्यान दिलाया जा रहा कि क्षणिक चित्तसतानमे जीवका व्यवहार करना यह पूर्व प्रकरणमें अनेक बार खण्डित कर दिया गया है। न तो चेतनकी क्षणिकता सिद्ध होती और न उनका सतान सिद्ध होता, किन्तु जीव नामक पदार्थ है और वह ज्ञानस्वरूप है। उसमे जीवका व्यवहार है। इस प्रकरणसे यह मान लेना चाहिए कि जीव शब्द बाह्य अर्थ को साथ लिए हुए है कर्तृत्व और भोक्तृत्व ही जिसका उपयोग स्वभाव है याने जीव करता क्या है, भोक्ता क्या है, वह भी जीवके ही स्वरूपमें है। तो कर्तृत्व और भोक्तृत्वरूप उपयोग स्वभाव वाले जीवके ही साथ यह यहाँ बताया जा रहा कि जीव शब्द बाह्य अर्थ सहित है। तो यहाँ जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है उसके लिए जो हेतु दिया गया है कि सज्ञा होनेसे, नाम होनेसे जो जो नाम है वे वे पदार्थ अवश्य हैं। तो इसमे किसी प्रकारका दोष नहीं आता है।

'जीवशब्द' सबाह्यार्थं सज्ञत्वात्' इस अनुमानमें प्रयुक्त हेतुकी निर्दोषताका वर्णन—अब शङ्काकार कहता है कि जीव पदार्थकी सिद्धि करनेके लिए जो यह अनुमान बनाया है कि जीवनामक पदार्थ अवश्य है क्योकि उसमे जीव शब्द बोला जा रहा है सज्ञा होनेसे, तो सज्ञा अर्थात् नाम होनेसे इस प्रकारका जो हेतु कहा गया है वह विरुद्ध हेतु है, क्योकि सज्ञा नाम तो वक्ताके अभिप्रायभरको सूचित करता है, उससे बाह्य पदार्थकी सिद्धि नही हो जाती। यहाँ साध्य बताया जा रहा है कि बाह्य अर्थ सहित है लेकिन उससे विरुद्ध साध्य सिद्ध होता है याने शब्दसे नामको बोलने

वालेका अभिप्राय मात्र ही समझा जाता है, क्योंकि सज्ञा बोलने वालेके अभिप्रायसे ही व्याप्त है। इस शङ्काका भाव यह है कि ये क्षणिकवादी बौद्ध यह कह रहे हैं कि जो नाम है उस नामसे पदार्थ नही जाना जाता, किन्तु बोलने वालेका अभिप्राय जाना जाता है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि यह शङ्का सङ्गत नही है। सज्ञा वक्ताके अभिप्राय मात्रकी सूचना दिया करती है यह बात प्रमाणबाधित है, उसका अनुमान प्रयोग है कि सज्ञा अभिप्राय मात्रकी सूचना नही करती, क्योंकि अभिप्राय मात्रकी सूचना करने वाली सज्ञाओसे अर्थक्रियामे प्रवृत्ति नही बन सकती, सज्ञा भासकी तरह। जैसे किसी पुरुषने दूरसे चमकने वाली रेतमे पानी कह दिया तो उसके कहनेसे कुछ कोई पानी तो नही पी लेता ? है ही नही। जितने भी नाम बोले जाते हैं वे नाम यदि वक्ताके अभिप्राय भरकी बात कहे, बाहरमे कोई चीज है उसका सकेत न करके तब फिर उसमे प्रवृत्ति कैसे बनेगी ? जैसे किसीने कहा कि भोजन लाओ तो ऐसा बोलने वालेके अभिप्राय मात्रका ही ज्ञान अगर हो तो न भोजन आ सकेगा न कोई खा सकेगा। तो जितनी भी सज्ञाये हैं वे केवल अभिप्राय भरको सूचित नही करती, किन्तु उनका वाच्य कोई बाह्य पदार्थ अवश्य होता है। सज्ञामे अर्थक्रियाके नियमका अयोग नही है। संज्ञाके द्वारा पदार्थको जानकर प्रवृत्ति करने वाले पुरुषोके अर्थ क्रियाका नियम देखा जा रहा है कोई किसीको कुछ भी हुक्म देता है तो उन शब्दोसे उसने अर्थ जाना फिर उस ज्ञानमे जुट जाता है। तो सज्ञा बाह्य अर्थको बताती है, इसमें कोई सदेह न करना चाहिए।

इन्द्रिय सम्बन्धित ज्ञानसे पदार्थ परिचयकी तरह सज्ञा शब्दसे भी पदार्थ परिचयका सकेत—जैसे कि इन्द्रिय सम्बन्धित ज्ञानसे पदार्थका परिज्ञान होता है इसी प्रकार सज्ञा शब्दके द्वारा भी पदार्थका परिज्ञान होता है। और जब सज्ञा शब्दके द्वारा भी पदार्थका परिज्ञान होता है—चक्षु इन्द्रियसे कुछ देखा तो वहाँ पदार्थ जाना ही तो गया। इसी प्रकार शब्दसे कुछ सुना तो उससे भी पदार्थ जाना ही तो गया है। यदि इन्द्रियजन्य ज्ञानोसे पदार्थका परिज्ञान न हो तो ऐसा इन्द्रिय ज्ञान कैसे आदरणीय होगा ? अर्थात् वह इन्द्रियज्ञान फिर अकिञ्चित्कर है। उसकी आवश्यकता ही क्या है ? तो इन्द्रियज्ञानसे भी पदार्थका बोध होता है ऐसे ही शब्दके ज्ञानसे भी पदार्थका बोध होता है। तो इस कारिकामे जो हेतु बताया गया है वह हेतु विरुद्ध नही है इसी कारण सज्ञापन जीव शब्दके सबाह्य अर्थपनेको सिद्ध करता है, अर्थात् जीव शब्द है तो उसके वाच्य बाह्य अर्थ भी अवश्य है हेतु शब्दकी तरह।

जीव शब्दके सबाह्यार्थत्वका "हेतु" द्वारा निर्दोष समर्थन—हेतुवादी सभी दार्शनिकोने हेतु शब्दको बाह्य अर्थ सहित माना है। जो कुछ भी कोई हेतु देवे वही उनके हेतु शब्दका अर्थ है। तो जैसे हेतु शब्द है तो उसके वाच्य बाह्य अर्थ भी हैं

इसी तरह जीव शब्द है तो उसका वाच्य जीव नामक अर्थ भी है। तो हेतु शब्द जैसे अपने वाच्यभूत हेतुको सिद्ध करता है यह दृष्टान्त जो दिया गया है वह यहाँ निर्दोष है, अन्यथा अर्थात् हेतु शब्द यदि वाच्य अर्थका बोध न करायें तो साधन और साधनाभासमे कोई भेद न रहेगा। साधन नाम है हेतुका, तो हेतु शब्द साधनको बताता है यह बात नहीं मानते तो साधन और साधनाभास झूठा हेतु और सही हेतु इनमे फिर भेद क्या रहेगा? हेतु और हेत्वाभास ये दो शब्द साधन और साधनाभासका निश्चय कराते हैं। जब हेतु शब्दको बाह्य अर्थवाला न मानोगे तो फिर हेतु और हेत्वाभासमे कोई भेद न रहेगा, क्योंकि अब तो वक्ताके अभिप्राय मात्रकी सूचना किया करता है शब्द, यही रटन यहाँ लगा दी जाय तब बाह्य अर्थपनेकी बात नहीं रहती। तो जिसको साधन और साधनाभासमें अन्तर करना है उसे वचनोंसे परम्परासे भी परमार्थ भूत मानना चाहिए। अर्थात् वचन वास्तविक है और प्रत्येक वचनोका वाच्य पदार्थ है यह बात मान लेना चाहिए।

भले प्रकार विवेचित शब्दादिमे व्यभिचारका अभाव—शंकाकार कहता है कि कही कही इस हेतुका व्यभिचार भी तो देखा जाता है। जैसे हो तो सफेद रेत और दिखती है यह पानी जैसी तो उसे देखकर यदि कोई पानी कहदे तो पानी नाम पानी बाह्य अर्थको बताने वाला न रहा। क्योंकि जिसके लिये पानी इस शब्दका संकेत किया है वह पानी तो नहीं है किन्तु मरीचिका है, सफेद रेत है। तो कही कहीं संज्ञाका व्यभिचार देखा जाता है इसलिए संज्ञाके वाच्य अर्थमें अब विश्वास न रहा। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि किन्ही किन्ही जगहोमे चक्षु आदिकसे उत्पन्न हुई बुद्धिमे भी अविश्वास बन जाता है दीखा तो कुछ और जाना गया कुछ। तब फिर समस्त ज्ञानोमें भी विश्वास न करो यदि कही आँखोसे देखकर सीपको चाँदी जान गए तो जब एक जगह व्यभिचार हो गया नेत्र इन्द्रियज ज्ञानका तब फिर सभी जगह विश्वास मत करो। शंकाकार कहता है कि सीपमें रजतका ज्ञान हुआ तो उसे तो हम ज्ञानाभास कहते हैं। वह सही ज्ञान नहीं है इस कारण वहाँ विश्वास न रहा। तो इसके उत्तरमे यही बताओ कि धूम आदिसे अग्नि आदिकका ज्ञान फिर किस तरह होगा? क्योंकि कार्य कारण भावमे भी व्यभिचार देखा जाता है और यह बात असत्य नहीं है। याने कार्य कारण भावमे व्यभिचारकी बात देखिये। अग्नि जैसे काठ आदिकसे उत्पन्न हुई अग्नि है उस ही तरह सूर्यकान्त आदिक मणियोंसे उत्पन्न हुई या मणि ही उस ही प्रकारकी अग्नि है तो अब देखिये। कि अग्नि काठ आदिकसे ही, यह बात तो न रही या अग्निसे धुआँ निकलता ही हो यह बात तो न रही। मणिकी अग्निमे कहाँ धूम है?, और वह काठ आदिकसे कहाँ उत्पन्न हुई है? तो वहाँ व्यभिचार देखा गया तब फिर अनुमान प्रयोग भी सारे विश्वासके अयोग्य बन जायेंगे। यदि शंकाकार यह कहे कि अच्छी तरहसे विवेकपूर्वक सोचा जाय तो

कार्य कारणमे व्यभिचार नही आता, तो उत्तरमे कहते हैं कि यहाँ भी यह समझिये कि संज्ञा और संज्ञाके वाच्यकी विशेष परीक्षा की जाय तो वहाँ भी अच्छी तरहसे विवेचन किया गया शब्द पदार्थसे व्यभिचारित नही होता है। इस तरह शब्दमे भी शब्दकी विशेष परीक्षा कर लीजिए, क्योंकि कार्य कारण भावमे और शब्दमे इस प्रसंगमे कोई विशेषता नही है।

अपरीक्षितके व्यभिचारसे सुपरीक्षितमे व्यभिचार बतानेकी असंगतता— यहाँ शङ्काकार कहता है कि शब्दके विषयमे परीक्षा तो स्पष्ट ही है। जब वक्ता नाना प्रकारके है और अनेक प्रकारका उनमे रागद्वेष भरा हुआ है तो वचन बोलने वालेके अभिप्राय नाना प्रकारके हैं, इस कारण कभी शब्दमे व्यभिचार भी देखा जाता है। अर्थात् शब्द बोले गए कुछ और उनका अभिप्राय है और कुछ। तब शब्दसे वही बाह्य अर्थ परखा जाय यह बात न बनेगी। इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि शब्द में तो इस शङ्काके नाना अभिप्राय बताकर व्यभिचार बताया, पर शब्दसामग्री अर्थात् जो अन्य प्रत्यक्षज्ञान और अनुमानज्ञानकी सामग्री है अर्थात् इंद्रियज ज्ञान और अनुमानज्ञानकी जो कारण सामग्री है उनमे भी तो नाना शक्तियाँ मान रहे हैं शङ्काकार, तो वहाँ भी अनेक स्थलोमे व्यभिचार आता है अर्थात् दीखता कुछ है और वस्तु कुछ है। अनुमान किसीका किया जा रहा है बात वहाँ अन्य कुछ सिद्ध होती है। तो यो इन्द्रियजज्ञान और अनुमानज्ञानकी सामग्री भी नाना शक्तियोसे भरी हुई है। ऐसा मानने वाले क्षणिकवादियोके प्रत्यक्ष और अनुमानमे भी विश्वास कैसे किया जा सकेगा? जब इन सभी स्थानोमे विश्वास न किया जा सका अर्थात् शब्दसे कोई पदार्थ जाना जाय इसमे भी व्यभिचार है, प्रत्यक्षमे कोई पदार्थ समझा वहाँ भी दोष है अनुमानसे समझा वहाँ भी दोष है, तब तीनो जगह दोषकी समानता होने पर भी क्षणिकवादी शंकाकार प्रत्यक्ष और अनुमानके सम्बन्धमे दोष होते हुये भी संतुष्ट रह रहा है। और संज्ञा सम्बन्धित व्यभिचारमे आक्षेप करनेमे बादशाह बन रहा है। तो मालूम होता है कि यह शंकाकार परीक्षाका क्लेश लेश भी सहन नही कर सकता।

शब्दके विषयमे भावाभावात्मकताकी सिद्धि— अब यहाँ क्षणिकवादी शंकाकार कहते हैं कि देखिये इन्द्रियज ज्ञान और अनुमान ज्ञान और अभिधान याने शब्द द्वारा पदार्थका संकेत होना इन तीनोंमेसे संज्ञाकी बात यह है—कि वह अभाव उपादान वाली है। यानि नाम जो कुछ भी बोला जाता है उसका उपादान अभाव है। क्योंकि शब्दका अर्थ अन्यापोह है। जैसे किसीने घोडा कहा तो घोडा शब्दसे घोडा न जाना जायगा। किन्तु घोडाके सिवाय अन्य कुछ चीज नही है यह समझा जायगा। तो यो शब्द जब अन्यापोहका ही अर्थ रखता है तो शब्दोका संज्ञाओका

उपादान अभाव कहलायगा। तो अन्यापोहरूप अभाव जिसका उपादान है ऐसा संज्ञा मे यदि प्रक्षेप किया जाय तो वह तो परीक्षा करने वाला ही है, उसे अटपट कैसे कहा जा सकेगा ? क्योंकि यहाँ शब्दके सम्बन्धमे परीक्षा करें तो यह सिद्ध होगा कि शब्द यथार्थत. पदार्थके वाचक नही हैं। इस शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह शका बिना विचारे ही कही हुई है। कोई भी संज्ञा सर्वथा अभाव उपादान वाली नही है। संज्ञा यदि भाव उपादान वाली न हो सर्वथा तो उसका अभाव उपादान भी सिद्ध नहीं हो सकता। माने जैसे घोडा कहा तो घोडाका अर्थ यदि यह घोडा नामका पशु बने तो वह भी न समझा जा सकेगा कि घोडाके सिवाय अन्य कोई चीज नहीं है। वस्तुकी समझ भाव और अभाव दोनोंके आश्रय है। यह घोड़ा है इस तरह भावरूप समझ भी वहाँ है। सभी जगह भाव स्वरूप उपादान यदि सम्भव है तब ही उन संज्ञाओंकी यह बात बनती है कि वहाँ अन्यके अभावके उपादानकी भी बात है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभावसे सद्भूत है और अन्य पदार्थके स्वभावसे असद्भूत है। तब यह कहना कि शब्द केवल अन्यापोहको ही कहता है या शब्द अभाव उपादानके आश्रयसे है ये बातें असगत हैं और निराकरण इसका बहुत विस्तारपूर्वक इसी ग्रन्थमे किया ही गया है।

वासनाके मन्तव्यमें भी बाह्य अर्थके सद्भावकी सिद्धि—अब इसी कथनसे यह कथन भी निराकृत हो जाता है जैसा कि क्षणिकवादी सौगतोंने कहा है कि अनादि वासनासे उत्पन्न हुये जो विकल्प हैं उन विकल्पोमे ही कल्पना किए गए शब्द अर्थ तीन प्रकारका धर्म है जो कि सत्त्व असत्त्व और उभयके आश्रित है। शङ्काकारका इस शङ्कामे यह अभिप्राय है कि ये जो कुछ पदार्थ दीख रहे हैं समझमें आ रहे हैं ये वास्तविक पदार्थ नही हैं, किंतु अनादिकालसे ऐसी ही समझकी वासना बनी है जिससे एक विकल्प उत्पन्न हो रहा और उस विकल्पमे ही ये पदार्थ कल्पित होगए। सो ऐसा ही शब्दका अर्थ है और वह अर्थ सद्भाव असद्भाव और उभयरूप है। जैसे घट बोला, तो यह घट नाम घटरूप पदार्थके आश्र. है और पररूप कपडा आदिकके असत्त्वसे उत्पन्न हुआ है। यो भावसे पहिले अभाव दोनोंके आश्रित है। यह कथन भी निराकृत हो गया है, क्योंकि यदि परमार्थत. शब्दको भावके आश्रय न माना जाय अर्थात् शब्दका अर्थ कोई चीज है, इस तरह न माना जाय तो वासनासे उत्पन्न हुए भावकी आश्रयता भी नही बन सकती। यहाँ शङ्काकारका यह अभिप्राय था कि जैसे घोड़ा शब्द कहा तो यद्यपि इस घोड' शब्दसे सीधा घोडा भी जाना गया लेकिन वह वासनाकी वजहसे जाने गए विकल्पसे जाना। वास्तवमें तो घोडाके सिवाय अन्य कुछ नही है, यह अन्यापोह याने अभाव परखा गया है। इसके उत्तरमे कहते हैं कि यदि भाव नहीं परखा गया परमार्थरूपसे तो वासनासे उत्पन्न कराये गये विकल्पसे भी वह सद्भाव न जाना जायगा, क्योंकि सभी जगह वासना अनुभवपूर्वक होती है। किसी

चीजकी वासना जो बनती है वह अनुभवपूर्वक बनती है। अनुभव न हो तो वासना नही बनती। तो यो परम्परासे वासनाने भी वस्तुका ही तो यथार्थ परिचय कराया। वासना अनुभवपूर्वक हुई और अनुभव अर्थके प्रतिबिंबका अर्थात् वास्तविक स्वरूपका जाननेवाला होता है। तो यो वासना माननेपर भी यह मानना होगा कि शब्दका अर्थ वास्तविक कोई पदार्थ है।

वासनाकी सर्वथा अवस्त्वाश्रयिताका निराकरण— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि पूर्व-पूर्व वासनासे ही उत्तर-उत्तर वासनायें बनती चली जाती हैं। तो वासनाकी कोई आदि ही न रही। जब वासनाकी कोई आदि न रही तो इसका अर्थ यह बना कि वासना किसी वस्तुके आश्रय नही है, वह तो यो ही कल्पनावश होती चली जा रही है। यो वासना अवस्तुके आश्रय ही है यह सिद्ध होता है। इस शंकाके समाधानमे कहते हैं कि शब्दवासना भी जब अनादि बन गई अर्थात् जब कोई आदि न हो सकी तो दूसरोके लिए जो अनुमान करते हैं और उसमे शब्द बाले जाते हैं तो वह वासना भी अवस्तुके आश्रय हो गयी तब वहा साधनका लक्षण यह है यह हेतु है ऐसे उपदेशका निमित्त अब वासना न रही तब हेतुका लक्षण भी सिद्ध न हो सकेगा। शंकाकार कहता है कि त्रिरूप हेतुका जो कथन है वह परम्परासे वस्तुके आश्रय है। जैसे इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे। इस अनुमानमें जो धूम हेतु कहा है वह त्रिरूप हेतु है। मायने पक्षमें रह रहा है सपक्षमे रह रहा है और विपक्षमे नहीं है। ऐसे तीन लक्षण वाले हेतुका जो यह कथन हुआ है वह परम्परासे धूम वस्तुके आश्रय है। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह जब हेतु शब्दको वास्तविक पदार्थके आश्रय मान लिया याने हेतु शब्द वास्तविक हेतुको बता देता है तो ऐसे ही यह मान लीजिए कि जीव शब्द वास्तविक जीवको बता देने वाला है याने जीव शब्द जीवके आश्रयसे प्रयुक्त किया गया है।

जीव पदार्थसे अनुभूतिकी सिद्धि—और भी देखिये। यहाँ भाव है हर्ष विषाद आदिक अनेक प्रकारके परिणमन। जीवमें हर्ष होता, शोक होता आदिक नाना प्रकारके परिणमन हैं उन्हे ही तो भाव कहते हैं। सो ये सब भाव प्रत्येक आत्माके अनुभवमें आ रहे हैं और प्रत्येक शरीरमे भिन्न-भिन्न रूपसे अनुभवमे आ रहे है। हमारे हर्ष विषादोको हम ही अनुभवमें लाते है। दूसरे दूसरे शरीरोमें जो चेतन हैं वे अपने अपने भावोको अनुभवमे लाते हैं, तो यह बात निराकृत नही की जा सकती है। तो इस प्रकारका यह जो भाव है वह आत्माके खण्डन करने वाले चार्वाकोको समझा देता है। याने अनुभवसिद्ध बात उन नास्तिकोको प्रतिबुद्ध कर देता है कि नही, भाव है और भावका आश्रयभूत जीव है। और उसी जीव पदार्थको जीव शब्दने बताया है। तो जब अनुभव ही जीवकी सत्ताको स्पष्ट बता देता है, तब और

अधिक प्रयास करना व्यर्थ है। अपने अपने अनुभवसे समझ लो कि मैं जीव हूं, इसी कारणसे इस हेतुमें अन्य कालात्ययापदिष्ट दोष नहीं लगता। क्योंकि पक्ष प्रत्यक्ष आदिकसे अबाधित है, यह दोष कहलाता है तब पक्षकी ही सिद्धि नहीं होती। जैसे पर्वत तो है ही नहीं और अनुमान करने लगे कोई कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होने से तो पक्ष ही नहीं है तो साध्य साधन कहाँ बताओगे ? इस हीको कहते हैं कालात्ययापदिष्ट। सो यहाँ यह दोष नहीं है। क्योंकि पक्ष प्रत्यक्ष आदिकसे अबाधित है। यहाँ अनुमान प्रयोग यह किया गया है कि जीव शब्द अपने बाह्य अर्थको लिए हुए हैं। तो यहाँ पक्ष है जीव शब्द। तो यह जीव शब्द बाह्य अर्थको लिए हुए है यह बाधित नहीं है।

जीव शब्दकी जीवस्वरूपसे विपरीतकी अवाचकता—यहाँ यह बात अवश्य है कि विपरीतबुद्धि रखने वाले पुरुषोंने दार्शनिकोंने जिस तरहके जीवकी कल्पना की है उस तरहके अर्थ वाला जीव शब्द नहीं है। जैसे कि कोई दार्शनिक कहता है कि जीव निरतिशय है अर्थात् जीव नित्य अपरिणामी है, उसमें कोई बात प्रकट नहीं होती। ज्ञान सुख दुःख आदिक कोई भी परिणमन जीवमें नहीं हुआ करते। जीव तो ध्रुव अपरिणामी है ऐसा कोई दार्शनिक जीवको निरतिशय मानता है। कोई पुरुष जीवको अस्वसम्विदित मानता है अर्थात् जीव स्वयं अपने आपको कुछ समझता नहीं है। जीव और ज्ञानके समझनेके लिए कोई अन्य युक्तियाँ देनी पड़ती हैं। ऐसा अस्वसम्विदित मानने वाले नैयायिक द्वारा अभिमत जीवकी बात नहीं कही जा रही है। जैसे कि निरतिशय मानने वाले सांख्यों द्वारा अभिमत जीवकी बात नहीं कही गई। कोई पुरुष मानता है कि जीव सारे शरीरमें अभिन्न एक है। जितने पुरुष पशुपक्षी कीट आदिक देखे जा रहे हैं उन सबमें एक ही जीव है, न्यारे न्यारे जीव नहीं है ऐसा ब्रह्मवादी मानते हैं जो कि अनुभवसे बाधित हो जाता, एक शरीरमें रहने वाले जीवके जो अनुभव है वह उस हीमें है। दूसरे शरीरमें रहने वाले जीवके अनुभव उस हीमें हैं। यदि एक ही जीव होता सारे शरीरमें, तो किसी शरीरमें जो कुछ अनुभव होता वही अनुभव सबको होना चाहिए था। किन्तु ऐसा तो है ही नहीं। इससे ही सिद्ध है कि जीव अनन्त हैं और सब अपने-अपने अनुभवमें हैं; लेकिन ये दार्शनिक समस्त शरीरोंमें अभिन्न एक जीव मानते हैं। सो ऐसे जीव पदार्थका वाचक जीव शब्द है यह नहीं कहा जा रहा। कोई दार्शनिक कहता है कि जीव प्रतिक्षण निराला निराला है। एक जीव हो और वह कुछ सेकेण्ड टिक सके सो नहीं है। प्रत्येक समयमें जीव अन्य अन्य पैदा होते हैं और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाते हैं ऐसे क्षणिकवादियों द्वारा अभिमत जीव अर्थकी बात नहीं कही जा रही, क्योंकि ये सब निराकरणके योग्य हैं। यह सब युक्तिसंगत नहीं है, इस कारण ऐसे अभिमत जीव शब्द द्वारा जीव शब्दको बाह्य अर्थ सहित वाला नहीं कह रहे हैं किन्तु कथञ्चित्

नित्य, कथञ्चित् अनित्य, प्रत्येक शरीरोमे भिन्न भिन्न, किन्तु चैतन्य स्वरूपकी समानता वाले अपने आपका ही शुद्ध सम्वेदन कर सके ऐसे जीव अर्थकी बात यहाँ कही जा रही है।

"सज्ञात्वात्" हेतुकी अनेकान्तिकदोषरहितता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो यह अनुमान प्रयोग किया है कि जीव शब्द अपने वाच्यभूत बाह्य अर्थ से सहित है, यहां बाह्यका अर्थ है जीव शब्दसे अतिरिक्त कोई अर्थ वाला यानि जीव शब्द कहा तो उसका अर्थ केवल जीव शब्द ही नहीं जाना किन्तु कोई जीव नामका पदार्थ है, तो जीव शब्द जीव पदार्थका वाचक है संज्ञा होनेसे जो इसमे जो संज्ञात्व हेतु कहा गया है उसमे अनैकान्तिक दोष आता है। अर्थात् संज्ञायें अनेक ऐसी हैं कि सज्ञायें तो है परन्तु उनका वाच्य पदार्थ कुछ नही है। जैसे माया भ्रान्ति यह भी तो नाम है। माया बहुतसे लोग बोलते भी हैं, पर माया नामकी चीज भी कुछ है क्या? भ्रम यह भी एक शब्द है, पर भ्रम नामका कोई पदार्थ भी है क्या? तो माया भ्रान्ति इन सज्ञाओके साथ जिनका कि इन शब्दोसे अतिरिक्त कोई अर्थ नही है उनके साथ अनैकान्तिक दोष आता है। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा अनैकान्तिक दोष यहाँ सम्भव नही है, क्योंकि माया भ्रान्ति इन सज्ञाओका भी अपना अर्थ है। मायाका अर्थ माया है, भ्रान्तिका अर्थ भ्रम है। माया शब्द कहकर कुछ जाना ही तो गया कि क्या कहा जा रहा है? वही उनका अर्थ है। भ्रम शब्द कहकर समझा ही तो गया कि यह भ्रम है। तो ये सज्ञाये भी अपने अर्थके साथ हैं। जैसे कि प्रमाण शब्द अपने अर्थ के साथ है। प्रमाण, ज्ञान इस तो अर्थ है। ज्ञान कहनेसे क्या जाना गया? ज्ञान जाना गया। तो ऐसे ही माया और भ्रम जाना गया। माया आदि सज्ञायें अपने अर्थसे रहित नहीं है, क्योंकि इन शब्दोको बोलकर भी कुछ विशिष्ट जानकारी हुई। तो विशिष्ट जानकारीके हेतुभूत होनेसे माया भ्रान्ति आदिक सज्ञायें अपने अर्थसे रहित नही हैं। जैसे कि प्रमाण संज्ञा, प्रमाण शब्द, ज्ञान शब्द ये किसी विशिष्टकी जानकारीके कारण बन रहे हैं इस कारण उनका भी अर्थ है। यदि भ्रान्तिका कोई अर्थ न माना जाय तो भ्रान्ति शब्द ही क्यों बोला गया? भ्रम है इस शब्दसे भ्रमका ज्ञान तो हुआ कि भ्रमकी बात कही जा रही है। यदि भ्रान्ति सज्ञाका कोई अर्थ न हो तो भ्रान्ति शब्द बोलनेसे फिर भ्रमकी जानकारी नही बन सकती। बोला तो भ्रम और जानकारी हो जाय शुद्ध ज्ञानकी, यह प्रसंग आ जायगा, इस कारणसे भ्रान्ति शब्द विशिष्ट अर्थकी प्रतिपत्तिका कारण है यह बात असिद्ध नही है।

शब्दोकी विशिष्ट प्रतिपत्ति हेतुताका समर्थन—जिस प्रकार भ्रान्ति शब्दसे भ्रान्तिकी प्रतिपत्ति होनेके कारण विशिष्ट प्रतिपत्तिकी हेतुता यहाँ असिद्ध नही है इसी प्रकार प्रमाण शब्द भी प्रमाणपनेकी प्रतिपत्तिका कारण होनेसे यहाँ भी

विशिष्ट प्रतिपत्ति हेतुत्व असिद्ध नहीं है। यदि प्रमाण शब्दको उसके अर्थ विशेषसे रहित माना जाय तब प्रमाणसे तो ज्ञान हुआ नहीं, इसके मायने यह है कि भ्रान्तिकी प्रतिपत्ति हो बैठेगी। इस दोषके निवारणकी इच्छा हो तो मानना चाहिए कि यहाँ 'विशिष्ट प्रतिपत्तिका हेतु होना" यह हेतु असिद्ध नहीं है। यों जो प्रकृत बातको सिद्ध करनेके लिए दो दृष्टान्त बताये गए हैं माया भ्रान्ति आदिक नाम और प्रमाण नाम। ये दोनों दृष्टान्त साधन धर्मसे विकल नहीं हैं, इसी प्रकार कोई यदि ऐसी आशंका करे कि खरविषाण शब्दका तो कोई अर्थ है ही नहीं तो यह भी शंका उसे, दूर कर लेना चाहिए। खरविषाण आदिक शब्द भी अपने अर्थसे रहित नहीं है। खरविषाणका अर्थ है अभाव मायने खरविषाण न होना। तो यह शब्द भी अभाव-रूप अर्थको बताता ही है यों विशिष्ट प्रतिपत्तिकी हेतुता इन शब्दोंमें भी पायी जाती है अन्यथा यदि खरविषाण शब्दसे अभावकी जानकारी न बतायी जाय तो इसके मायने यह है कि फिर वह भाव वाचक शब्द बन जायगा। इस कारण इन किन्हीं भी शब्दोंके साथ इसका व्यभिचार नहीं आता। तब यह प्रकृत अनुमान निर्दोष है कि जीव शब्द अपनेसे अतिरिक्त जीव शब्दसे बाह्य अर्थका ज्ञान करानेका कारण है, क्योंकि संज्ञा होनेसे। इस तरह जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है और जीवका अस्तित्व सिद्ध होनेपर ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध हुआ। ज्ञानका अस्तित्व सिद्धिके साथ-साथ जगतके समस्त पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध होता है। अब इस विषयमें और भी सुनो—

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचिकाः।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः ॥८५॥

बुद्धि, शब्द और अर्थ इन तीन संज्ञाओंकी बुद्धि, शब्द और अर्थ इन पदार्थोंकी वाचकता बुद्धि शब्द और अर्थ ये तीनो संज्ञायें बुद्धि, शब्द, अर्थके वाचक हैं। यहाँ कोई ऐसी आशंका कर सकता था कि केवल बाह्य अर्थ ही कुछ है अन्य कुछ नहीं है, पदार्थ ही शब्द द्वारा जाना जाता है, अन्य कुछ नहीं जाना जाता। सो ऐसी बात नहीं है। जितने ढंगके शब्द हैं उतने ही ढंगके वहाँ भाव होते हैं। बुद्धि शब्द और अर्थ ये तीन संज्ञायें हैं उन संज्ञाओंसे बुद्धि शब्द और अर्थका परिज्ञान होता है। बुद्धि मायने ज्ञान। ज्ञान शब्द द्वारा एक जानन प्रकाशका बोध होता है "शब्द" शब्द द्वारा जो कानोंसे सुना जाता है उन शब्दोंका ज्ञान होता है। अर्थ शब्द द्वारा जो यह भौतिक और चेतन आदिक सर्व पदार्थ हैं उन पदार्थोंका बोध होता है। ये तीनों बुद्धि, शब्द, अर्थके बोध कराने वाले हैं और ये बुद्धि, शब्द अर्थ ये तीनों ही वाच्यके नातेसे तुल्य बल वाले हैं।

बुद्धि, शब्द व अर्थ इन तीनमेंसे केवल एक अर्थकी वाच्यता माननेकी आरेका व उसका समाधान—यहाँ मीमांसक शङ्काकार कहता है कि पदार्थ शब्द

और ज्ञान ये तो तुल्य नाम वाले हैं अर्थात् पर्यायवाची शब्द है। जीव पदार्थकी जीव यह संज्ञा होती है, और जीव यही नाम शब्दका है और जीव यही नाम बुद्धिका है। तो वहाँ कोई तीन अलग चीजे नही हैं। किन्तु वे सब एक तुल्य नाम वाले हैं। उन तीनोका जब जीव नाम पडा तब जो अर्थ पदार्थक है वह ही जीव शब्द है, वह ही बाह्य अर्थसे युक्त है किन्तु बुद्धि और शब्द पदार्थ जीव शब्दके वाच्य नही है। जीव शब्दसे बुद्धिपदार्थ और शब्दपदार्थका ग्रहण नही होता, इस कारणसे जब जीव शब्द अर्थ पदार्थ वाला ही है ऐसे ही बाह्य अर्थ वाला है बुद्धि और शब्द पदार्थ वाला नही है तब इस हीके द्वारा हेतुका व्यभिचार हो गया। लो अब देख लो बुद्धि और शब्द ये भी संज्ञायें हैं किन्तु इनका कोई पदार्थ नही है। संज्ञा तो सामान्य चीज है। संज्ञापन तो इन तीनोमें घटित हो गया किन्तु है केवल एक जीव पदार्थ, बुद्धि और शब्द पदार्थ इनका वाच्य नही है, क्योकि वे सब तुल्य नाम वाले है। उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते है कि यह शङ्काकार भी समीचीन वचन बोलने वाला नही है। सभी जगह जितनी भी संज्ञायें हो उतने ही उसके वाच्य होते है, सभी संज्ञायें भिन्न भिन्न पदार्थोंकी वाचक हुआ करती है। बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीन संज्ञायें हैं तो जिस संज्ञाका जिकर करो उससे अतिरिक्त अन्य पदार्थका वह वाचक होता है। जैसे कि जिस उच्चारण किए गए शब्दसे निर्दोष रूपसे जहाँ बोध उत्पन्न होता है वह ही उस शब्दका अर्थ है। यदि उच्चारण किए गए शब्दसे जहाँ बोध होता वह अर्थ न बने, वह उस शब्दका वाच्य न बने तो शब्दके व्यवहार करनेका लोप ही हो जायगा फिर शब्द व्यवहारकी आवश्यकता ही क्या रही ?

बुद्धि, शब्द अर्थ इन तीन संज्ञाओके वाच्यभूत बुद्धिपदार्थ, शब्द पदार्थ व अर्थ पदार्थका संकेत—यहाँ कोइ शका करता है कि अर्थ पदार्थक शब्द से हो अर्थ पदार्थ सम्बोधित होता है वहाँ जीव शब्दसे ही जीव अर्थका ही बोध होता है। बुद्धि पदार्थक या शब्दपदार्थक बोध शब्दसे नही होता। फिर जीव शब्द बुद्धि और शब्द पदार्थ वाला कैसे कहा जा सकेगा ? और, वह जीव शब्द बुद्धि और शब्दका कैसे ज्ञान करा देगा ? इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि देखिये जिस प्रकार जीव शब्दसे जीव अर्थका बोध होता है। कोई कहता है कि 'जीवो न हन्तव्य' अर्थात् जीव न मारे जाना चाहिए। जीवकी हिंसा न करना चाहिए। तो यहाँ जो जीव शब्द बोला गया वह अर्थ पदार्थक है याने अर्थ पदार्थ जिसका वाच्य है ऐसे जीव शब्दसे जीव पदार्थका बोध होता है, उसी प्रकार बुद्धिपदार्थक जीव शब्दसे बुद्धि अर्थका ज्ञान होता है। जैसे किसीने कहा कि बुद्धिपदार्थक जीवसे जीव जाना जाता है तो यहाँ बुद्धि अर्थका बोध हुआ और इसी तरह जी, व इन दो शब्दोको किसीने देखा तो यह शब्द पदार्थक जीव शब्द है, उससे शब्दका बोध हुआ, इससे सिद्ध होता है कि तीन संज्ञाओके तीन अर्थ हैं, क्योकि प्रतिबिम्बक जो ज्ञान हैं वे तीन प्रकारके

हो रहे हैं और यह बात तो सर्वत्र घटित हो जाती है। प्रत्येक सत् जब जाना जाता है, तब उसे बताया जाता है जब वहाँ बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीन बातें आती हैं।

उदाहरणसहित बुद्धि, शब्द और अर्थका निर्देशन—जैसे कोई उपदेश करे कि पुत्रसे मोह न करना चाहिए। तो जो लोग पुत्रसे मोह करते हैं तो वहाँ यह बतायें कि वस्तुतः वे किस पुत्रसे मोह करते हैं ? यहाँ पुत्र तीन प्रकारके हो जाते हैं, एक तो पुत्र शब्द, पु और त्र ये दो शब्द इकट्ठे हो गए वह ही हुआ पुत्र शब्द तो शब्दसे मोह नहीं करता। जो मनुष्य है, पुत्र है वह हुआ अर्थपुत्र। तो यहाँ कहा जासकता है उपचारसे कि इस पुत्र पदार्थमें मोह किया जाता है। पर जब यह प्रश्न सामने आ गया कि वह पुत्र पदार्थ तो बहुत दूर भिन्न क्षेत्रमें है और मोह करने वाला यह जीव बहुत दूर भिन्न क्षेत्रमें है तो इसका कुछ भी परिणमन अपने आत्म क्षेत्रसे बाहर कैसे पहुंच जायगा ? मोह करने वाला पुरुष अपने आत्म क्षेत्रसे बाहर अपनी कुछ भी परिणति नहीं कर पाता। तो यहाँ वास्तविकता यह आई कि उस पुत्र अर्थका विषय करके जो इसका पुत्रविषयक ज्ञान चल रहा है, जो भी पुत्रविषयक बुद्धि हो रही है, रागी होनेके कारण वह इस ही विकल्पमें मोह कर रहा है। तो निश्चयसे इस जीवने पुत्रविकल्पमें बुद्धिमें मोह किया व्यवहारसे इस जीवने पुत्र पदार्थमें मोह किया, पर पुत्र शब्दसे मोह होता नहीं, वह तो शब्द है, वाचक है, तो तीनों बातोंका कहीं निराकरण नहीं किया जा सकता है। तो यों जब जब संज्ञायें तीन हैं—बुद्धि, शब्द और अर्थ जब नाम हैं तीन प्रकारके शब्द हैं तो इनका वाचक भी ये तीन हैं—बुद्धि शब्द और अर्थ। तब यहाँ इस कारिका द्वारा आचार्य महाराज हेतुके व्यभिचारकी आशङ्का को दूर कर देते हैं। बुद्धि, शब्द, अर्थ ये तीनों ही संज्ञायें अपनेसे व्यतिरिक्त अर्थात् इन संज्ञाओंसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु है उसका सम्बन्ध दिखा देता है। और, उन तीनों का जो परिज्ञान होता है उसमें तीनोंका ही प्रतिभास है। वे तीनों उस ज्ञानके विषयभूत होते हैं। सामान्यसे जीव शब्द तो यहाँ धर्मी है और जीव शब्दसे अतिरिक्त जो पदार्थ है, जिसमें उत्पादव्यय ध्रौव्य है, चेतन है, ऐसा जीव वह बाह्य अर्थ है। तो सबाह्य अर्थ होना यहाँ यह साध्य है। तो इस साधनके द्वारा जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है उसमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं है। अतएव यह हेतु निर्दोष और अव्यभिचारी है। सब संज्ञा होनेसे यह संज्ञा संज्ञातिरिक्त बाह्य अर्थका बोध करानेवाली है। वास्तवमें संज्ञा बाह्य अर्थसे युक्त है, उससे सम्बन्धित है, बाह्य अर्थका वाचक है, तब जीव भी एक शब्द है। तो जीव संज्ञा जीव नामक पदार्थका बोध कराने वाली है।

केवल विज्ञानमात्र तत्त्व होनेसे संज्ञात्वात् हेतुकी व्यभिचारिताका विज्ञानवादी द्वारा कथन—अब यहाँ विज्ञानवादी कहता है कि यह संज्ञात्वात् हेतु विज्ञानवादियोंके प्रति तो असिद्ध ही है, क्योंकि विज्ञानको छोड़कर अन्य कोई संज्ञा

ही नही है सब कुछ एक विज्ञानमात्र है। और फिर उस अनुमान प्रयोगमे जो साधन दिया है कि जीव शब्द सबाह्यार्थ है संज्ञा होनेसे, और उसके लिए दृष्टान्त दिया गया है जैसे हेतु शब्द। तो यह दृष्टान्त साधनविकल है। दृष्टान्तमे साधन नही पाया जा रहा है, क्योकि हेतु शब्द भी विज्ञानसे अतिरिक्त अन्य कुछ चीज नही है। विज्ञानकी ही लीलामे हेतुका आभास हुआ है। तो वहाँ भी हेतुके आभासका वेदन होनेसे उस परिज्ञानसे अतिरिक्त अन्य कोई हेतु शब्द नही है। अत दृष्टान्त साधनविकल है तथा यह हेतु व्यभिचारी हेतु है, क्योकि, संज्ञाका आभास करने वाला जो ज्ञान है जीव शब्द सबाह्य अर्थ है शब्दकार ज्ञान होनेसे, यही तो उस अनुमानका अर्थ है। तो जो शब्दाकार ज्ञान है, संज्ञाका आभास करने वाला ज्ञान है उसे यदि हेतु यहाँ मान लिया जाय तो शब्दाभास याने शब्दाकार रूप जो स्वप्न ज्ञान होता है वहाँ कहाँ कोई अर्थ है ? सो उस स्वप्नज्ञानके द्वारा यह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। कभी स्वप्न आता है तो उस स्वप्नमे यह सोने वाला व्यक्ति शब्द सुनता है और खुद शब्द बोलता भी है, बोलता नही, किंतु इसके ज्ञानमे ऐसा ही आता है कि कोई बोल रहा है, मैं सुन रहा हू, मैं बोल रहा हू। तो स्वप्नज्ञानमे जो यो शब्दाकार बोध होता है तो देखिये ! शब्द तो मिल गया पर वहा पदार्थ कुछ भी नही है, जिसको देखकर डरकर बोले, ऐसी वहाँ कुछ भी चीज नही है। तब संज्ञात्वात् यह हेतु व्यभिचारी हो गया। तो यो संज्ञात्वात् हेतु सदोष होनेके कारण वह बाह्य अर्थको सिद्ध करनेमे असमर्थ है, किन्तु विज्ञानका निवारण किया ही नही जा सकता। अत विज्ञान ही मात्र एक तत्त्व है। विज्ञानको छोडकर न संज्ञा है, न दृष्टान्त है न हेतु है, न अन्य कुछ है। जो कुछ प्रतिभासमे आता है वह प्रतिभासमात्र है और प्रतिभास है ज्ञानका स्वरूप। यो विज्ञानके अतिरिक्त जगतमे अन्य कोई पदार्थ नहीं है, फिर कैसे जीवनामक पदार्थकी सिद्धि करोगे ? इस प्रकार कोई विज्ञानवादी योगाचार यहाँ शका कर रहा है। उस शंकाके प्रति समाधान करनेके लिए अब आचार्यदेव कहते हैं

वक्तृश्रोतृप्रमातॄणां बोधवाक्यप्रमा पृथक् ।
भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥८६॥

वक्ता, श्रोता व प्रमाताओके वाक्य, बोध और प्रमाणोके पृथक्त्व व विभिन्नताकी सिद्धि—वक्ता श्रोता और प्रमाताओका बोध वाक्य और प्रमाण ये पृथक् पृथक् होते हैं। संज्ञात्वात् इस हेतुको यदि भ्रान्त माना जाय तो इस हठमे प्रमाण भी भ्रान्त हो जायगा। जब ज्ञान ही भ्रान्त हो गया तो बाह्य पदार्थ भी भ्रान्त और अभ्रान्त हो जायगा। यदि वक्ताको अभिधेयका बोध न हो जो कहा जाता हैं ऐसे वाक्यका यदि बोध वक्ताको नही है तो वाक्य फिर कैसे प्रवर्तित हो सकेगा क्योकि वाक्य तो अभिधेयके बोधके कारणसे ही होता है। और, वाक्यके अभावमे

श्रोताको अभिधेयका ज्ञान नहीं हो सकता है क्योंकि अभिधेयका जो ज्ञान होता है वह वाक्यके कारणसे होता है और प्रमाताका अर्थात् ज्ञानका ज्ञान न होवे तो शब्द और अर्थ ये इन दोनों प्रमेयोंकी व्यवस्था न रह सकेगी, तब इष्ट तत्त्व नहीं बन सकता है। इस कारणसे मानना होगा कि वक्ता श्रोता और ज्ञाता इन तीनके बोध वाक्य और प्रमाण ये पृथकभूत ही हैं। यहां विज्ञानवादीकी यह शंका थी कि विज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। सो देख लीजिए! यदि बोध वाक्य प्रमा न माना जाय वक्ता श्रोता प्रमाता न माना जाय तो कुछ भी सि नहीं होद्धि सकती है। वक्तामें तो वाक्य लगाइये, श्रोतामें बोध लगाइये और जो प्रमाता है उसमें प्रमाण लगाइये। सो देखो वक्ताका कोई वाक्य श्रोताके बोधसे और प्रमाताके प्रमाणसे जुदा ही रहा था, इसी प्रकार श्रोताका बोध वक्ताके वाक्य और प्रमाताके प्रमाणसे भिन्न रहा इसी प्रकार प्रमाताका प्रमाण वक्ताके वाक्य और श्रोताके बोधसे भिन्न ही रहा। और ये सब तीनों सम्बद्ध हैं। किसीका अभाव माननेपर फिर यह प्रवृत्ति कुछ भी न होगी। उस ही बातको अब बताया गया है कि वक्ता यदि इतना भी न जानता हो कि जो मुझे कहा है वह पदार्थ क्या है जैसे बानको कहा है उसका ही बोध न हो तो वाक्य कैसे प्रवर्तित होगा ? और, जब वाक्य ही नहीं है तो श्रोता अभिधे का ज्ञान कैसे कर लेगा ? जब कोई वक्ता कुछ कहता है तो श्रोता सुनकर ज्ञान करता है। जब वाक्य ही न रहा तो श्रोताको अभिधेयका ज्ञान नहीं हो सकता और जब वे दोनों न रहे वहां प्रमाणकी क्या आवश्यकता और प्रमाताकी प्रमिति न रही याने जानने की क्रिया न रही तो न कोई शब्दकी व्यवस्था कर सकेगा न पदार्थकी। विज्ञानवादी उस विज्ञानकी कैसे व्यवस्था करेगा ? किसीका भी इष्ट तत्त्व फिर सिद्ध नहीं हो सकता। इस कारण यह मानना आवश्यक है कि वक्ता श्रोता और प्रमाताओंके वाक्य बोध और प्रमाण ये पृथकभूत हैं और जब इन्हें पृथकभूत मान लिया जायगा तो हेतु में असिद्धता आदिक दोष न होंगे और दृष्टान्तमें भी साध्य साधन आदिककी विकलता न होगी। यहां मूल अनुमान प्रयोग है। जीव शब्द स्वसे व्यतिरिक्त बाह्य अर्थ के साथ है अर्थात् जीव शब्द जीव पदार्थका वाचक है संज्ञा होनेसे हेतु शब्दकी तरह। तो इस अनुमान प्रयोगमें न हेतुदोष है न दृष्टान्तदोष है।

विज्ञानवादी द्वारा वक्ता, श्रोता, व प्रमाताका निषेधन—अब शंकाकार कहता है कि बाह्य अर्थ तो कुछ है ही नहीं। तब केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व है सो वक्ता श्रोता और प्रमाता ये तीनों विज्ञानसे जुदे क्या कहांसे जायेंगे ? वक्ता श्रोता और प्रमाताका जो आभास हो रहा है ऐसा आभास वाली जो बुद्धि है वह ज्ञान ही तो है। सब ज्ञान विलाससे ही वक्ता श्रोता प्रमाताका व्यवहार होता है। यह वक्ता है, यह श्रोता है यह प्रमाता है। यह व्यवहार तब बना जब ज्ञान हुआ उससे यह आभास बना। इसी प्रकार वाक्य भी ज्ञानसे अलग कुछ नहीं है। कुछ जाना तभी तो लोग

उसका सत्त्व कहते हैं। तो जाननेसे अलग तो न रहा कुछ। इसी प्रकार प्रमा तो साक्षात् बोधात्मक ही है उसमे तो कोई युक्ति बतानेकी आवश्यकता ही नही है। प्रमा प्रमाण ये स्वय ज्ञान स्वरूप हैं तो जब विज्ञानको छोडकर अन्य कोई बाह्य अर्थ न रहे तब इसमे असिद्धता आदिकके दोष होना और हेतुका जो दृष्टान्त दिया है उसमें भी दोष आता है। अतः यह अनुमान प्रयोग ठीक नही है कि जीव शब्द जीव पदार्थका वाचक है। सभी बात केवल एक विज्ञानमात्रका ही समर्थन करती है।

विज्ञानातिरिक्त सबको, वक्ता, श्रोता प्रमाताको भ्रम माननेपर विज्ञानतत्त्वकी असिद्धि—अब उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि शङ्काकारने वक्ता, श्रोता, प्रमाताके अभावका वचन पूर्वापर विचार करके नही कहा, यो ही जल्दबाजीमे कह दिया है। देखिये ! यदि विज्ञानमात्रको छोडकर अन्य सबको भ्रम माना जाय, असत्य माना जाय, जैसे कि रूपादिकका ग्रहण करने वाला कोई वक्ता है या श्रोता है उसे भ्रम माना जाय और उनसे व्यतिरिक्त जो विज्ञानकी संतान है उसे भ्रम माना जाय और ज्ञानमात्रका आलम्बन लेने वाले प्रमाणको भी भ्रम माना जाय तब तो रूपादिक किसी भी प्रकारकी सिद्धि नहीं हो सकती। फिर अन्तर्ज्ञेय अर्थात् ज्ञानाद्वैतके माननेमे भी विरोध आता है। विज्ञानवादी शङ्काकार रूपादिकका ग्रहण करने वाले वक्ताको नही मानते, श्रोताको भी नही मानते, जगतमे जो कुछ यह नजर आ रहा है इस किसीको भी नही मानते। और, इतना ही नही, जो विज्ञानकी संतान चल रही है, किसी भी पुरुषमें जो वर्षोंसे विज्ञानकी परम्परा चल रही है, जिससे कि पहिले विज्ञानके अनुभवमे दूसरा विज्ञान स्मरण कर लेते हैं ऐसा जो ज्ञानक्षणोंका संतान चल रहा है उस संतानमे भी भ्रम माना है, और की तो बात क्या ? ज्ञानमात्रका आलम्बन लेकर कुछ भी निर्णय करने वाले प्रमाणको भी भ्रम माना है। तो जब विज्ञानवादीकी दृष्टिमें ये सभी भ्रम बन गए तब रूपादिक या किसी भी पदार्थकी किसी भी प्रकार सिद्धि न होगी। जब कुछ ज्ञेय ही न रहा तो ज्ञानका स्वरूप ही क्या बनेगा ? तब ज्ञानाद्वैत माननेका भी विरोध हो जाता है। जब रूपादिक जो कि अभिधेय हैं, जिसे वक्ता बताना चाहता है श्रोता समझना चाहता है, जब इस अभिधेयको ग्रहण करनेवाले वक्ता और श्रोता ही भ्रमरूप बन गए अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्शको जानने समझने सुनने वाले ये पुरुष भ्रम बन गए तब इससे व्यतिरिक्त जो विज्ञानका संतान है वह भी सिद्ध नही होता और ज्ञानमात्रका आलम्बन करने वाला प्रमाण भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि स्वांशमात्रका आलम्बन लेने वाले ज्ञान अपने स्वरूपकी समझ वाले नही हैं, इन सबका परस्परमे कोई संचार नहीं है, जिससे कि फिर यह पता पड सके कि यह तो शब्द है यह अभिधेय है और यह ज्ञान है।

प्रमाणको भ्रान्त माननेपर आगमवचन, अभिमततत्त्व आदि सबकी

सकता है। याने समझने वालेको ज्ञान हुआ और समझाया जा सकने योग्य शब्द हुआ तब निजको और दूसरेकी जानकारी बनती है। केवल स्वसम्वेदनसे अर्थात् अपनी जानकारी मात्रसे दूसरेको प्रतिपादन नहीं हो सकता, क्योंकि किसीकी जानकारी उसके लिए ही तो स्पष्ट है, दूसरेके लिए तो प्रत्यक्ष नहीं है अतएव तीर्थ प्रवृत्ति अथवा समझने समझानेकी परम्परा बुद्धिशब्दात्मक ढगसे ही होती है। तो साधन है बुद्धि-शब्दात्मक, उस बुद्धिशब्दात्मक साधनकी प्रमाणता कैसे आती है अर्थात् यह समझावन और यह परिचय प्रमाणभूत है सत्य है, यह बात समझमें कैसे आयगी ? तो बाह्य पदार्थके होनेपर ही उस बुद्धिकी प्रमाणता जाहिर होती है। अर्थात् जो समझाया है और जिसे शब्दो द्वारा बताया है वह पदार्थ यदि है तब समझिये कि यह समझ भी प्रमाण है और यह शब्द भी प्रमाण है और यह प्रमाणता भी कैसे जाहिर हो ? वह होती है पदार्थ की प्रतिपत्तिसे। जैसे किसीने किसी घटनाका वर्णन किया तो अब वहा घटना मिल जाय या जिन चीजोंका वर्णन किया वे चीजें वहाँ दिख जायें तब तो यह निश्चय होता है कि ये सब प्रमाणभूत हैं और बाह्य पदार्थ न हो तो वह ज्ञान प्रमाणाभास है, और उसकी पुष्टि यो होती है कि जैसा वह बता रहा अज्ञानी वैसा पदार्थ नहीं पाया जा रहा है। तो इस तरह सत्य और झूठकी व्यवस्था बुद्धि और शब्दकी ही बनती है।

विज्ञानमात्र माननेपर तीर्थप्रवृत्तिकी अनुपपत्ति—मूल प्रकरण यहाँ यह था कि कोई नास्तिक यह कह उठा था कि जीव ही नही है कुछ तो उसकी सिद्धिके लिए अनुमान प्रयोग बनाया कि जीव अवश्य है अन्यथा जीव शब्द ही नही बनता। यह जीव शब्द अपने वाच्य अर्थके साथ है क्योंकि वह संज्ञा है। इसपर मीमासक यह कहने लगे कि बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीनो एक पर्यायवाची शब्द हैं अर्थात् सभी पदार्थके नाम है, शब्द कोई अलग चीज नहीं है, बुद्धि भी कोई अलग चीज नही है। उनके प्रति समाधान दिया गया कि सर्वत्र बुद्धि शब्द और पदार्थ ये तीनो पृथक पृथक समझे जाते हैं। जैसे घट शब्द कहा तो घ और ट ये दो वर्ण तो घट शब्द कहलाये जो कि वाचक है और वे घट पदार्थ जिनमें जल धारण किया जाता है वह घट अर्थ है और समझने वालेने जो कुछ समझा, उसकी जो समझ है वह है घटबुद्धि। तो तीन ये संज्ञायें हैं तो इन तीनो चीजोका विभिन्नरूपसे ज्ञान होता है। इसपर विज्ञान-वादी कहने लगे कि न सज्ञा न बुद्धि, न शब्द न अर्थ, न वक्ता, न श्रोता न प्रमाण कुछ भी नही है। केवल एक विज्ञानमात्र ही है। तो उनके समाधानके लिए बताया कि केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व मानोगे वक्ता, श्रोता, प्रमाण, ज्ञान, वाच्य ये कुछ भी न मानोगे तो कुछ भी सिद्धान्त सिद्ध नही किया जा सकता है। उससे सम्बन्धित यह बात कही जा रही है कि विज्ञानवादको भी यदि सिद्ध करना चाहोगे तो कोई हेतु देगा, कुछ शब्द न कहेगा, कोई समझने वाला है, कोई सुनने वाला है। कोई

निर्णय देने वाला है। ये सब बातें तो है तब तो विज्ञानमात्र जो तत्त्व है उसे विज्ञान-वादी कह कैसे सकेगा? तो केवल विज्ञान ही कहाँ रहा? वक्ता है, श्रोता है, प्रमाता है और बुद्धि शब्द प्रमाण भी है। तो यहाँ बुद्धि शब्द प्रमाणपनेकी सिद्धि की जा रही है कि ये सब चीजे बाह्य पदार्थके होनेपर ही बनती हैं। बाह्य पदार्थ न हो तो इसकी सिद्धि नही होती। अपने पक्षको सिद्ध करना हो और दूसरे पक्षका दूषण देना यही बात तो करनी पडती है अपने सिद्धान्तकी सिद्धि करनेके लिए। तो यह बात बुद्धिमे भी पायी जाती है। कोई पुरुष सत्य मंतव्यको सही मानना चाहता है तो तब ही तो जानता है कि हाँ इस मंतव्यमे ये गुण है और यह समीचीन है। इसमे कोई दोष नही है और इसके विरुद्ध अन्य मतोमे दोष है। तो यह जानकारी ही तो बतायगी। इसी प्रकार दूसरोको समझाते हैं कि भाई यह मंतव्य सही है, इसकी सिद्धि है और इसके विरुद्ध अन्य मतोमे दूषण आता है तो यह भी शब्दो द्वारा ही जाहिर होगा। तो स्वपक्षको सिद्ध करे, परपक्षका दूषण दें ऐसी बुद्धि और शब्द ही इस तरहके मालूम होते हैं। और, वह सब सत्य है यह बात यों जानी जाती है कि जैसी जानकारी हुई, जैसा कुछ शब्दोने बताया वैसा पदार्थ वहाँ मिल जाय। इस प्रकार जबकि झूठ और सचकी व्यवस्था बुद्धि शब्दात्मक पद्धतिसे होती है और बुद्धि शब्दात्मकका प्रयोग तभी बनता है जब बाह्य अर्थ हो, तो उससे यह सिद्ध हो गया कि बाह्य पदार्थ परमार्थत सत् है।

साधन दूषण प्रयोगसे भी बाह्यार्थके सद्भावकी सिद्धि—ज्ञानाद्वैतवादी केवल ज्ञानमात्रको ही तत्त्व मान रहा है। उसके प्रति कहा जा रहा कि ये सब कुछ बाह्य तत्त्व जो कुछ नजर आ रहे हैं—घट पट चौकी पुस्तक आदिक ये सब भी परमार्थ हैं। यद्यपि इनकी जो वर्तमान अवस्था है वह सदा नहीं रहती इसलिए यह अवस्था परमार्थ नही है किन्तु पर्याय है लेकिन जिन मूल द्रव्योके परमाणुओकी पर्याय है, वे सब परमाणु परमार्थभूत है। तो यहाँ अनुमान प्रयोगसे भी समझ लेना चाहिये कि बाह्य पदार्थ वास्तविक सत है क्योकि साधन दूषणका प्रयोग होनेसे। यदि ये बाह्य पदार्थ न होते तो किसकी तो सिद्धि की जाय और किसमे दूषण दिया जाय? तो यहाँ यह साधन दूषण प्रयोगार्थ यह हेतु दिया गया है। यह हेतु अविना-भावी है, उसमे अविनाभाव असिद्ध नही है, क्योकि बाह्य पदार्थके होनेपर ही साधन दूषणका प्रयोग होता है। यहाँ एक बात और विशेष जानना चाहिए कि साधन तो ज्ञान है याने सबकी सिद्धि करने वाला यह ज्ञान है। जिन युक्ति हेतुओसे बुद्धिको निर्मल बनाया है यह बुद्धि पदार्थकी सिद्धि करती है, किन्तु इस बुद्धिके द्वारा दोनो प्रकारके पदार्थ सिद्ध किए जा रहे हैं। एक तो निज आत्मतत्त्व दूसरे बाह्य समस्त पदार्थ। तो जब बुद्धि सब पदार्थोंका निर्णय करने चलती है उस समय उस बुद्धिके मुकाबलेमें बाह्य पदार्थ ये दोनो हो गए। बुद्धि तो स्व हुआ और आत्मा, ज्ञानस्वरूप

ये चेतन पदार्थ और समस्त ये अचेतन पदार्थ यानि चेतन और अचेतन तथा स्व और पर सभीका निर्णय बुद्धि करती है, इस कारण बाह्य पदार्थ यहाँ निज भी और पर भी सब मानने चाहिए। जब कि विज्ञानवादी केवल एक विज्ञानको ही तत्त्व मानता है। न जीव माना जा रहा न आत्मा न परमाणु आदिक बाह्य पदार्थ। वे तो केवल ज्ञानक्षणको ही स्वीकार करते हैं। तो उसको समझाते हैं कि आत्मा भी है और अन्य पदार्थ भी है। तो ये समस्त बाह्य पदार्थ, जो विज्ञानवादीकी दृष्टिमें हैं वे बाह्य पदार्थ हैं तो परमार्थतः साधन दूषण प्रयोग बनता है और न हो तो साधन दूषण प्रयोग नही बनता। हेतु दो प्रकारका बताया गया है। तो साध्यके होनेपर ही तो हेतुकी दो प्रकारता है। जैसे अनुमान प्रयोग किया कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, तो यहा यह धूम हेतु सही है, यह कैसे जाना जायगा? इसकी सचाईके जाननेकी दो पद्धतियाँ हैं। धूमके होनेपर अग्नि पाई जाती है एक यह व्याप्ति मिलती है तब धूम हेतु समीचीन सिद्ध होता है। दूसरे—अग्निके न होनेपर धूम नही पाया जाता, जब यह व्याप्ति विदित होती है तब धूमके हेतुपनकी सचाई सिद्ध होती है। तो साध्यके बलपर ही तो हेतुकी समीचीनता सिद्ध होती है। तो साध्य है यहाँ बाह्य पदार्थ। बाह्यपदार्थके होनेपर ही साधन और दूषणका प्रयोग बन सकता है। तो साधन दूषणका प्रयोग हो रहा है तो समझना चाहिए कि वहाँ बाह्य पदार्थ है, यह व्याप्ति बनी। बाह्य पदार्थ न हो तो साधन और दूषणका प्रयोग नहीं बन सकता। इस तरह अन्यथानुपपत्ति और तथोपपत्ति इन दो लक्षणोंमे इसकी सचाई जानी जाती है।

बाह्य अर्थके अभावमे साधनदूषणप्रयोगकी अशक्यता—यहाँ यह समझना चाहिए कि बाह्यपदार्थके अभावमे साधन और दूषणका प्रयोग नही बनता। चीज ही कुछ नही है, केवल एक विज्ञान ही विज्ञान माना जाय तो अब कहाँ और क्या साधा जाय और किससे क्या दूषित किया जाय? अन्यथा तो यदि बाह्य पदार्थके अभावमें भी साधन और दूषणका प्रयोग बनने लगे तो स्वप्नमे देखी हुई बातमे क्या अन्तर रहा? जैसे स्वप्नमे बाह्य पदार्थ कुछ है नहीं, केवल ख्याल ही बन रहा है तो वहाँ किसके द्वारा क्या काम साधा जाय? किसके द्वारा क्या बिगाडा जाय? वहाँ कुछ अर्थक्रिया तो नहीं होती। इसी तरह इस जागृत अवस्थामे भी बाह्य पदार्थ नही माने जा रहे तो अब क्या साधा जाय और क्या दूषित किया जाय? अथवा अन्य संतान भी कैसे सिद्ध किया जाय या दूषित किया जाय? या निजका संतान अर्थात् खुदके शरीरमे होने वाले जो प्रतिसमय ज्ञानक्षण होते रहते हैं उनका संतान भी कैसे सिद्ध किया जाय या दूषित किया जाय? याने अपने संतानमें क्षणिकपना और वेद्य आदिक आकारोंसे रहितपना भी कैसे सिद्ध किया जाय? यहाँ शङ्काकार है ज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध, जो केवल ज्ञानतत्त्व ही मानता है, लेकिन क्षणिक–क्षणिक ज्ञान अनन्त

ज्ञान प्रति समयमे भिन्न-भिन्न नया नया होने वाला ज्ञान ऐसा ही ज्ञान है केवल और परमाणु या अन्य पदार्थ नही है। ज्ञानाद्वैतवादी एक दूसरा दार्शनिक भी है जो ब्रह्माद्वैतवादीके नामसे प्रसिद्ध है। वे चेतनात्मक ब्रह्म मानते है लेकिन उनका यह ज्ञान चैतन्य प्रतिभास एक है, जितने शरीर हैं उन शरीरोमे सबके एक ही आत्मा है। तो उनके प्रति यह समाधान अभी नही चल रहा है, क्योकि शङ्काकार यहाँ क्षणिक-विज्ञानवादी है। तो उसकी ही मान्यतामे दूषण दिया जा रहा कि यदि बाह्य पदार्थ न माने जायेंगे तो संतान भी सिद्ध न होगा। और अपनी संतानमे जो क्षणिकता है और वेद्याकारादि शून्यता है वह भी कैसे सिद्ध होगी ? बाह्य पदार्थ वास्तविक हैं और ज्ञानमें जो कुछ ग्रहणमे आ रहा है घट-पट आदिक तो ग्राह्यपना उसका लक्षण है। जो ज्ञानमे ज्ञेय हो रहा है ऐसे ही तो ये बाह्यपदार्थ हैं, उनका यदि अभाव माना जाय तो अभाव होनेपर भी साधन और दूषणका प्रयोग माना जाय तो स्वप्नावस्थामे होने वाली और जागृत अवस्थामे होने वाली बातोमे क्या अन्तर रहेगा ? वहाँपर भी साधन दूषण प्रयोग मान लो। यदि किसीने स्वप्नमें कुछ किसी बाहरी क्षेत्रको जाना या पहाड़पर उड़ना या अन्य कुछ बातें देखी गई हैं तो वहाँ वे बातें मिल भी जानी चाहियें। किन्तु जैसे स्वप्नकी बात क्यो झूठ है कि वहा बाह्य पदार्थ कुछ न माने जायें तो सारा ज्ञान झूठ हो जायगा। इस कारणसे यह समझना चाहिए कि केवल ज्ञानमात्र ही तत्त्व नही है, किन्तु बाह्य पदार्थ भी वास्तविक है।

विज्ञानातिरिक्त कुछ न माननेपर स्वेष्टतत्त्वकी सिद्धिकी अशक्यता—यदि बाह्य पदार्थ न माने जायें तो वे विज्ञानवादी सहोपलम्भ नियमसे अतिरिक्त भिन्न अपने ज्ञानाद्वैतको सिद्ध करनेके लिए जो जो हेतु दिया करते हैं उन हेतुओसे, उन अनुमानोसे क्या सिद्ध किया जायगा ? किसके द्वारा सिद्ध किया जायगा ? उनका जब कुछ अर्थ ही नही है तब कुछ भी सिद्धि नही हो सकती अथवा दूसरेके लिए वचनात्मक परिश्रमसे भी क्या सिद्ध किया जायगा; क्योकि कुछ बाह्य अर्थ माना ही नही है। अथवा वह स्वसम्वेदन ज्ञान जो कि इन विज्ञानवादियोंको इष्ट है वह भी स्वतः साध लिया जायगा या प्रत्यक्षसे भी क्या सिद्ध कर लिया जायगा ? अर्थात् कुछ भी सिद्ध नही हो सकता। क्योकि उस सब बातको सिद्ध करने वाला जो साधन है वह तो निर्विषय है, उसका कोई आधार ही नही है। जैसे कि स्वप्नमे देखी हुई बातें स्वप्नमे सिद्ध की जाने वाली बाते निर्विषय है, उनकी कुछ सिद्धि ही नही है। किसीने स्वप्न देखा कि हमने बहुत भरपेट भोजन किया। और भूखा ही वह व्यक्ति सो गया था। तो ऐसा स्वप्न देखनेसे कही उसका पेट तो नही भरता। क्यों नही भरता कि उस स्वप्नमे बाह्य पदार्थ कुछ नही है। अब यों ही जानना चाहिए कि यहाँ भी कोई बाह्य पदार्थ न हो तो कुछ साध्य नही किया जा सकता है। तो जिस प्रकार बाह्य पदार्थके न माननेपर कुछ भी साध्य नहीं किया जा सकता इसी तरह बाह्य पदार्थके

न माननेपर किसी भी दूषण द्वारा कुछ भी दूषित नहीं किया जा सकता। जो लोग संतानान्तर नहीं मानते, स्वस गन ही मानते हैं उनके यहाँ भी अपने संतानकी क्षणिकता आदिक भी किसके द्वारा सिद्ध करोगे ? और संतानान्तरका किस तरहसे दूषण होगे ? अर्थात् बाह्य पदार्थ न माननेपर और दूषणका न कोई उपाय बनेगा न कोई साधन दूषणका कर्ता होगा। कोई बात ही होगी जो साधी जायगी और दूषितकी जायगी। सो यो बाह्य पदार्थ न माननेपर कोई कहीं भी व्यवस्थित नहीं रह सकता है।

सबको भ्रमरूप मानने वाले ज्ञानको भी भ्रमरूप या अभ्रमरूप कहने पर अनेकान्तकी असिद्धि—कोई यदि ऐसा माने कि जैसे तिमिर रोग वालेको दो चन्द्र दिखते है तो जैसे दो चन्द्रोका दिखना भ्रान्ति है उसी प्रकारसे सारा व्यवहार भी भ्रान्त है। जितने भी ज्ञान हैं, जितने भी ज्ञेय हैं, जो कुछ समझ बन रही है वह सारा ही भ्रान्ति है, ऐसा भी कोई यदि माने तो यह बात तो सही है ना ! तो कोई समझनेके लिए यह तत्त्वज्ञान तो मानना ही पडेगा। इस तरह यह तत्त्वज्ञान तो उनके लिए शरण कहना ही होगा। जो पुरुष जो कुछ भी व्यवस्था बनाये—शून्यताकी व्यवस्था बनाये या सबको भ्रम बतानेकी व्यवस्था बनाये कुछ भी व्यवस्था बनाये, आखिर वह उनका तत्त्वज्ञान हो कहलायगा ? सो जिस बुद्धिसे जो कोई जो कुछ भी सिद्ध करे उसके लिए वह बुद्धि, वह तत्त्वज्ञान शरण है। तत्त्वज्ञानसे ही देखो इस शून्यवादीने सबको भ्रमकी व्यवस्था बनायी। जगतमें जो कुछ भी है वह सब भ्रम है, ऐसी भी व्यवस्था बनाने वाला कोई है ना ! वह है ज्ञान। तो ज्ञानको तो मना नहीं किया जा सकता है। और, यहाँ तक कि जो लोग यह कहते हैं कि जीव नहीं है, ज्ञान नहीं है तो ऐसा भी तो वह ज्ञान कर ही तो रहा है। ज्ञानको छोडकर कोई बाहर जा नहीं सकता। तत्त्वज्ञान शरण है। युक्तियाँ बताये, ये सब उसके निर्णयके उपाय हैं। तो तत्त्वज्ञानसे कोई विमुख नहीं हो सकता है। सबको मानना पडेगा कि सबके लिए तत्त्वज्ञान शरण है। जिस ज्ञान द्वारा जिस बुद्धि द्वारा अपने मतव्यकी सिद्धि की जा रही है, तो जब तत्त्वज्ञान सिद्ध हो गया तो यह मत भी खण्डित हो जाता है कि सर्व कुछ भ्रान्त है, लो तत्त्वज्ञान तो भ्रान्त न रहा। उसने तत्त्वज्ञान तो स्वीकार कर लिया। तो अब ये सब पदार्थोंके भ्रमका साधन न बने अतएव सर्व भ्रम है, इसमें भी तत्त्वज्ञान शरण है। अन्यथा अर्थात् यदि ज्ञानको भी भ्रान्त स्वीकार करने लगे तो बाह्य पदार्थोंकी तरह अपने इष्ट मंतव्यका भी अर्थात् सब भ्रम है इस मंतव्यका भी निराकरण बन बैठेगा। जैसे कि विज्ञानवादी वस्तुकार बाह्य अर्थका निराकरण कर रहे हैं कि बाह्य अर्थ कुछ भी नहीं है तो अब जब तत्त्व ज्ञानको भी भ्रान्त मान लिया तो जो उनका इष्ट मतव्य है वह तो इष्ट रहा नहीं, क्योंकि तत्त्वज्ञान भी भ्रान्त माना जा रहा है। तब उस ज्ञानके द्वारा जो भी विज्ञानवादीको मिला है वह सर्व भ्रम है

इसका-भी निराकरण हो जाएगा, अर्थात् भ्रम न रहेगा। भ्रान्त ज्ञानसे शङ्काकारके इष्टका भी निराकरण हो जाता है, केवल बाह्य अर्थका ही निराकरण नही। अत-एव मानना होगा कि तत्त्वज्ञान सबके लिए शरण है, और वह तत्त्वज्ञान ज्ञानाद्वैत भावसे बाह्य है क्योंकि जो ग्राहक है आभास उसकी अपेक्षासे भी बाह्य है और जीवा-दिक भूत चतुष्टय आदिक भी बाह्य है। इससे स्वीकार कर लेना चाहिए कि जगतमे जितने भी पदार्थ हैं, जिन जिनकी पर्यायें हैं वे सब वास्तविक हैं, अनादि अनन्त हैं उनमे पर्यायें प्रतिक्षण होती रहती हैं।

बुद्धिशब्द प्रमाण आदि कुछ न माननेपर स्वपक्ष साधनकी व परपक्ष दूषणकी अशक्यता होनेसे तत्त्वकी असिद्धि— क्षिये! विज्ञानवादी अपना मतव्य कैसे साध सकेंगे जब कि बुद्धि, शब्द और प्रमाणको भी ये मिथ्या मानते हैं। इसी प्रकार बुद्धि, शब्द आदिकको मिथ्या माननेपर, शब्द ज्ञानको मिथ्या माननेपर जो ये विज्ञानवादी शङ्काकार परमाणु आदिकमे दूषण देता है, क्य कि विज्ञानवादी परमाणु को भी परमार्थ नही मानता। वह तो केवल ज्ञानक्षणको ही मानता है तो वह शङ्का-कार परमाणु आदिक दूषण दे रहा है वह किस बलपर दे सकेगा? तब समझना चाहिए कि परमाणु आदिको दूषण देनेमे शब्दज्ञान ही शरण है। क्योंकि अतत्त्वज्ञानमे याने जो तत्त्वज्ञान नही है, भ्रान्तज्ञान है ऐ। अतत्त्व ज्ञानम अपना माना हुआ मंतव्य जो कि प्रकरणमे परमार्थ आदिकका अभाव कहा जा रहा है वह परमाणु आदिकके अभावका निराकरण कर बैठेगा, अर्थात् परमाणु आदिक सत् हैं यह सिद्ध हो जायगा यदि तत्त्वज्ञानका शरण नहीं करता है यह विज्ञानवादी तब याने यदि तत्त्वज्ञानके शरणमे नही जा रहा है यह विज्ञानवादी तो फिर उसके ज्ञानके द्वारा किया गया कुछ भी अकृत ही रहा, अब यहाँ अतत्त्वज्ञानसे जो निश्चित किया गया वह भी अनिश्चित ही रहा। विज्ञानवादी तब जो कुछ भी कहेगा वह सब भ्रान्त है। कुछ भी निश्चित नही कर सकता। सभी दार्शनिकोंने जो अपना इष्ट तत्त्व माना है। और स्वय जो अनिष्ट तत्त्व मानते हैं उस सबमे जो साधन दे दूषण दे वह तत्त्वज्ञानसे ही दिया जा सकता है। सभी दार्शनिक युक्तियाँ पेश करते हैं और अपने पक्षके साधनका प्रयास करते हैं पर पक्षको दूषित करनेका प्रयास करते हैं। यह सब प्रयास तत्त्वज्ञानसे ही तो होता है। सो यों जब सभी जगह तत्त्वज्ञानका ही वर्णन है तब प्रकृत अनुमानमें जो हेतु दिया गया है वह साध्य दूषण होनेसे जो साध्य बनाया है कि बाह्य अर्थ परमार्थ से सत् है तो इस अनुमान प्रयोगमे हेतुको असिद्ध करनेकी इच्छा रखने वाला यह शङ्काकार अब स्वयं भी निराकृत हो गया है क्योकि उस हेतुकी असिद्धताका जो कि स्वय इष्ट है शङ्काकार चाहता है कि स्याद्वादियोका दिया गया हेतु अथवा बाह्य पदार्थोंको भी परमार्थ माननेवालोंका हेतु असिद्ध होजाय ऐसा शङ्काकारको इष्ट है तो हेतुका असिद्धपना और जो शङ्काकारको अनिष्ट है कि हेतु सिद्ध होजाय, शङ्काकारको

इष्ट नही है। सो शङ्काकारका अनिष्ट जो सिद्धपना है इसकी साधन और दूषणके प्रयोगमें ही व्यवस्था बन सकेगी। केवल शङ्काकारके माननेमात्रसे इष्ट सिद्धि न हो जायगी, अनिष्ट दूषित न हो जायगा। उसे युक्तियाँ देनी होंगी, तत्त्व ज्ञानका शरण ग्रहण करना होगा अन्यथा तो साधन दूषण प्रयोगके बिना इष्टका साधन और अनिष्ट के दूषणकी व्यवस्था नही बन सकती। तब इष्ट अनिष्टकी साधन व्यवस्था न बननेके कारण फिर तो जो कुछ भी कोई कह दे वही मान लेना चाहिए। यों अटपट किसीकी भी बात तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि किसीका साधन किसीका दूषण बतानेके लिए तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता ही न रही। फिर तो यों समझिये कि जिसका बोल चले, जो ज्यादह बाचाल हो अधिक बोलने वाला हो बस उसका पक्ष सही हो जायगा और चाहे कोई कितना ही बुद्धिमान हो, सभ्यतासे यदि चलता है तो भी उसका पक्ष बलवान न हो सकेगा। यों अटपट कुछ भी कहें इनका प्रसंग होगा।

इष्ट पदार्थके अपन्हवकी असगतता—उक्त प्रकरणसे यहाँ यह बात भी समझ लेना चाहिए कि जो लोग इष्ट पदार्थका अपन्हव मानते हैं अर्थात् यह जो कुछ नजरमें आ रहा है यह कुछ भी नहीं है, सर्व मिथ्या है। इस प्रकार जो इष्टका अपन्हव मानते हैं वह बिना कारणके ही बन जायगा। यह विज्ञानकी संतान है और नहीं है ऐसा तत्त्व निर्णय तो अब हो न सका। कुछ भी निर्णय नही हो सकता, क्योंकि बुद्धि शब्द प्रमाणकी व्यवस्था ये विज्ञानवादी मानना ही नहीं चाहते। तो जब विज्ञानकी संतान है अथवा विज्ञानकी संतान नहीं है इस प्रकार जब तत्त्वज्ञानकी प्रतिपत्ति ही न हो सकी, क्योंकि सर्व ज्ञान जब भ्रान्त माननेका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया तो वहाँ कोई तत्त्व सिद्ध नहीं हो सकता। जब कोई तत्त्व सिद्ध न हुआ तो इष्ट पदार्थोंका अपलाप करना, अभाव बताना यह बात भी बिना कारणके ही हुई। कोई युक्ति बलसे तो सिद्ध न हुई तत्त्वज्ञानसे तो सिद्ध न हुई। अभ्रान्त ज्ञानका तो आलम्बन न हुआ। दृश्यरूप जो ये सब स्कंधाकार दीख रहे हैं इन स्कंधाकारोंके द्वारा अदृश्य होनेपर भी परमाणुओंका सद्भाव सिद्ध होता है। ये परमाणुरूप बाह्य पदार्थ भी हैं। अगर ये परमाणु न होते जो कि अदृश्य है, उनके सत्त्वकी ही बात कह रहे हैं। अदृश्य होनेपर भी परमाणु यदि सत् न होते तो स्कंधाकार रूपसे जो ये दिख रहे हैं ये दृश्य पदार्थ ये कहाँसे आते? तो दृश्य कथञ्चित स्कंधाकार रूप हैं। इन सब अवयवियोंसे उन अदृश्य परमाणुओंका सत्त्व सिद्ध होता है उनका निषेध नहीं किया जा सकता, अन्तर्ज्ञेयकी तरह। जैसे विज्ञानवादी शंकाकार अन्तर्ज्ञेयकी सिद्धि में कहता है कि ज्ञान परमाणु अदृश्य ही है और ज्ञानमात्र ही है। फिर भी इन दृश्य पदार्थोंसे ज्ञानपरमाणुओंकी सत्ता सिद्ध होती है अन्यथा नहीं। तो जैसे वह शंकाकार विज्ञानवादी दृश्य पदार्थका व अदृश्य ज्ञानपरमाणुका सद्भाव मान लेता है उसी प्रकार इन दृश्य स्कंधाकारोंका व अदृश्य परमाणुओंका भी सद्भाव सिद्ध होता है, इसी

कारण इस अनुमानमे विज्ञानवादियोके इष्ट उपादानका प्रयोग किया गया है। तो इस उदाहरणसे भी यह निश्चय होता है कि बाह्य परमाणुओका सत्त्व है। यदि बाह्य परमाणु न होते तो कथञ्चित् दृश्य स्वरूप ये स्कधाकार भी न होते। इन दृश्य पदार्थोंका अदृश्य परमाणुओमे सत्व निर्णीत होता है और युक्तिसे भी विचारें जो कुछ ये दिख रहे हैं इनके टुकडे हो जाते हैं। ये काठ पत्थर आदिक जो कुछ नजर आ रहे हैं इनके टुकडे हो जायें फिर उनके भी टुकडे हो जायें। और भी उन टुकडो के टुकडे बराबर होते जाये, आखिर अन्तमे कोई टुकडा ऐसा हो जाय कि जिसका दूसरा टुकडा किया न जा सके, वह टुकडा अभी परमाणु रूप नही है। वह सूक्ष्म टुकडा हो गया है लेकिन उसके और टुकडे भी हो सकते हैं। न किए जायें किन्तु कारण कलापसे अथवा काललब्धिसे उनके और भी टुकडे हो सकते हैं। यो होते-होते अतिम अश जिस किसी भी प्रकार न हो सके ऐसा अन्तिम निरश ही तो परमाणु है। यो युक्तियोसे भी सिद्ध होता है।

विभक्तकान्तवादकी मीमांसा और भी सुनो। जो दार्शनिक स्कन्धमे भी विभक्त परमाणु पूर्ववत् मानते हैं तो वे जो बाह्य परमाणु हैं उन परमाणुओमे जो सम्बन्ध बना है, अवयवी रूपसे परिणमन हुआ है उस परिणमनके सम्बन्धमें यह बतलाओ कि उन जडरूप परमाणुओंने क्या पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर और नीचे ऊपर इन छ दिशाओके विभाग भेदसे क्या उनमे छ तरहके स्कध हैं? क्या परमाणु षट्कोण है और उसकी कल्पना कराकर फिर उसमे सम्बन्ध किस तरह बना? ऐसी बात कहकर ये विज्ञानवादी उन जैन या वैशेषिक आदिकके पक्षमे जो उपालम्भ देते हैं उन परमाणु आदिकका निराकरण करते हैं तो उस निराकरणमे तो इन विज्ञानवादी बौद्धजनोका स्वपक्ष भी निराकृत हो जाता है, क्योकि यहाँ परपक्षका उपालम्भ युक्तिपूर्ण न बना, वह तो उपालम्भाभास है। सौगत पक्षमे भी तो ज्ञान सतान ही माना गया है और वह क्षणिक है अनन्यवेद्य है उसका भी तो निराकरण हो जाता है। और कुछ दूषण यह क्षणिकवादी परमार्थ परमाणुओको माननेवालेके सिद्धान्त मे देते है वे ही दूषण विज्ञानवादियोके सिद्धान्तमे भी लगते हैं। जैसे कि बाह्य परमाणुओमे इन क्षणिकवादियो केदूषण दिया गया उसी प्रकार ज्ञान परमाणुओमे भी वही दूषण दिया जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि विज्ञानवादी केवल सारे जगतमें फैला हुआ एक ज्ञान नही मानते, किन्तु प्रत्येक शरीरमे भिन्न-भिन्न ज्ञान है और इतना ही नहीं किन्तु प्रतिक्षण नया-नया उत्पन्न होने वाला ज्ञान है। यों ज्ञान परमाणु स्वीकार करते हैं। तो जैसे बाह्यमे परमाणुओको मानने वाले दार्शनिकोके सिद्धान्तमे ये विज्ञानवादी दूषण देते हैं वे सब दूषण ज्ञान परमाणुओमें भी लगते हैं।

अत्यन्त पृथक सत् ज्ञानपरमाणुवोंमे सतानकी असिद्धि—बतायें ये

क्षणिकवादी कि वह ज्ञान परमाणू है तो एक परमाणुका दूसरे परमाणुके साथ एक देशमें सम्बन्ध होता है या सर्वदेशमें सम्बन्ध होता है ? दो ज्ञान परमाणु हैं अब वे दोनों ज्ञान परमाणु संतान चल रहे हैं तो संतान तो तभी बनता है जब कि वे सटे हुए हों। तो एक ज्ञान परमाणु दूसरे ज्ञान परमाणुओंसे सटा हुआ यदि है तो बताओ वह एक ओरसे सटा हुआ है कि सब ओरसे सटा हुआ है ? अगर एक ओरसे सटा हुआ है तब तो उस ज्ञान परमाणुके ६ अंश हो गए, क्योंकि ६ दिशायें हैं। कोई परमाणु पूर्वसे आकर लगा, कोई ज्ञानपरमाणु दक्षिणसे आकर लगा, कोई पश्चिम आदिकसे तो यों दिशाओंके भेदसे उन ज्ञान परमाणुओंमें भी अंश विभाग बन जायेंगे, यदि कहो कि सर्वात्मक रूपसे उनमें सम्बन्ध होता है तब तो उन ज्ञानपरमाणुओंका जो प्रचय है, समूह है वह सब एक परमाणुमात्र रह जायगा। यदि उस प्रचयका याने ज्ञानपरमाणुओंके पुञ्जका परमाणुओंसे भेद मानोगे याने ज्ञान परमाणुओंका पिण्ड है और पटकोण ज्ञान परमाणूको अलग मानोगे तो प्रत्येक ज्ञान परमाणुमें वह सम्बंधित हो गया। तो उनमें यदि वह परिसमाप्तिसे रह रहा है तो नाना प्रचय बन जायगा। नाना ज्ञानस्कंध बन जायेंगे और अगर एक देशसे रह रहा है तो एक परमाणु प्रचय से एक देशसे टिका हुआ है तब परमाणुओंमें अंशपना आ जायगा और इस तरह कहीं भी अवस्थिति न बन सकेगी। तो जैसे दोष यह विज्ञानवादी बाह्य परमाणुओंमें देता है वे सब दोष यहाँ ज्ञान परमाणुओंमें भी युक्त हो जावेंगे। अब यह बतलाइये कि परमाणुओंके साथ चाहे वे संसृष्ट हों, मिले हुए हों, अथवा व्यवहित हों, जुदे जुदे हों, उनके द्वारा प्रचयका उपकार यदि किया जा सकता है तो उनके संसर्ग मेल न अस-ब्यवपना नहीं बनता और व्यवधानके द्वारा उनका यदि संसर्ग बनाया जाता है तो जो अन्तरमें व्यवधान पड़ा है उस अन्तरमें जो भी व्यवधान कराने वाला हो वह सजातीय है या विजातीय ? सजातीय हो या विजातीय हो किसीका भी व्यवधान बने तो फिर यही प्रश्न उठता चला जायगा और अनवस्थाका प्रसंग आयगा। इस कारण से बाह्य परमाणुओंके खण्डन करनेके प्रयासमें स्वयं विज्ञानवादीके पक्षका घात हो जाता है।

हर्षविषादाद्यात्मक चेतनमें व सूक्ष्मस्थूलाकार स्कन्धमें विरोधादि दूषणका अनवकाश—सूक्ष्म स्थूल स्वरूप बाह्य जात्यंतरमें पूर्वोक्त दोषका अवकाश नहीं है। जैसे कि हर्ष विषाद आदिक अनेकाकारात्मक आत्मामें नाना परिणमनोंका, अवस्थाका कोई दोष नहीं आता है। यहाँ शंकाकार कहता है कि यहाँपर भी विरोध नामका दूषण आता है। अर्थात् वह पदार्थ सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है ऐसा कैसे हो सकता ? जो सूक्ष्म है वह स्थूल न होगा जो स्थूल है वह सूक्ष्म न होगा अथवा मे हर्ष विषादादिक अनेक आकार कैसे बन सकते हैं ? तो यह विरोध शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि क्या यह विरोध सर्वथा देखा जा रहा है

या कथञ्चित्? यदि कहो कि सर्वथा ही दोष माना है तो यह बात असगत है। सर्वथा तो कही भी विरोध नही हो सकता। यह कहेगे अधिकसे अधिक। ठढस्पर्श गर्म शं इनमे तो विरोध है। तो भले ही किसी रूपसे विरोध है मगर सत्त्व प्रमेयत्व आदिक की दृष्टिसे कोई विरोध नही है। शीतस्पर्शमे भी सत्त्व प्रमेयत्व आदिक हैं, उष्ण स्पर्शमे भी सत्त्व प्रमेयत्व आदिक हैं। तो यों सर्वथा विरोध कही भी सिद्ध नही हो सकता। अपने माने हुए तत्त्वमे भी सर्वथा विरोध नही मान रहे हो ज्ञानकी दृष्टिसे तो वह अनेकाकार है परन्तु वहाँ जो एकाकारमे झलक रहे हैं, जो बाह्य पदार्थोंका प्रतिबिम्ब हुआ है उस दृष्टिसे नानाकार है। अतः सर्वथा विरोध कही भी सम्भव नही हो सकता। वहाँ भी सर्वथा विरोध नही है। यदि कहो कि उस चित्रज्ञानमे तो कथञ्चित विरोधका परिहार है अर्थात् नील पीत आदिककी अपेक्षासे विरोध नही है। तो भाई यही बात तो कही जा रही है। यह कथञ्चित विरोध ही तो रहा और कथञ्चित नहीं रहा तो द्वितीय पक्ष भी दूषण देनेमे समर्थ नही है, न तो यहाँ कोई साक्षात् दोष है न कोई परम्पर्या दोष है। और देखिये—यह बात भी निर्विरोध सिद्ध होती है। विवादापन्न ज्ञानस्वरूपसे व्यतिरिक्त अर्थका आलम्बन करने वाला होता है, क्योकि वह ग्राह्य ग्राहकाकार रूप है। इस अनुमानमे यह बात सिद्ध की गई है कि प्रत्येक ज्ञान ज्ञानस्वरूपसे अतिरिक्त अन्य पदार्थ उनको विषय करता हुआ ही होता है। क्योकि ज्ञानमे ग्राह्याकार भी आता है और ग्राहकाकार भी रहता हैं। तो ग्राह्याकार और ग्राहकाकार रूप होनेसे वह ज्ञान बाह्य पदार्थका विषय करने वाला ही समझा जाता है। जैसे सतानान्तरकी सिद्धि।

ग्राह्यग्राहकाकारभेदको भ्रान्त माननेपर विडम्बना शंकाकार कहता है कि भ्रमज्ञानमे जो ग्राह्याकार, ग्राहकाकारपना रहता है उससे इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा अर्थात् भ्रम वाले ज्ञानमे भी ग्राह्याकार और ग्राहकाकार है। लेकिन वह किसी पदार्थका आलम्बन नही करता, क्योकि वहाँ पदार्थ ही नही है। इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर जो शंकाकार अन्य सतानमे ज्ञानकी सिद्धि करता है और उसका साधन बनाता है उस साधनमे भी व्यभिचार आ जायगा। उनका अनुमान है कि यहाँ बुद्धि है। क्योकि व्यापार आदिकका प्रतिभास हो रहा है। कोई भी पुरुष अन्य पुरुषमे ज्ञान है इसकी सिद्धि किस प्रकार करता ? उसकी सिद्धि इस प्रकार होती है कि वह अनुमान करता है कि इस सतानान्तरमे भी ज्ञान है क्योकि प्रवृत्ति है, व्यापार है। यदि ज्ञान नही होता तो व्यापार प्रतिभासकी बात कहकर बुद्धिकी बात सिद्ध कर रहे हो तो कोई पुरुष स्वप्नदशामे जहाँ बुद्धि नही मानी गई है, ये क्षणिकवादी स्वप्नदशामे ज्ञान नहीं मानते हैं। किन्तु जगनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानका सोनेसे पहिले जो ज्ञान हुआ था उसका कारण मान बैठते हैं। तो स्वप्नदशामे कोई पुरुष हाथ पैर भी चला देता है और वहाँ बुद्धि

नहीं मानी गई। तो यो सन्तानान्तरके साधनमें भी व्यभिचार आ जायगा। यह बात नहीं कह सकते कि व्यापार व्यवहार वचनालाप आदिकका आभास होना भ्रमरूप नहीं होता। जिससे कि शंकाकार अपने हेतुको अव्यभिचारी सिद्ध कर सके। होता है भ्रमरूप। सोती हुई हालतमें भी लोग हाथ पैर चलाते हैं। यहाँ तक देखा गया है कि सोते हुएसे उठकर काम भी कर लेने, किवाड़ खोल लेते, कहींसे कहीं जाकर सो जाते और उन्हें यह मालूम नहीं होता कि मैंने क्या किया? तो ऐसे व्यापारादिक जो भ्रमरूप हैं वे बराबर देखे जाते हैं। इससे सतानान्तरकी सिद्धि करनेमें जो साधन देता है शंकाकार उसमें भी व्यभिचारी आ जायगा।

वस्तुत: न मानकर वासनाभेदसे ग्राह्याकार ग्राहकाकार माननेपर अव्यवस्थाका दिग्दर्शन—शंकाकार कहता है कि ज्ञानमें ग्राह्य ग्राहकाकारपन वासना भेदसे ही होता है, बाह्य अर्थका सद्भाव होनेसे नहीं माना गया है, जैसे कि स्याद्वादी जैन आदिक लोग ज्ञानमें ग्राह्याकार ग्राहकाकार बताकर बाह्य अर्थकी सिद्धि करना चाहते हैं सो बात वहाँ ऐसी नहीं है। विज्ञानवादी कहे जा रहे हैं कि यहाँ ज्ञानमें ग्राह्याकार ग्राहकाकार तो आया है पर वह वासनाके भेदसे आया है। ऐसा नहीं है कि बाहरमें कोई पदार्थ है ऐसा जिसके कारण ग्राह्याकार और ग्राहकाकार बना हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर अन्य जगह भी वासनाभेद मान लिया जाय फिर सतानान्तर सिद्ध न होगा। जैसे कि जागृत दशामें बाह्य अर्थ वासनाकी दृढ़ताके कारण तदाकार होने वाले ज्ञानमें साधनपनेका अभिमान किये जा रहा है परन्तु स्वप्न आदिक दशामें उस वासनामें दृढ़ता न होनेके कारण स्वप्नदशाके ज्ञानको असिद्धपनेकी बात की जा रही है और यह माना जा रहा है कि परमार्थत. बाह्य पदार्थ कुछ भी सिद्ध नहीं होता, केवल वासनाभेद ही है। तो जैसे शंकाकार यहाँ वासनाभेदसे सारी व्यवस्था बनाये जा रहा है उसी प्रकार जागृत दशामें अन्य सतानके ज्ञानकी वासनाकी दृढतमतासे सत्यताका अभिमान करले अर्थात् जिस ज्ञानमें जो ग्राह्याकार ग्राहकाकार बन रहा है उसके लिये यो कहा जा रहा है यह ग्राह्याकार ग्राहकाकार वासनासे बन गया है। कहीं बाहरमें पदार्थ होनेके कारण नहीं बने हैं तब इसी तरह जब किसी दूसरे पुरुषमें ज्ञानका अनुमान करता है यह शंकाकार तो वहाँ भी यही मानले वह कि बाह्यमें ज्ञानक्षण नहीं है, सन्तानान्तर भी नहीं हैं। किसी अन्य पुरुषमें ज्ञानका सद्भाव नहीं है किन्तु जो परख रहती है दूसरे पुरुषमें ज्ञानसे भी वह पुरुष अपनी ही वासनाके कारण ऐसी कल्पना कर रहा है। तो यहाँ भी वे वासनाभेद ही मान लें कि वासनाकेदवे ही कारण अन्य सतानमें ज्ञानक्षण है ऐसी स्थितियोंका अभिमान बनता है और स्वप्न आदिक दशाओंमें उस वासनोंकी दृढ़क्षमता नहीं है। इससे असिद्धताका व्यवहार बन रहा है। इस तरहका वासनाभेद यहाँ भी मान लीजिए। पर संतानान्तर मत मानो। फिर जब संताना-

न्तर न माना तब निज संतानमे क्षणिकता आदिककी सिद्धि भी कैसे समझी जायगी?

ज्ञान ज्ञेयमेसे किसी भी एकको माननेपर द्वितीयकी अवश्यभाविनी सिद्धि –बहुत दूर जाकर भी अर्थात् बड़ी चर्चायें करनेके बाद भी यह मानना ही पड़ेगा कि कोई ज्ञान अपने इष्ट तत्त्वका आलम्बन करने वाला होता है। और, वही वेद्याकार वेदकाकार बाह्य अर्थ ज्ञानमें स्वरूपसे अन्य किसी पदार्थके आलम्बनको सिद्ध कर देता है अर्थात् ज्ञानमे जब ग्राह्याकार ग्राहकाकार बन रहे हैं तो उससे बाह्य पदार्थ अवश्य है यह सिद्ध होता है। न होते बाह्य पदार्थ तो ज्ञानमे यह विषय यह आकार कैसे प्रतिबिम्बित होता, इस कारण उक्त प्रकारसे बाह्य अर्थकी सिद्धि होगई, तो बाह्य अर्थकी सिद्धि होनेसे वक्ता, श्रोता, प्रमाता ये तीन सिद्ध हो गए और फिर उन तीनोके बोध, वाक्य और प्रमा याने बुद्धि ये भी तीनो सिद्ध हो जाते हैं। यो मूल बात कही जा रही थी कि जीव शब्द बाह्य अर्थसे सहित है याने जीव शब्द वाचक है और उससे जीव नामक पदार्थ वाच्य होते हैं। तो जीव शब्दसे सबाह्य अर्थपना सिद्ध करनेमे उस सज्ञापनका हेतु दिया गया है। उस हेतुमें न असिद्ध दोष है न अनेकातिक दोष है और न वहाँ जो दृष्टान्त बताया गया है जैसे हेतु शब्द, माया शब्द, भ्रान्ति शब्द, प्रमाशब्द, किन्ही भी दृष्टान्तोमें कोई दोष नही है। कोई भी दृष्टान्त साधन धर्म, साध्य धर्म आदिकसे रहित नही है जिससे कि जीवकी सिद्धि न हो। तो जीव शब्दसे ही जीव पदार्थकी सिद्धि हो जाती है। जब जीवकी सिद्धि हो गयी तब अर्थको जानकर पदार्थको समझकर प्रवृत्ति करने वाले सम्वाद और विसम्वादकी सिद्धि सिद्ध हो ही जाती है। इसी प्रकार यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि केवल अन्तरङ्ग पदार्थ ही नहीं है बहिरङ्ग पदार्थ भी है याने केवलज्ञान ज्ञान ही हो सो बात नही है किन्तु घट पट आदिक बाह्य पदार्थ भी हैं, सभी अनुभव करते हैं कि हम जान भी रहे हैं और बाह्य पदार्थोंको भी समझ रहे हैं।

भावप्रमेयमे सवादकी अपेक्षासे अभ्रान्तता व बाह्य अर्थमें विसंवाद की अपेक्षासे भ्रान्तताके सम्बन्धमे सप्तभङ्गी प्रक्रिया—ज्ञानमे जो प्रमाणता आती है वह ज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय तो सारा ज्ञान प्रमाण हैं, परन्तु बाह्य पदार्थों की ओरसे देखा जाय तो कोई ज्ञान प्रमाण होता है और कोई ज्ञान प्रमाणाभास होता है इस तरह स्याद्वाद विधिसे यह सिद्ध होता है कि ज्ञानरूपकी अपेक्षासे तो ज्ञान अभ्रान्त ही होता है। क्योकि वहां सत्यताकी अपेक्षा है। ज्ञान जो कुछ भी प्रवृत्ति करे ज्ञानमें वह आता है और ज्ञानकी वृत्ति है उतनी वहा सच्चाई है। तो सम्वादकी अपेक्षासे सर्व ज्ञानभाव प्रमेयमे चूंकि विसम्वाद हो रहा है इस दृष्टिसे सारे ज्ञान अभ्रान्त ही होते हैं। दूसरा भङ्ग यह है कि बाह्य अर्थमे विसम्वादकी

अपेक्षा भी होती है इस दृष्टिसे ज्ञान भ्रान्त होता है, विसम्वाद हुआ करता है बाह्य पदार्थके विषयसे। स्वयं ज्ञान ज्ञानमें प्रवृत्ति करे तो वहाँ क्या विसम्वाद है? बाह्य पदार्थ जैसा न हो और वैसी समझ आ जाय तो समझिये कि वह भ्रान्त है। अब क्रमसे अर्पित दोनों दृष्टियोंसे ज्ञान स्यात् उभयरूप है। एक साथ अर्पित दोनो बातोंसे स्यात् अवक्तव्य है अब सम्वादकी दृष्टिसे और एक साथ अर्पित दोनो दृष्टियोंसे स्यात् भ्रान्त अवक्तव्य है विसम्वादकी दृष्टिसे तथा एक साथ अर्पित दोनों दृष्टियोंसे ज्ञान कथंचित् भ्रान्त अवक्तव्य है। क्रम और अक्रमसे अर्पित दोनों दृष्टियोंसे ज्ञान उभय अवक्तव्य है। इस प्रकार सप्तभङ्गीकी प्रक्रियामें पूर्वकी तरह यहाँ भी लगा लेना चाहिए और पूर्वकी ही तरह एक है कि अनेक है? नित्य है कि अनित्य है? सभी विषयोंमें उसका विचार सप्तभंगी न्यायसे निरखकर लेना चाहिए, यह सब बात प्रमाण और नयकी विवक्षासे समझ लेनी चाहिए। इस परिच्छेदमें बात यह कही गई है कि कोई मात्र ज्ञानको ही माने, बाह्य तत्त्वका निषेध करे तो उसका मानना सिद्ध नहीं होता और निष्फल होता है। कोई पुरुष केवल बाह्य अर्थ ही माने और ज्ञान न माने तो उससे भी उसकी कोई सिद्धि नहीं। अतः ज्ञान भी है और बाह्य तत्त्व भी है। सर्व प्रकार परीक्षा करके सर्व से व्यामोह हटाकर अपने ज्ञानस्वरूपमें ही उपयोगको रमायें, यही एक कल्याणका उपाय है।